सहजानंद शास्त्रमाला

ज्ञानार्णव प्रवचन

भाग 21

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी ''सहजानन्द'' महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

श्री [illegible] जैन महिला मंडल,
श्री [illegible],
मल्हारगंज, इन्दौर.

ज्ञानार्णव प्रवचन

१८, १९, २०, २१ भाग

प्रवक्ता:
अध्यात्मयोगी सिद्धान्तन्यायसाहित्य शास्त्री, न्यायतीर्थ
पूज्य श्री गुरुवर्य्य मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द महाराज"

प्रकाशक:
खेमचन्द जैन सर्राफ,
मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उत्तर प्रदेश)

स्वाध्यायार्थी बन्धु, मन्दिर एवं लाइब्रेरियोंको
भारतवर्षीय वर्णी जैनसाहित्य मन्दिरकी ओरसे अर्धमूल्यमें।

प्रथम संस्करण १०००] सन् १९७२ [मूल्य १५)

Report any errors at vikasnd@gmail.com

आत्म-कीर्तन

http://www.jainkosh.org

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री शान्तमूर्ति पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज द्वारा रचित

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम। ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ॥टेक॥

अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहं रागवितान।
मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह हैं भगवान ॥१॥

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ॥२॥

सुख दुःख दाता कोइ न आन, मोह राग दुःख की खान।
निजको निज परको पर जान, फिर दुःखका नहिं लेश निदान ॥३॥

जिन शिव ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम।
राग त्यागि पहुंचूं निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ॥४॥

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूं अभिराम ॥५॥

ooooOoooo

[धर्मप्रेमी बंधुओ! इस आत्मकीर्तनका निम्नांकित अवसरों पर निम्नांकित पद्धतियों में भारतमें अनेक स्थानोंपर पाठ किया जाता है। आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिए]

१—शास्त्रसभाके अनन्तर या दो शास्त्रोंके बीचमें श्रोतावों द्वारा सामूहिक रूपमें।
२—जाप, सामायिक, प्रतिक्रमणके अवसरपर।
३—पाठशाला, शिक्षासदन, विद्यालय लगनेके समय छात्रों द्वारा।
४—सूर्योदयसे एक घंटा पूर्व परिवारमें एकत्रित बालक, बालिका, महिला तथा पुरुषों द्वारा।
५—किसी भी आपत्तिके समय या अन्य समय शान्तिके अर्थ स्वरुचिके अनुसार किसी अर्थ, चौपाई या पूर्ण छंदका पाठ शान्तिप्रेमी बन्धुओं द्वारा।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञानार्णव प्रवचन एकविंश भाग

(धर्म्यध्यानफलवर्णन प्रकरण ४१)

प्रसीद शान्तिं व्रजसन्निरुद्धयतां,
दुरन्तजन्मज्वरजिह्मितं मनः ।
अगाधजन्मार्णवपारवर्त्तिनां,
यदि श्रियं वाञ्छसि विश्वदर्शिनाम् ॥२०९०॥

विश्वदर्शियोंकी श्रीको जानकर अभिलष्यकी जिज्ञासा—त्रिलोकदर्शी पुरुषोंका स्मरण करके यदि उन विश्वदर्शियोंके जैसे श्रेयकी अर्थात् लक्ष्मीकी वाञ्छा हुई है तो तुझे अब क्या करना चाहिए ? तीर्थंकरोंका ज्ञान अनन्त हैं, दर्शन अनन्त हैं, आनन्द अनन्त हैं, शक्ति अनन्त है, जो कि संसारके सर्व संकटोंसे परे हैं । संसारमें कितने व्यर्थके संकट हैं । एक जीवका किसी दूसरे जीवसे कुछ सम्बंध है नहीं, हैं सभी अत्यन्त भिन्न, लेकिन उनकी शकल सूरत निरखकर यह पुत्र हैं, यह पुत्री है, यह रमणी है—ये नाना विकल्प करके जो एक महान अंधेरा अपने ज्ञानपर बनाये डालते हैं, इसे क्या कम संकट समझ रहे । आँखें मिचीं और सब खतम । जो थोड़े ही दिनोंमें खतम होगा उसको अन्तिम चार मिनट पहिलेसे भी खतमसा नहीं मान सकते । एक जुलाहा भी कपड़ा बुनता है तो बुनते-बुनते आखिर अन्तमें दो चार अंगुल पूर छोड़ ही देता है, पर यह संसारी मनुष्य अपने जीवनके अन्तिम दो चार मिनट भी रागद्वेष मोहका पूरा हुआ ताना नहीं छोड़ सकता । यदि प्रभुकी श्रीको अर्थात् लक्ष्मीको सुनकर, उनका क्या विकास है, सर्वसंकटोंसे परे कृतकृत्य, अब जिनकी आगे कुछ भी उत्सुकता नहीं है सब कार्य पूरे हो चुके, उन्हें अब कुछ करनेको नहीं रहा, निर्विकल्प हैं, निस्तरंग हैं, उनकी लक्ष्मीकी बात सुनकर यदि उन जैसी लक्ष्मीको चाहते हो तो क्या करो ?

सर्वज्ञश्रीकी वाञ्छामें आत्मप्रसादकी आवश्यकता—विश्वदर्शियों जैसी श्री पानेके लिये सबसे पहिली बात है कि प्रसन्न होवो । कोई कहे कि हम तो बड़े प्रसन्न हैं, हमें क्या शिक्षा देते, दूकान अच्छी चलती है, घरमें बालबच्चे अच्छे हैं, सब ठीक है, अरे यह कोई प्रसन्नता नहीं है । इस प्रसन्नताकी बात नहीं कह रहे । इसका नाम प्रसन्नता नहीं । प्रसन्नताका अर्थ है निर्मलता । साहित्यमें देखो—जब शरद ऋतुका वर्णन आता है तो वहाँ कवि कहता है उन छोटी-छोटी ताल तलैयां व बावड़ियोंमें निर्मल जल भरे हुएके प्रति कि ये सब प्रसन्न हो रही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं। यहाँ कोई पूछे कि कहो भाई आप प्रसन्न हो ना, अर्थात् निर्मल हो ना, पर वह उत्तर क्या देता है—हाँ हम बड़े मौजमें हैं, खूब बच्चे हैं, सभी हमारी बड़ी खबर लेते हैं, धन भी खूब है, हम बहुत प्रसन्न हैं। अरे पूछी तो थी निर्मलताकी बात और उत्तर दे रहे हैं अपनी मलिनताका। यह तो संसार है। पूछो कुछ और उत्तर मिलता है कुछ।

बहरोंका झमेला—एक दृष्टांत है कि एक बहिरा मुसाफिर किसी गाँवको जा रहा था तो उसे एक बहिरा गड़रिया रास्तेमें बकरियां चराते मिला। दोपहरका समय था। गड़रिया भोजन करनेके लिये घर जाना चाहता था। सो उस मुसाफिरको देखकर गड़रियाने कहा—भैया थोड़ी देरको हमारी बकरियाँ देख लेना, मैं खाना खा आऊँ।···अच्छी बात। चला गया गड़रिया खाना खाने। ये सब बातें संकेतके साथ हुईं, सो वे दोनों समझ गये थे। जब खाना खाकर १ घंटेके बादमें लौटा गड़रिया, तो सोचा कि इसने मेहनत किया है, इसे कुछ इनाम देना चाहिए। सो उसके पास थी एक तीन टाँगकी बकरी, एक टांग उसकी टूट गई थी। सोचा कि सिर्फ एक घंटा ही तो मेहनत की है, अच्छी बकरी क्यों दूँ, इसीको दे दूँ। जब देने लगा तो वह बहिरा मुसाफिर यह समझता है कि यह कह तहा है कि तुमने तो हमारी बकरी की टांग तोड़ दी, सो बोला—हमने तो इतनी मेहनत की और कहते कि हमारी बकरीकी टांग तोड़ दी। वह गड़रिया बोला—मैं क्यों अच्छी बकरी दूँ, तुमने एक ही घंटा तो मेहनत की। आखिर दोनों किसी तीसरे व्यक्तिके पास न्याय करवाने चले। रास्तेमें एक घुड़सवार मिला, वह भी बहिरा था। उन दोनोंने अपनी अपनी बात रखी। सो वह घुड़सवार समझता है कि ये कह रहे हैं कि तुम्हारा यह घोड़ा चोरीका है, सो वह कहता है—अरे यह घोड़ा तो हमारे घरकी घोड़ीसे पैदा हुआ था, चोरीका कैसे है ? अब वे तीनों किसी चौथे व्यक्तिके पास न्याय करवाने पहुंचे। सो एक गाँवके एक जमींदारके पास गए। वह किसान भी बहिरा था। उसी दिन उसकी घरवालीकी उससे लड़ाई हो रही थी। वे तीनों ही उसके पास जाकर अपनी-अपनी बात रखते हैं—एक कहता है—मैंने १ घंटा तक मेहनत की और यह कहता है कि तुमने मेरी बकरीकी टाँग तोड़ दी। दूसरा कहता है—इसने एक ही घंटा तो मेहनत की, मैं क्यों इसे अपनी चार पैरों वाली अच्छी बकरी दे दूँ ? तीसरा कहता है—यह घोड़ा तो हमारे घरकी घोड़ीसे पैदा हुआ था, ये लोग कहते हैं कि तुम्हारा यह घोड़ा चोरीका है। तो वह बहिरा किसान सोचता है कि ये लोग हमारी लड़ाई शान्त करा रहे हैं, तो झुंझलाकर कहता है—अरे यह तो हमारी घरेलू लड़ाई है। तुम लोग क्यों बेकारमें बीचमें पड़ते ? आखिर उन तीनों को भगा दिया। तो क्या है ? यह तो संसार है, यहाँ पूछो कुछ और उत्तर मिलता है कुछ। तो जिसे अपनी प्रसन्नता कह रहे हो वह प्रसन्नता नहीं है।

प्रसन्नताका उद्यमन—प्रसन्नता कहते हैं निर्मलताको। यदि इस महाप्रभुकी लक्ष्मीको

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चाहते हो तो सबसे पहिले प्रसन्न होवो। इस निर्मलताका भाव इन तीन बातोंमें समझ लो— एक तो इस जगतके प्रति भ्रम न रहे, कौन मेरा है, इस देहको देखकर यही मैं हूं, ऐसा विकल्प न आये, दूसरे—इन पंचेन्द्रियके विषयोंमें राग न आये और तीसरे—किसी भी प्राणीके प्रति रागद्वेषकी दृष्टि न जगे। झट उस जीवस्वरूपकी ओर दृष्टि ले जायें कि मेरा ही जैसा स्वरूप इन सभी जीवोंका है। कोई अगर अपनसे विरोध भी कर रहा है, द्वेष भी कर रहा है तो यही सोच लो कि इसने अज्ञानताकी शराब पी रखी है जिससे मदोन्मत्त होकर पागलकी नाई चेष्टायें कर रहा है। इस बेचारेका दोष नहीं, दोष तो इस अज्ञानताकी शराबका है। जैसे एक घटना है कि एक बार दतियाका राजा अपने हाथीपर बैठा हुआ घूमने जा रहा था, रास्तेमें एक कोई शराबी मिला। वह शराबी बोला--ओबे रजुवा अपना हाथी बेचेगा ? इस बातको सुनकर राजा बड़ा क्रुद्ध हुआ, पर मंत्रीने कहा—महाराज आप दरबार चलिये—इसका निर्णय वहीं होगा। यहाँ इसे कुछ न कहिये। आखिर दरबार पहुंचकर ५-६ घंटेके बादमें राजाने उसे बुलवाया। वह बेचारा गरीब आदमी था। वह पहिलेसे ही डरने लगा कि आखिर हमने क्या अपराध किया जो राजाने बुलवाया। जब राजाके सामने पहुंचा तो पहिलेसे ही कांपने लगा। राजा बोला— क्या तू मेरा हाथी खरीदेगा ? तो वह बोला—महाराज आप यह क्या बात कह रहे हैं, मैं गरीब आदमी आपका हाथी किस तरहसे खरीद सकता हूं ? आखिर राजाको मंत्रीने बताया— महाराज, उस समय यह नहीं कह रहा था—"ओबे रजुवा अपना हाथी बेचेगा।" इसने पी ली थी शराब, सो शराबका नशा वह बात कह रहा था, यह तो सिर्फ आपके सामने खड़ा था। तो यों ही जब कोई अपनसे विरोध कर रहा हो, अज्ञानता भरी चेष्टायें कर रहा हो तो यही सोचना चाहिए कि इस बेचारेका कोई दोष नहीं, इसने अज्ञानताकी शराब पी रखी है सो उस शराबके मदका दोष है। इसका कोई दोष नहीं। इसका स्वरूप तो मेरा ही जैसा है। मैं इसपर क्या रोष करूँ ?

निर्विरोध होकर प्रसन्न (निर्मल) होनेका उपदेश—भैया ! जैसे किसी पागलके मुखसे कोई गाली भरे शब्द सुन लिए जाते हैं तो क्या उसपर कोई क्रोध करता है ? जब वह पागल है तो उसकी क्रियावोंपर क्रोध क्या करना, ऐसे ही किसी अज्ञानीकी अज्ञानता भरी चेष्टावोंको निरखकर क्रोध क्या करना, समझ लिया कि इसके ऊपर कषायोंका बोझ लदा है तो उन कषायों के वश होकर यह अपनी अज्ञानता भरी चेष्टायें कर रहा है। तो किसी भी स्थितिमें किसी भी जीवके प्रति बैर विरोधकी अन्तरङ्गमें भावना न जगनी चाहिए। तो भ्रम न रहे, विषयोंमें राग न रहे, जीवोंसे द्वेष न रहे, बस इसीका नाम है प्रसन्नता। कोई अगर पूछे कि क्या आप प्रसन्न हो, तो उसका अर्थ आप लगा लो कि हमसे यह पूछा जा रहा है, तो उसका उत्तर दें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि चाहता तो हूं कि मैं प्रसन्न रहूं, पर रह नहीं पाता क्योंकि ये विकार सता रहे हैं। यदि महापुरुषोंके निर्वाण प्राप्त जीवोंके वैभवको सुनकर जानकर उसकी इच्छा करते हो तो पहिला काम है कि प्रसन्न होवो।

शान्त होने और मनोनिरोध करनेका आदेश—प्रभुश्रीकी प्राप्तिके लिये अपनेमें शांति को एकमेक करो अर्थात् शान्त होवो, और जो मन जन्म जरा ज्वरसे कुटिल बन गया है जिसका अंतिम परिणाम खोटा है ऐसे मनको रोको। कठिन साधना है कि मनमें जो आये बात उसे दबा लें, और यहीं बुझा लें, नष्ट कर लें, लेकिन यह कठिन साधना जो महाभाग कर सकता है उसे अपूर्व प्रकाश मिलता है और एकदम उन्नतिके पथपर बढ़ जाता है। बड़े पुरुष का यही लक्षण है कि क्षमाशील रहे, नम्र रहे। इन सब स्थितियोंमें मनका निरोध कर देना यह एक बहुत बड़ा गुण है। यों तीन बातें कहीं हैं। जिसको प्रभुसम परम आनन्दकी चाह है, उसके लिए ये तीन उपदेश दिए हैं। और अधिक नहीं तो एक ही उपदेशको हम अपने आपमें घटा लें तो भला है। क्या ? प्रसन्न रहें। प्रसन्न रहनेमें कुछ बुरासा लगता है क्या ? क्या प्रसन्न रहना नहीं चाहते ? तो प्रसन्नमें जो भाव भरा हुआ है उस भावमें अपनेको जुटा लें, इसमें कौनसी कठिनाई है ? यदि भीतरमें एक उजेला बना लें, भ्रम मिटा लें तो इसको कौनसी बाधा है ?

यथार्थस्वरूपके विपरीत हठ न करनेमें यथार्थ प्रसन्नता—यह जगत, ये अणु-अणु ये सब जीव अपना-अपना चतुष्टय लिए हुए हैं। उनका सुख उनमें है, मेरा सुख मुझमें है। किसीसे कुछ भी सम्बंध नहीं। यह बात अगर झूठ हो तो मत मानो। झूठ बात मनानेका जैनशासनमें जरा भी संकेत नहीं है। निरीक्षण कर लो, बात सत्य उतरे तो सत्य जंचनेपर भी उसे स्वीकार न करे, तो यह तो एक ऐसी बुरी हठ है कि जैसे कोई देहाती कह बैठे सभामें कि ४० और ४० ६० होते हैं, दूसरे लोग कहें—४० और ४० तो ८० होते है। पर उसने ६० की ही हठ पकड़ ली, और उसने यह भी कह दिया कि अगर ४० और ४० मिलकर ६० न होते हों तो हमारे घर जो ५ भैंसें हैं उन्हें दे देंगे। जब वह घर जाता है तो उसकी स्त्री दुःखी होकर कहती है कि अब न जाने क्या होगा, क्या बच्चे खायेंगे, कैसे बच्चोंका पालन पोषण होगा ? तो वह आदमी बोला, क्यों ?···अरे तुमने तो सभामें कह दिया है कि ४० और ४० मिलकर ६० होते हैं, अगर ६० न होते हों तो अपनी घरको पाँचों भैंसें दे देंगे। सो कल तो ये सारी भैंसें चली जावेंगी। तो वह पुरुष बोला—अरी बावली, तू तो बड़ी नादान है, अरे जब हम अपने मुखसे इस बातको कहेंगे कि ४० और ४० मिलकर ८० होते हैं, तभी तो ये भैंसें वे पंच लोग ले सकेंगे, नहीं तो है क्या किसीमें ऐसी हिम्मत है जो हमसे भैंसें ले सके ? ये रखा है डंडा। तो इसी तरहकी हठ ये संसारी जीव बनाये हैं। चित्तमें यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बात ठीक-ठीक जंच जानेपर भी कि दुनियामें एक तिनका भी अपना नहीं है, फिर भी यह हठ किए बैठे हैं कि जब हम यह मान लें कि ये चीज मेरी नहीं है तभी तो यह चीज मेरे पाससे जायगी। अरे इस हठसे तो इस जीवकी बरबादी है। सत्य बात मान लें और फिर विषयोंका राग छोड़ दें और जीवके स्वरूपको निरखकर उनसे अंतरङ्गमें द्वेषकी भावना न रखें, लो प्रसन्न हो गए और सारा मार्ग मिल गया।

यदि रोद्धुं न शक्नोति तुच्छवीर्यो मुनिर्मनः।
तदा रागेतरध्वंसं कृत्वा कुर्यात्सुनिश्चलम् ॥२०६१॥

मनकी निश्चलताके लिये रागध्वंसका यत्न—यदि कोई अल्प शक्ति वाला मुनि अपने मनको वश नहीं कर सकता है तो वश करनेके लिए रागद्वेषका नाश करे और मनको निश्चल करे। जब मन वश नहीं है तब समझिये कि किसी राग या द्वेषमें मन लगा हुआ है। बिना रागद्वेषका रंग पाये यह मन अस्थिर नहीं होता। यदि मन स्थिर करना है तो उस रागद्वेषका रंग मिटाना चाहिए जिसका ख्याल करके, जिसको चित्तमें रख करके मन अस्थिर हो रहा है। कभी ऐसा लगता है कि मुझे रागद्वेष तो कहीं नहीं हो रहा, अच्छी तरह बैठे हैं, किसीसे कुछ प्रयोजन नहीं, फिर भी मन नहीं लगता, किन्तु सूक्ष्मदृष्टिसे विचारें तो उपयोगमें यद्यपि बहुत बड़ा रागद्वेष नहीं विदित होता, पर कुछ लगाव है, उसका संस्कार है तब मन निश्चल नहीं हो रहा है। यह ग्रन्थ मुनियोंको सम्बोधनेके लिए बनाया गया है, तो बीच-बीचमें मुनि का सम्बोधन करके वर्णन है, किन्तु जो बात बड़े साधुजनोंको लाभप्रद है वही बात सबको लाभप्रद है, उसकी दृष्टि होना चाहिए, और उसमें यथा शक्ति उद्यम रखना चाहिए। रागद्वेष मिटानेके लिए ऐसा निर्णय होना चाहिए कि सभी जीव, सभी पदार्थ जब स्वयं इस रूपमें हैं कि मेरेसे उनका कुछ सम्पर्क नहीं तो किनमें राग किया जाय, किनमें द्वेष किया जाय और फिर भी रागद्वेष चलता है तो किसी परमें रागद्वेष नहीं चल रहा, किन्तु अपनी बरबादीके लिए अपने स्वभावसे हटकर अपनेमें राग और द्वेषका परिणमन किया जा रहा है। इसमें मिलेगा क्या ? जैसे बहुतसा धन जोड़नेके बाद आखिर इसे मिलेगा क्या ? मरण होगा तो मिलेगा क्या ? इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियके उन समस्त विषयोंमें आसक्त होकर आखिर इसे मिलेगा क्या ?

रागके समूल विनाशसे ही शाश्वत शान्तिका लाभ—जब ये बाह्य पदार्थ स्वयं इसके विविक्त नजरमें रहेंगे तो यह बुद्धि उत्पन्न होगी कि कहाँ राग करें, कहाँ द्वेष करें ? रागद्वेष करनेका परिणाम रहेगा तो मनमें अस्थिरता बनेगी। अब यह बात यदि आप ध्यानमें नहीं ला रहे तो उसका कारण यही है कि आप रागद्वेषसे भरे हुए हैं, और जिनका रागद्वेष मंद है, जिन्होंने यथार्थ निर्णय किया है उनको तो यह बात स्पष्ट विदित होती है। तो मन स्थिर किए

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बिना ध्यान नहीं होता। ध्यान बिना मुक्ति नहीं होती, मोक्षमार्गमें बढ़ा नहीं जा सकता। और मनकी स्थिरता होती है रागद्वेषके अभावमें। इस कारण जान देखकर निरख-निरखकर उस रागद्वेषको समूल नष्ट करनेका यत्न करना चाहिए। जैसे धुनिया रुईके अंशोंको तांतोंसे पकड़ पकड़कर पिंजड़ेसे रग रग धुनता है ताकि कोई गाँठ न रह जाय, इसी तरह अपनेमें किसी भी रागद्वेषकी गाँठ न रह पाये, इस तरहसे इस रागको धुनना चाहिए। उसमें ऐसी छूट नहीं है कि हमको एक जीवमें राग है अन्य किसीमें नहीं है तो हम मुक्तिके बहुत अंशोंमें अधिकारी हो गए। ऐसी बात नहीं है। एकका राग इतना कठिन हो सकता है कि कहो उन हजारों लाखोंके रागसे भी अधिक हो। थोड़ासा भी राग हमारे सत्य निर्णयको, सत्यदर्शनको रोके हुए है। उस रागके दूर करनेका यत्न करना चाहिए।

अनुप्रेक्षाश्च धर्म्यस्य स्युः सदैव निबन्धनम्।
चित्तभूमौ स्थिरीकृत्य स्वस्वरूपं निरूपयः ॥२०६२॥

धर्मप्रगतिके लिये अनुप्रेक्षण—अब धर्मकी बढ़वारीके लिए अनुप्रेक्षावोंके चिन्तनका उपदेश किया जा रहा है। अनुप्रेक्षावोंकी भावना कीजिए। यह ध्यानकी बात है, इसीलिए इस ग्रन्थमें आदिमें बारह भावनाओंका भी वर्णन किया है। उन भावनाओंको भाकर, सुनकर चित्त में उतारकर पहिले आशय विशुद्ध बने तब फिर इसे ध्यानकी बात बतायी जाय। तो पहिले भी बारह भावोंका विचार किया और बीचमें उस ध्यानके मार्गमें चले भी, और फिर भी जरूरत पड़े तो फिर हम बारह भावनाओंका चिन्तन कर रहे हैं। ये भावनायें ध्यानमें बढ़ने के लिए ऐसा काम करती हैं जैसे अग्निको जलानेके लिए हवा काम करती है।

अनित्य और अशरण भावनाकी झांकी—जहाँ ध्यानमें आया कि ये सब समागम क्षणिक हैं बस रागके दूर होनेका मौका मिला? जहाँ ध्यानमें आया कि मात्र केवल अपना ज्ञानस्वभाव ही नित्य है और सदा मेरा साथी है तो यहाँ अनुराग करनेका, रुचि करनेका मौका मिलाना जिससे बाह्यपदार्थोंका राग छोड़नेमें और अधिक सहयोग मिल जाय। ध्यान हुआ कि इस लोकमें कहीं कोई शरण नहीं है। जहाँ शरणमें जाऊँ वहींसे धोखा मिलता है, संकट मिलता है। जो आज संतानके कारण दुःखका अनुभव कर रहे हैं या किसी और कामके कारण बड़ा परिवार मिलनेसे कुछ क्लेश अनुभव कर रहे हैं, उन्होंने विवाहके समयमें ऐसा कुछ सोचा था क्या? तब तो फूले नहीं समाते थे। तब तो सोचा कि मैं इसकी शरणमें रहूंगा। शरण मानकर ही तो यह एक दूसरेसे राग किया जाता है। यह केवल पुरुषोंकी ही बात नहीं है। स्त्रियोंके लिए भी यही बात है, पर यहाँ तो जिस किसीके भी शरणमें जावो वहाँसे धोखा ही मिलता है। बाह्यमें कहीं कोई शरण नहीं है। जब यह निगाहमें आये तो कुछ राग

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हटा ना, और समझमें आया कि मेरे आत्माका खुद ही अपना स्वभाव, उसका ही आलम्बन शरण है। निज शरण माननेके फलमें परको शरण माननेका अपनेमें जो संस्कार था वह भी समाप्त हो जाता है। इन भावनाओंका विस्तारपूर्वक वर्णन आया है। इन भावनाओंके भाने से इस जीवका राग हटता है और ध्यानमें उसके सिद्धि बढ़ती है।

संसार और एकत्वभावनाकी झलक—बाहरमें निरख लो, सर्व स्थितियां दुःखरूप हैं। हम क्या यहाँ बन जायें कि सुखी हो जायें, इसका भी कुछ निर्णय कर लो। क्या नेता बन जायें, क्या दूकानदार बन जायें, क्या बाबू जी बन जायें, क्या पूंजीपति बन जायें? अरे इन सभी स्थितियोंमें केवल क्लेश ही नजर ही नजर आयगा। कोई कष्ट न माने तो यह तो उसके मोहकी बात है, पर वास्तवमें बाहरकी सारी स्थितियां कष्टरूप हैं। बाहरकी स्थितियाँ नहीं, जो हमारा उपयोग हमारे आधारको छोड़कर बाहर गया बस वही कष्ट है और उसमें बाहरकी स्थितियोंकी बदनामी भी आती है। बाहरकी सर्व स्थितियां कष्ट रूप हैं, जब अन्दरमें निरखा वह कैवल्यस्वरूप शुद्ध आत्मतत्त्व, उसका अवलोकन किया, आलम्बन किया तो वहाँ एक अलौकिक आनन्द प्राप्त हुआ। उस स्थितिमें इस प्रकारका ज्ञान हुआ कि वास्तवमें मैं तो अकेला हूं, इसी स्थितिमें एक अद्भुत आनन्द है, अन्य बाहरी स्थितियाँ तो क्लेशोंसे ही भरी हुई हैं। ऐसा विचार करके ही दूसरोंसे जो स्नेह किया था, जो दूसरोंमें आपा मान रखा था, अपने ऊपर जो सारे विकल्पोंके बोझ बना रखा था वे सब दूर हो जाते हैं। अरे एक परिवार में भी सबके अपने-अपने कर्म लगे हैं और उनके पुण्य पापके उदयके अनुसार उन्हें सुख दुःख प्राप्त हो रहे हैं। आप क्यों स्त्री पुत्रादिकके कारण अपने ऊपर एक बड़ा भारी बोझसा मान रहे हो? आप उनका पालन-पोषण नहीं करते, उनका खुद ऐसा पुण्यका उदय है कि जिसके कारण आपको उनकी चाकरी करनी पड़ रही है। आपके पुण्यसे भी उन सबका पुण्य अधिक प्रबल है तभी तो आपको उनकी बराबर चिन्ता रखनी पड़ती है। तो जिन जीवोंके पुण्यका उदय चल रहा है उनकी चिन्ता क्या करना? इस प्रकारकी बात जब दृष्टिमें आती है तब राग निवृत्त होनेका अवकाश मिलता है। यह राग दूर हुआ कि मन स्थिर हो गया।

अन्यत्वभावनाका चिन्तन—अन्यत्व भावनामें चिन्तन चलता है कि सब अन्य हैं, जुदे हैं, मुझसे न्यारे हैं। जब उनके पुण्योदयके कारण सेवा करते करते भारी परेशान हो जाते हैं तो झल्ला करके तो सभी कह बैठते हैं कि सब अपने अपने मतलबके हैं, लेकिन वस्तुस्वरूपको निरखकर समताके साथ उनका आदर रख करके कोई चिन्तन करे कि ये सब अपने स्वरूपमें परिपूर्ण हैं, और मुझसे उतने ही भिन्न हैं जितने कि अन्य लोग भिन्न हैं। दूसरोंपर झल्ला करके ये गैर हैं ऐसा माननेमें यहाँ कुछ मिलता नहीं है, शान्ति नहीं होती, किन्तु उनको हटा रहे हैं, जुदा कर रहे हैं। तो बड़े आदरसे, झल्लाकर नहीं। उनका आदर यही है कि अपने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वरूपकी ही तरह उनके स्वरूपको निरखकर फिर समझें कि सब परस्पर विविक्त हैं, जुदे हैं, भिन्न हैं। जब ऐसा अन्यपन चिन्तनमें आता है तब राग दूर होता है।

अशुचिभावनाका चिन्तन—अब अशुचि भावनाकी बात देखिये—इस शरीरका रंग ढंग देखिये, जब कोई आदमी कहीं अकेला ही होता है तो वह खुले बदन जैसा तैसा ही पड़ा रहता है, उस समयके रंग ढंगको देखो, और जब वह चार आदमियोंके बीचमें जाता है अथवा किसी सभा सोसाइटीमें जाता है तो कैसा हाथ पैर झिटिककर, बड़े साफ कपड़े पहिनकर खूब सज धज कर जाता है, तो उस समयके उसके रंगढंगको देखो। पर क्या कोयलेमें बहुत धोया जानेपर भी कहीं उसमें सफेदी नजर आती है? नहीं नजर आती। इसी प्रकार यह मनुष्य इस अत्यन्त अशुचि, अपवित्र शरीरको चाहे कितना ही धोये, साफ करे, पर यह पवित्र नहीं हो सकता। मनुष्यके अंगोंमें सबसे अच्छा अंग माना जाता है यह कंधेके ऊपर चढ़ा हुआ टोकना। पर यह टोकना सबसे ज्यादा गंदा है। कानका कनेऊ, नासिकाकी नाक, मुखके लार थूक कफ, आँखके कीचड़ आदि सब इसी टोकनेमें हैं। तो इस सबसे अधिक अशुचि अपवित्र इस टोकनेको यह मनुष्य सबसे सुन्दर समझता है। यह एक इस शरीरके अशुचिपनेकी बात कह रहे हैं। दूसरोंपर क्या निरखना, अपनेको ही निरख लो, ऐसा यह अशुचि शरीर है और इसी अशुचि शरीरपर यह मनुष्य अपनी शान बगरा रहा है। इसी तरहसे धन व ज्ञान आदि पाकर शान बगराता है यह मनुष्य। अनेक प्रकारके नटखट यह मनुष्य किसलिए करता है? एक इस अपवित्र शरीरकी शान बढ़ानेके लिए। इस प्रकारकी बात जब चित्तमें बैठ जाती है तो फिर इस शरीरमें उसके राग रहेगा क्या? न रहेगा राग। अरे जहाँ अनेक प्रकारकी बातें सोचा करते हो तहाँ इस अपने शरीरको दृष्टिमें रखकर थोड़ा उसकी अपवित्रता पर भी विचार करो, उससे बहुत कुछ शिक्षा मिलेगी। इन शरीरोंसे राग हटेगा, परसे स्नेह मोह ममतायें दूर होंगी। उसी चिन्तनके साथ एक इस प्रकारका भी चिन्तन हो कि इस अपवित्र शरीरसे मैं आत्मा अत्यन्त भिन्न हूं, निर्लेप हूं, अमूर्त हूं, उसमें कोई भी ग्लानिकी बात नहीं है। ऐसा मैं पवित्र आत्मा इस देहके अन्दर बिराजमान हूं, इस प्रकारके चिन्तनसे इस शरीरकी अशुचिताका ध्यान रखनेके कारण घबड़ाहट न होगी और एक अपने आपमें तृप्तिका अनुभव होगा। तो यों इन बारह भावनाओंके ध्यानसे धर्ममें स्थिर होनेका बड़ा सहयोग मिलता है। इससे हे ध्यानार्थियो! इन भावनाओंका चिन्तन करो।

आस्रव भावनाका चिन्तन—शान्तिका साधन ध्यान है, उसके विषयमें बड़ी समतासे यदि ध्यान करें तो वहाँ अशान्ति नहीं ठहर सकती। जब ध्यानमें मन न लगे तो योगियोंको, विवेकियोंको बारह भावनाओंका चिन्तन करना चाहिए। वे आस्रवभावनाके सम्बन्धमें विचार करते हैं कि जीव तो स्वयं अपने आप ज्ञानानन्दरससे परिपूर्ण है, किन्तु अनादिसे इसके साथ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कोई दूसरी चीज लगी है जिसका फल सामने देख ही रहे हैं कि किस बन्धनमें यह जीव पड़ा हुआ है। वह दूसरी चीज है कर्म। नाम कुछ भी रखलो, पर यह निश्चय है कि मेरे साथ कोई दूसरी चीज लगी हुई है जिसके कारण मैं नाना विकारोंमें चल रहा हूं। वे कर्म आते हैं, वे बड़े दुःखदायी हैं। रागादिक भाव उत्पन्न होते हैं, वे इस जीवको बड़ा कष्ट देते हैं, किन्तु खुद का जो आत्माका भाव है वह सर्व परतत्त्वोंसे रहित है, इसलिए रागादिक भावोंका आकर्षण लाभकारी नहीं है।

संवर व निर्जरा व लोकभावनाकी झलक—रागादिक भावोंसे उनसे हटकर अपने स्वभावमें रुचि लगाये, वहाँ ठहरे, यह लाभकारी है, इसीका नाम है संवर। अपने आपके स्वरूपमें आना, इससे कर्मोंका आना रुकता है, रागादिक विभाव घटते हैं और इस संवरसे जीवको शान्ति प्राप्त होती है। संवर होनेपर कर्मोंका झड़ना शुरू हो जाता है। जो कर्म अज्ञान दशामें बंध गए थे वे कर्म अपने शुद्धस्वरूपके परिचयमें झड़ने लगते हैं। कर्मोंका झरना लाभकारी है। योगियोंकी दृष्टि लोककी रचना पर प्रायः बहुत काल ठहरती है। संस्थानविचय धर्मध्यानमें मुख्यता यही है कि लोक और काल कितना बड़ा है, यह ज्ञानके सामने आँखोंके सामने बना रहे, इससे रागभाव न ठहरता है, न बनता है। जिसे यह विदित है कि ३४३ घनराजू प्रमाण यह लोक है, जम्बूद्वीप एक लाख योजनका है। दो हजार कोश का एक योजन होता है। जम्बूद्वीपसे दूना एक लवणसमुद्र है। एक ओर इससे दूना द्वीप, द्वीपसे दूना समुद्र, इस तरह द्वीप और समुद्र चलते जा रहे हैं। कितने हैं वे सब ? अनगिनते। तो ऐसे दूने-दूने विस्तारके हैं और इतना ही विस्तार दूसरी ओर है। यों असंख्यात द्वीप समुद्रोंमें आखिरी जो समुद्र है वहाँ तक है साराका सारा मध्यलोक। ये सब द्वीप समुद्र चारों तरफके मिलकर एक घनराजू प्रमाण भी नहीं होते। ऐसे ऐसे ३४३ घनराजूप्रमाण यह दुनिया है। इसके बहुत थोड़ेसे क्षेत्रमें ही आजकी यह परिचित दुनिया है, फिर जिस क्षेत्रमें हम आप रह रहे हैं वह क्षेत्र इतनी बड़ी दुनियाके आगे कुछ गिनती भी रखता है क्या ? अरे जिस जगह आप रहते हैं उसकी तो बात जाने दो, जिस प्रान्तमें, जिस देशमें आप रहते हैं उतना क्षेत्र भी कुछ गिनती नहीं रखता, फिर इस थोड़ेसे क्षेत्रमें क्या ख्यातिकी चाह करना ? कालकी बात देखो—हम आपका अनन्तकाल व्यतीत हो गया और कितना काल और व्यतीत होगा, अन्त ही नहीं है। इतन लम्बे कालके भीतर यह १००—५० वर्षकी जिन्दगी क्या गिनती रखती है ? जितनेमें हम आप ओटपाये करते हैं,बड़ा राग विरोध मचाते हैं लोकभावना में ये योगीजन उस लोकके स्वरूपका चिन्तन करते हैं जिससे राग न हो और मन स्थिर हो जाय।

बोधिदुर्लभ भावनाका चिन्तन—लोकमें सबसे दुर्लभ चीज क्या है ? प्रथम तो

Report any errors at vikashd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निगोदसे, अन्य स्थावरोंसे, विकलत्रयोंसे या और और भवोंसे निकलकर मनुष्य बनना यह बड़ी दुर्लभ चीज है। जैसे बैलगाड़ीके जुवामें दोनों ओर छोरपर एक एक छिद्र होता है जिनमें एक एक सैल पड़ा रहता है। उस जुवासे सैल निकालकर मानो किसी नदीमें दोनोंको एक एक अलग किनारेसे बहा दिया जाय, वे बहते-बहते फिर किसी जगह इकट्ठे हो जावें और ठीक पहिले की ही भाँति उस जुवाके छिद्रोंमें दोनों ओर वे सैल फिर उसी तरह पड़ जावें तो बतावो यह बड़ी कठिन बात है कि नहीं ?...बहुत कठिन है। इसी प्रकार अन्य अन्य भवोंसे निकलकर मनुष्यभव पाना बहुत कठिन है। जरा जगतकी जीव जातियोंपर दृष्टि डालकर देख लो। मनुष्य होनेसे योग्य जो परिणाम चाहिए उन परिणामोंकी कितनी विरलता है ? खैर मनुष्य हुए तो इतना तो पार पा चुके। अब मनुष्य होनेपर भी उत्तम देश मिलना कठिन है, अगर कोई म्लेच्छ देशमें जन्म हो जाय, जहाँ निरन्तर बर्फ पड़ रही है, जहाँ खेतीका नाम नहीं है, जहाँ मांसभक्षियोंका निवास है ऐसी जगहमें पैदा हो गए तो ऐसा मनुष्यजीवन भी क्या जीवन है ? तो उत्तम देशका मिलना कठिन है। उत्तम देशके बाद उत्तम कुल मिलना कठिन है। अच्छे देशमें भी मानो उत्पन्न हो गए, पर उत्पन्न हुए किसी चाण्डालके घर, अथवा भिखारियोंके घर अथवा हिंसक घरानोंमें तों वह मनुष्यजीवन भी क्या जीवन है ? तो उत्तम कुल पाना कठिन है। मानो उत्तम कुल भी पा गए तो शरीर पुष्ट मिलना, इन्द्रिय समर्थ होना यह उत्तरोत्तर दुर्लभ है, और फिर बुद्धि ठिकाने हो और धर्ममें रुचि जगे, उपदेश सुनने व उसको ग्रहण करनेका चाव हो, उसको अवधारण करने व सम्यक्त्व प्राप्तिकी भावनायें बनाना ये उत्तरोत्तर कठिन बातें हैं। संयमी बनना, अपने आत्मामें अपने उपयोगको नियंत्रित करना, रत्नत्रय धर्म पालना, ये कितनी दुर्लभ चीजें हैं ? इस प्रकारका चिन्तन बोधिदुर्लभ भावनामें चलता है।

धर्मभावनाका चिन्तन—धर्मभावनामें धर्मकी महिमा निरखी जायगी। सर्व समृद्धियां, शान्ति, तृप्ति सब कुछ इस धर्मके प्रसादसे प्राप्त होता है। सच तो यह जानो कि जबसे धर्मलाभ हो तबसे अपना जीवन है। कोई पूछे कि आपकी कितनी उम्र है तो आप क्या कहेंगे ? क्या यह कह देंगे कि हमारी आयु तो ५०-६० अथवा ७० वर्षकी है ? अरे इस उम्रको अपनी सही उम्र न समझो। वास्तवमें उम्र उतनी है जितने दिनोंसे आपको धर्ममें रुचि हुई हो। नहीं तो आपको अनन्तकालका बूढ़ा कहना चाहिए। वास्तवमें धर्मलाभ से ही यह जीवन सफल है। इस धर्मका फल बिना विचारे, बिना मांगे स्वयं सामने आता है। धर्मका वास्तविक फल तो सर्व संकल्पविकल्पोंसे सर्व संकटोंसे मुक्त होकर एक शुद्ध कैवल्यस्वरूपका, ज्ञानानंदस्वरूपका अनुभव करना है, सदाके लिए संकटोंसे छुटकारा पाना है। जब धर्मके प्रति लगन होती है तो उस समय अविशिष्ट रागके कारण विशेष पुण्यका बंध होता है जिससे बड़ी बड़ी समृद्धियां स्वतः ही प्राप्त होती हैं। ऊँचासे ऊँचा पद संसारके सुखोंमें मिलता है तो सम्यग्दृष्टिको ही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मिलता है। तो धर्मके प्रसादसे सर्व समृद्धियां प्राप्त होती हैं। यदि विशुद्ध धर्मपालन हो तो निर्वाण प्राप्त होता है। ऐसा धर्मभावनामें योगीजन चिन्तन करते हैं।

स्फोटयत्याशु निष्कम्पो यथा दीपो घनं तमः।
तथा कर्मकलङ्कौघं मुनेर्ध्यानं सुनिश्चलम् ॥२०९३॥

निर्मल सुनिश्चल ध्यानसे कर्मोंका विस्फोटन—जैसे दीपक जो कि निष्कम्प हो, ठीक प्रज्वलित हो, हिलता डुलता न हो, वह दीपक जैसे बड़े घने अंधकारको शीघ्र ही नष्ट कर देता है इसी प्रकार मुनिका सुनिश्चल धर्मध्यान कर्मकलंकोंके मलको शीघ्र ही नष्ट कर देता है। प्रकाश होते ही अंधकार किस तरह नष्ट होता है जैसे छिन्न भिन्न करके तोड़ दिया हो, पता न पड़े, इस तरह अंधकार दूर होता है ऐसे ही जब मुनिका निश्चल धर्मध्यान होता है तो सारे कर्म उसके फूट जाते हैं। लोगोंपर जब कोई कष्ट आता है, जब कोई इष्ट वियोग होता है तो कहते हैं कि देखो—इसका भाग्य फूट गया। अरे जिनका भाग्य फूट जाता है उनकी तो पूजा उपासना की जाती है। बड़े-बड़े समारोह मनाये जाते हैं। भाग्य फूट गया है सिद्ध भगवानका, अष्टकर्म नष्ट हो गए, कर्महीन हो गए। तो यहाँ उसी फूटनेकी बात कही जा रही है कि जब मन सुनिश्चल हो जाता है, ध्यान सही मिल जाता है तो ये कर्म फूट जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं।

प्रयोगमें यथार्थता—अष्टाह्निकाके दिनोंमें जब अरहदास सेठ अपनी ८ सेठानियोंके सहित अपने घरमें बैठे हुए धर्मचर्चा कर रहे थे, उसी दिन वहाँका राजा और मंत्री नगर घूमने गए। उस धर्मचर्चामें उस राजाके प्रति भी कुछ प्रसंग था। राजा छिपकर वह प्रसंग सुनने लगा। अरहदास सेठ जो भी धर्मचर्चा करें उसे ७ सेठानियां तो कहें—बिल्कुल सच, मगर सबसे छोटी सेठानी कहे—बिल्कुल झूठ। कुछ प्रसंग उस राजा सम्बंधी भी था, सभी सेठानियोंने अपनी-अपनी सम्यक्त्वकी कथा की तो सबने कहा बिल्कुल सच, पर वह छोटी सेठानी कहे—बिल्कुल झूठ। राजा सोचता है कि देखो ये सभी तो सच कह रही हैं पर एक सेठानी कहती है बिल्कुल झूठ, तो इसका हमें ब्योरा जानना चाहिए। तो दूसरे दिन राजाने बड़े आदरसे सेठको व सभी सेठानियोंको अपने यहाँ बुलाया और रात्रिमें जो चर्चा चल रही थी उसके सम्बंधमें पूछा। देखो—रात्रिको जो तुम लोगोंमें चर्चा चल रही थी उसमेंसे कुछ चर्चा हमारे सम्बंधमें भी थी, हम भी जानते हैं कथा सच है। उसपर सभी सेठानियां तो कहती थीं सच और छोटी सेठानी कहती थी—बिल्कुल झूठ, तो इसका ब्योरा क्या है सो हम जानना चाहते हैं? छोटी सेठानीने झट सारे आभूषण उतार दिए, एक साड़ी मात्र पहिनकर बिना कुछ बोले चाले ही जंगलकी ओर चल पड़ी। तब जनताने कह दिया कि वह सब तो झूठ था, सच तो वास्तवमें यह है। तो वास्तवमें आत्माको शांति कैसे प्राप्त होती है, कौनसा उत्कृष्ट

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पद है, कैसे पवित्रता जगती है, कैसा पावन यह आत्मा है, ये सभी बातें धर्मका अनुभव करने से ही प्राप्त होती हैं, न कि केवल बातें करनेसे। काम तो करनेसे ही बनता है।

धैर्य और त्यागका लाभ——कभी देखा होगा कि जैसे—जब दो व्यक्ति परस्परमें लड़ जाते हैं तो उनमें गम खाने वाला अधिक लाभमें रहता है और उससे विरोध बढ़ाने वाला व्यक्ति हानिमें रहता है, ऐसे ही जो इन परद्रव्योंमें मोहित हो जाय, उनको पाकर ही संतुष्ट हो जाय तो वह बहुत बड़े लाभसे वंचित रह जाता है। बल्कि वह दुर्गतिका पात्र होता है। तो अपना कर्तव्य है कि इन पाये हुए सुखके साधनोंमें मग्न न हों, इनको अपना सर्वस्व न समझें, और धर्मकी अगर सही बात बन जाय तो इन सांसारिक सुखोंसे भी लोकोत्तर, जिसकी कोई उपमा नहीं है ऐसा निर्वाण सुख प्राप्त होगा। सदाके लिए अनंत आनंद होगा। थोड़ीसी चीज दिखाकर ये कर्म इस जीवकी सर्व समृद्धि सर्व जायदाद कोर्ट कर लेते हैं। अपना अड्डा जमा लेते हैं।

परवस्तुके लोभमें अनन्त निधिकी हानिपर दृष्टान्त——एक सेठ गुजर गया, उसका दो तीन सालका बच्चा था। उस सेठकी ८-१० लाख रुपयेकी जायदादको सरकारने कोर्ट कर ली। उसकी एवजमें ५००) मासिक बाँध दिया। जब वह बच्चा कुछ समझदार हुआ तो वह सरकारके बड़े गुण गावे——वाह, यह सरकार तो बड़ी दयालु है, देखो घर बैठे हमें ५००) रु० महीना दे रही है। जब वह और बड़ा हुआ करीब २० वर्षका तो उसे पता पड़ा कि करीब १० लाखकी जायदाद सरकारने कोर्ट कर ली है और उसके एवजमें ये ५००) रु० महीने दे रही है, यदि वह उसी ५००) रु० महीनेमें लुभा जाये तो वह १० लाख रुपयेकी जायदाद पा सकेगा क्या? नहीं पा सकता। तो उसने झट सरकारको नोटिस दे दिया कि हमारी १० लाख रुपयेकी जायदाद सरकारने कोर्ट कर रखी है, मैं समर्थ हो गया हूं, मुझे यह ५००) रु० महीना न चाहिएँ, मेरी १० लाखकी जायदाद मुझे दी जाय। लो पा जाता है वह अपनी सारी जायदाद। यों ही आत्माके अनन्त आनन्दको इन कर्मोंने कोर्ट कर लिया है और उसके एवजमें यह स्त्री सुख, थोड़ा घरका सुख, थोड़ा वैभवका सुख दे दिया है, उन्हींमें मस्त हो रहे हैं ये अज्ञानी जन। जिनको यह पता ही नहीं है कि हमारी अनन्त आनन्दकी निधि इस कर्मसरकारने जप्त कर ली है, वे तो उन थोड़ेसे सांसारिक सुखोंको पाकर बड़ा हर्ष मानते हैं और इस कर्म सरकारके गुण गाते हैं। वाह बड़ा पुण्य आड़े आ रहा है, भारी समृद्धियां हैं, बड़ा सुख है, और जब यह ज्ञान बन जाय, सम्यग्दृष्टि हो, पता पड़े कि ओह! मेरे इस अनंत आनंदकी निधिको तो इस कर्म सरकारने कोर्ट कर लिया है और बदलेमें यह थोड़ासा पुण्य साधन दे दिया है, तो झट वह पुण्यसरकारको नोटिस दे देता है कि मुझे नहीं चाहिए ये थोड़े से सांसारिक सुख, मेरी तो अनन्त आनन्दकी निधि जो इस कर्मसरकारने जप्त कर ली है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वह मुझे दी जाय। बस उसे अनन्त आनन्दकी निधि प्राप्त हो जाती है।

वैराग्य और ज्ञानसे अभ्युदय—बात यहाँ यह चल रही थी कि धर्मका अनुभव बने, भोगोंसे उपेक्षा हो, आत्माकी बात रुचिकर हो, और ऐसी लगन बने कि एक ही मात्र हमारा काम है, एक ही लक्ष्य है निज सहज स्वभाव, कारणपरमात्मतत्त्व। अपने आपका वह अन्तः स्वरूप, बस वह मेरे ज्ञानमें रहे, प्रतीतिमें रहे तो मैं तो यह हूं। बस इसके मुकाबले तीनों लोककी सम्पदा भी आये तो भी उसे जीर्ण तृणकी नांई समझिये। इतना बड़ा साहस स्पष्ट बोध ज्ञानी जीवके होता है और तभी वह पार पा लेता है। हम आपको भी यही लगना चाहिए। ऐसा ही यत्न करना उचित है कि जिससे हम अपने आपके स्वरूपके निकट अधिक बस सकें।

चलत्येवाल्पसत्त्वानां क्रियमाणमपि स्थिरम्।
चेतः शरीरिणां शश्वद्विषयैर्व्याकुलीकृतम् ॥२०६४॥

अल्पशक्तिक पुरुषोंके चित्तकी अस्थिरता एवं ज्ञानबलसे मनोबलकी वृद्धि—जो अल्प शक्ति वाले मनुष्य हैं वे ध्यानको कितना ही बनायें पर स्थिर नहीं हो पाते हैं, चलित हो जाते हैं, क्यों उनको यह शक्ति मिलना कठिन है? यों कि उनका मन निरन्तर व्याकुल रहता है। आत्माका बल ज्ञान है और आत्माकी कमजोरी विषयोंकी आशा है। जो विषयोंसे व्याकुल न हो और शुद्ध स्वरूपका ज्ञान रखता हो उसको घबड़ाहट भी नहीं और उसका आत्मबल भी बढ़ा हुआ है। शरीरके अनेक रोग ज्ञानबलके अभावसे, नाना कल्पनाओंके करनेसे हो जाते हैं। पूर्वकालकी अपेक्षा आजकल मानसिक वेदना, दिलका रोग लोगोंके बहुत होता है, ब्लडप्रेसर की बीमारी भी आजकल बहुत होती है, पहिले तो लोग समझते ही न थे कि अब खून मंद गतिसे चल रहा या अब तीव्रगतिसे चल रहा, बस थोड़ा थक गए तो आराम कर लिया, फिर काममें जुट गए। उसकी परवाह न करते थे। आज तो मानसिक वेदनाएँ बहुत प्रविष्ट हो गई हैं, आत्मबल घट गया है। दिलकी धड़कन किसी समय तेज हो जाय तो लोग बड़े व्याकुल हो जाते हैं। अरे इस काल्पनिक वेदनासे, मानसिक वेदनासे कुछ बिगाड़ न होगा, सिर्फ उन गढ़ी हुई कल्पनाओंको हटा लो, चित्तको और जगह ले, जावो प्रभुके गुणानुरागमें, अपने स्वरूपके चिन्तनमें, मैं तो इस देहसे भी निराला एक शुद्ध चैतन्यमात्र हूं, इसमें बिगाड़ क्या? बस इस आत्मतत्त्वमें अपने उपयोगको लगा देनेसे ऐसा बल प्रकट हो जाता है कि वह मानसिक वेदनाओं वाला व्यक्ति उन वेदनाओंसे बच जाता है।

ज्ञानबलका प्रभाव—ज्ञानबल बहुत बड़ा बल है। ज्ञानबल वाला व्यक्ति चाहे गरीब घरानेका हो, पर वह उस बुद्धिहीनकी अपेक्षा अच्छा है जो कि धनिक परिवारमें है। लोग ऐसा कहते भी हैं। वास्तवमें अपना असली वैभव है बुद्धिका ठीक रहना। जिन पुरुषोंकी बुद्धि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

व्यवस्थित है वे अपने उपयोगको आत्मचिन्तनमें रत कर देते हैं और सर्व मानसिक क्लेशोंसे बच जाते हैं, पर जिनका चित्त व्यवस्थित नहीं, जिनका चित्त विषयोंसे व्याकुल है उनके शक्ति कम होती है और उनका ध्यानमें चित्त स्थिर नहीं रह पाता है।

न स्वामित्वमतः शुक्ले विद्यतेऽत्यल्पचेतसाम् ।
आद्यसंहननस्यैव तत्प्रणीतं पुरातनैः ॥२०६५॥

प्रथम संहनन बिना शुक्लध्यानमें स्वामित्वका अभाव—जब कि विषयोंसे व्याकुल चित्त होनेसे शक्ति कमजोर है और शारीरिक ढांचा भी कमजोर है तो ऐसे पुरुषके शुक्लध्यान की पात्रता नहीं होती है। अब इस प्रकरणके बाद शुक्लध्यानका वर्णन आयगा। शुक्लका अर्थ है सफेद, जहाँ कोई रंग नहीं उसे कहते हैं श्वेत। ऐसा ध्यान जो सफेद है, जिसमें राग-द्वेषका कोई रंग नहीं चढ़ा हुआ है ऐसी स्थितिमें जो ध्यान होता है वह शुक्लध्यान है। तो ऐसे ऊँचे ध्यानकी योग्यता हीन संहनन वालोंके नहीं होती है। ऊँचे ध्यानकी योग्यता तो वज्रवृषभनाराच संहनन वालोंके होती है। वैसे शुक्लध्यानमें उपशम श्रेणीमें रहने वालेको पहिला शुक्लध्यान होता है उनके आदिके तीन संहनन संभव हैं। सो आदिके तीन संहनन होनेपर भी हो जाता है, पर शुक्लध्यानकी विशिष्ट योग्यता वज्रवृषभनाराचसंहनन बिना नहीं होती है। उसका कारण क्या है सो अभी बतावेंगे। यह वज्रवृषभनाराचसंहननका शरीर इतना पुष्ट होता है कि कहीं ऊँचेसे गिर भी जाय तो भी, चाहे पत्थरमें आघात पहुंचे, टूट फूट जाय पर शरीरमें किसी भी प्रकारका कोई उपद्रव नहीं होता। इतना प्रबल संहनन होता है।

वज्रवृषभनाराच संहननकी प्रबलताका एक उदाहरण—जिस समय हनुमान बालक को उसकी अंजना माता अपने मामाके साथ विमानमें लिए जा रही थी तो रास्तेमें वह नन्हा सा बालक खेलता कूदता विमानसे नीचे एक पहाड़पर गिर गया। अब उसकी माता अञ्जना को बड़ा शोक हुआ, सोचा कि उसकी स्थिति क्या होगी ? खैर देखना तो था ही। जब विमान नीचे उतरा तो अञ्जनाने क्या देखा कि जिस पत्थरकी शिलापर वह हनुमान बालक गिरा था वह तो टूट फूट गयी थी और वह बालक अपने पैरका अंगूठा चूस रहा था। उसे देखकर उसकी माँको बड़ा आश्चर्य हुआ। समझ लिया कि यह मोक्षगामी जीव है, इसके शरीरमें वज्रवृषभनाराच संहनन है, यह शीघ्र ही मोक्ष जायगा। तभी तो हनुमानको लोग बजरंग बली बोलते हैं। तो उनका यह बोलना ठीक है। हनुमान वज्राङ्ग बली थे अर्थात् उनका शरीर बज्रका था। अञ्जना व हनुमान जीके नानाने हनुमानकी तीन प्रदक्षिणा देकर प्रणाम किया, तो जिनका बहुत छोटा चित्त है, जिनका संहनन हीन है ऐसे पुरुष शुक्लध्यानके स्वामी नहीं होते। ऋषीश्वरोंने बताया है कि प्रबल संहनन वालोंके ही शुक्लध्यान होता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

छिन्ने भिन्ने हते दग्धे देहे स्वमिव दूरगम् ।
प्रपश्यन् वर्षवातादिदुःखैरति न कम्पते ॥२०६६॥

वज्राङ्गबलीके उपसर्गमें भी विविक्त तत्त्वके ध्यानकी विशेषता—वज्रर्षभनाराच-संहननका धारी महायोगीके शरीर छेदा जाय, भेदा जाय, मारा जाय, जलाया जाय तिस पर भी अपने आत्माको अपने शरीरसे भिन्न निरखनेका सामर्थ्य रहता है सो वह महापुरुष ध्यान से चलायमान नहीं होता । शरीर बलिष्ठ है, प्रथम संहनन है तो ऐसे शरीर वाला शुक्लध्यान पा ही ले यह तो नियन नहीं हैं । प्रथम संहनन वाला अच्छे परिणाम करके मोक्ष भी जा सकता है और खोटे परिणाम करे तो ७ वें नरकमें भी जा सकता है । नियम तो नहीं है, पर ऐसे संहनन वालोंमें यह योग्यता है कि ध्यानसे विचलितनहीं होता । शरीर छेदा जाय, मारा जाय, जलाया जाय, तिसपर भी उसकी आत्मामें इतना साहस रहता है कि वह शरीरसे भिन्न अपने आत्मतत्त्वकी उपासना रख सकता है ।

उपसर्ग विजयका उदाहरण—गजकुमार मुनि जिनका एक दो दिन पहिले ही विवाह हुआ था, फिर कुछ छोड़ छाड़कर मुनि बन गए तो उनके स्वसुर साहबने क्रोधवश उनके सिर पर मिट्टीकी बाढ़ बनाई, कोयला भरा और आग लगा दी । सिर जलने लगा, लेकिन उत्तम संहननके धारी ज्ञानबलसे बलिष्ठ गजकुमार मुनिने उसको या तो उपयोगमें न लिया और जाननेमें आया तो जैसे परद्रव्यकी परिणति जाननेमें आती है, परद्रव्य तो है ही, उसकी ही परिणति जाननेमें आ रही है, विचलित नहीं हुए । कितने ही मुनि कोल्हूमें पेले गए, उनमेंसे अनेक मुनियोंने मुक्ति भी प्राप्त किया है । कितने ही मुनियोंको समुद्रमें फेंका, अग्निमें जलाया, अनेक कष्ट दिये, कितनी ही पीड़ायें दुष्ट जनोंने साधुवोंकी दीं, पर जो मुनि बज्रवृषभनाराच संहननके धारक हैं ऐसे मुनि अपने ध्यानसे विचलित नहीं होते ।

अन्तस्तत्त्वकी लगन बिना परिजनसम्पर्कसे बचावकी कठिनता—लगनकी बात है, जहाँ केवल एक यही दिख रहा है कि इस लोकमें सारभूत वस्तु कुछ नहीं है, वहाँ कहां लगाव रखा जाय, कहाँ चिपका जाय, धनसे, वैभवसे, परिजनसे अथवा मित्रजनसे ? अरे बाह्यमें मेरे लिए कुछ सारभूत है ही नहीं । यह दुनिया जुवेका स्थान है । जैसे कोई जुवारी कभी हार भी जाय, थोड़ा बहुत जो कुछ बचा हो उसको लेकर जाने लगे तो खेलने वाले ऐसी बात कहेंगे (बस इतनों ही दम थी, हो चुका खेल, आदि) कि वह वहाँसे उठ नहीं सकता, और वह अगर कुछ जींत जाय और सोचे कि चलो कुछ तो मिल गया; अब कहीं ऐसा न हो कि हार जायें, सो चल दे, तो खेलने वाले लोग कहेंगे—(बस खेल चुके, इतने खुदगर्ज निकले, जीत लिया बस चल दिया) यों अनेक ऐसी बातें कहेंगे कि वह खेलसे उठ नहीं सकता । इसी तरह इस संसारकी फड़ भी बड़ी कठिन है । कोई थोड़ा विवेक पाकर विरक्त होना चाहता है तो परि-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वारके लोग ऐसी बातें कहेंगे कि वह यहाँसे जा न सके। और बड़े गुरुवोंसे जितने भी प्रयत्न हो सकते हैं उतने यत्न करते हैं कि वह वहाँसे भाग न सके। यहाँ ही बना रहे, और जब हार गया है तो उसके यह बुद्धि ही नहीं उत्पन्न होती कि हम इस भीड़से जा सकें। तो पुण्य पापका जहाँ हार जीतका काम चल रहा है ऐसा यह संसार एक जुवे जैसा स्थान है, यहाँसे निकलना कठिन है। किन्तु जिसकी धुनि बन गई है, कुछ सुहाता ही नहीं है, एक सहज विशुद्ध आत्मस्वभावकी उपासना ही कल्याणका उपाय है, यही मेरा धन है, मेरा सर्वस्व है, इससे आगे मेरा कहीं कुछ है ही नहीं। यों ध्यान रखने वाला, अपनी धुनि रखने वाला तत्त्वाश्रयसे च्युत नहीं होता।

गालियोंमें मोहियोंकी प्रशंसा कल्पना—यहाँ तो थोड़ासा धन पाकर, थोड़ासा यश पाकर खुश हो जाते हैं। एक बात और ध्यानमें लावो कि यहाँ प्रशंसा करता भी कौन है? लोग तो सोचते हैं कि इसने मेरी प्रशंसा की है पर वास्तवमें वह प्रशंसा करने वाला उसे गाली दे रहा है। इस मर्मको खूब ध्यानसे समझ लो। कोई क्या कहेगा प्रशंसामें, इसके दो चार उदाहरण तो बतलावो। किसीने कह दिया कि साहब आप इनको जानते हैं? इनके चार लड़के हैं, एक लड़का कलेक्टर है, एक मिनिस्टर है, एक डाक्टर है, और एक डायरेक्टर है, बस हो गई प्रशंसा? इस बातको सुनकर वह सुनने वाला बड़ा खुश होता है कि मेरी प्रशंसा की जा रही है, पर बात वहाँ क्या है कि कहने वालेने उसे गाली दी। अरे इनके लड़के तो इतने योग्य हैं पर यह कोरे बुद्धू हैं। किसीने कहा कि इनका मकान बहुत बढ़िया है, चार खण्डका है, और सामनेकी दीवार तो बहुत ही सुन्दर है, द्वारपर तो बढ़िया नक्कासी खुदी है। बस हो गई प्रशंसा। इस बातको सुनकर वह बड़ा खुश होता है, पर उस प्रशंसा करने वालेने तो गाली दी। अरे इन पत्थरोंमें तो इतनी कला है, इतनी सुन्दरता है पर इन सेठ जी में तो कुछ भी कला नहीं है। और भी देखो—बहुतसे व्याख्यानदाता ऐसे होते हैं कि बोलते चले जाते हैं पर उनका व्याख्यान किसीको रुचता नहीं, सो सुनने वाले तो परस्परमें बातें भी कुछ करते हैं, कभी कभी बीच-बीचमें ताली भी बजा देते हैं, और चाहते हैं कि यह व्याख्यानदाता अपना व्याख्यान बन्द कर दे, पर वह बेवकूफ व्याख्यानदाता कल्पनायें करके ऐसा सोचता है कि ये लोग मेरे व्याख्यानको सुनकर बड़े खुश हो रहे हैं। वे सुनने वाले दे तो रहे हैं गाली, पर वह कल्पनायें करके समझता है कि ये लोग मेरी प्रशंसा कर रहे हैं। तो ऐसी है यहाँके यशकी बात। लोग किसीके धनका वर्णन करेंगे, शरीरका वर्णन करेंगे, पर्यायका वर्णन करेंगे, इनको सुनकर अज्ञानी जन समझते हैं कि ये लोग मेरी प्रशंसा कर रहे हैं, पर दे रहे हैं वास्तव में गाली।

स्वरूपकी धुनि वाले वज्राङ्गबलीके विशुद्ध परम ध्यानकी पात्रता—अरे कोई उस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शुद्ध चैतन्यस्वरूपका भी गुणगान करता है क्या ? उसकी तो कोई प्रशंसा करता नहीं। उसे तो कोई जानता ही नहीं। कोई स्वरूपकी प्रशंसा करे तो उसमें मैं ध्यक्ति तो न आया, स्वरूप तो सबका एकरूप है। ज्ञानी जन यहाँ की प्रशंसावोंमें अपना चित्त नहीं देते रीझते नहीं। वे तो इन सर्व चीजोंसे विरक्त रहते हैं। ऐसे ही पुरुष तो अपनी धुन बना सकते हैं, और ऐसी ही धुन बनाने वाले, उत्तम संहनन वाले महापुरुष अनेक प्रकारके शीत उष्ण आदिककी वेदनाओंको समतासे सहन करते हुए अपने आत्मस्वरूपके ध्यानमें रत होते हैं। इस कारण शारीरिक मजबूती भी एक अपना बड़ा महत्त्व रखती है यदि ध्यान उत्तम हो तो। इसी विषयमें आगेके प्रकरणमें बतावेंगे कि शुक्लध्यानमें पुरुष किस प्रकारकी स्थितिमें आता है कि एक शान्त अमृतका झरना उसमें झरता ही रहता है।

न पश्यति तदा किञ्चिन्न शृणोति न जिघ्रति।
स्पृष्टं किञ्चिन्न जानाति साक्षान्निर्वृत्तलेपवत् ॥२०६७॥

अध्यात्मयोगीकी बाह्यनिर्व्यापारता—संसार शरीर और भोगोंसे विरक्त रहने वाले और इस अंतः बसे हुए शुद्ध सहज ज्ञानस्वभावका आलम्बन ही जिनका शरण है ऐसी धुन वाले योगी जब अपने आपकी सुधमें उपयोग रखते हैं, उस समय बाहरमें कहाँ क्या हो रहा है उसपर उनकी दृष्टि नहीं है। उस ध्यानके समय उनकी मुद्रा मूर्तिवत् है, चित्रवत्, हिलती डुलती नहीं है। इस प्रकार ये योगी मन वचन कायसे निश्चल होते हैं। वे न कुछ सुनते, न कुछ बोलते, न कुछ निरखते, कहाँ कैसी गंध है उसपर भी उनका उपयोग नहीं है। कोई छुए तो उसे भी वे नहीं जान रहे। संसारमें सारभूत पुरुषार्थ तो यही है कि बाहरसे उपयोग हटकर अपने आपके उस ज्ञानप्रकाशमें उपयोग रहे।

ध्याताकी अध्यात्मकी धुनि—मैं यह हूं आत्माका जानने वाला, ऐसा ध्यान सुगम है, और इसकी बात हजारों बार भी आये तो अध्यात्मप्रेमियोंको अपूर्वसी नईसी लगती है। जैसे लोग रोज भोजन करते हैं तो रोज रोजके भोजनमें वे अघाते नहीं हैं, रोज-रोज नयासा लगता है क्योंकि उस तरफ रुचि है, उसकी उन लोगोंने आवश्यकता समझी है, तो ज्ञानी पुरुषोंने आत्माके ज्ञानस्वरूपकी उपासना करनेकी आवश्यकता इतनी अधिक समझी है कि यह निरंतर होता रहे। यह काम पूरा होनेका नहीं हैं। वे तो इस ज्ञानस्वभावकी उपासना करना ही अपना प्रमुख कर्तव्य समझते हैं। ज्ञानस्वरूपकी उपासना कर ली तो समझो सब कुछ कर लिया, अब कुछ भी करनेको नहीं रहा। यों निरन्तर आत्मस्वरूपकी उपासनाका ही काम उनके पड़ा हुआ है, ऐसा उन ज्ञानी पुरुषोंने समझा है। तो उसकी धुनमें जो आये जीवन तो उनका सफल है। जो कोई सत्यका आग्रह करने वाला योगी है उसीके शुक्लध्यान हुआ करता है। उसीका वर्णन अगले प्रकरणमें किया जायगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आद्यसंहननोपेता निर्वेदपदवीं श्रिताः ।
कुर्वन्ति निश्चलं चेतः शुक्लध्यानक्षमं नराः ॥२०६८॥

शुक्लध्यानका विशिष्ट पात्र—जिनके प्रथम संहनन है, जिनके शरीरमें बज्रकी कीली है, बज्रके हाड़ हैं, बज्रमय सारा वेष्टन है ऐसे पुष्ट संहनन वाले पुरुष ही वैराग्यकी पदवीको प्राप्त होकर अपने चित्तमें उत्कृष्ट रूपसे शुक्लध्यान करनेमें समर्थ होते हैं, वे चित्तको परम निश्चल बनाते हैं। पहिले तो तत्त्वनिर्णय होना, तत्त्वनिर्णयके बाद किसी भी तत्त्वके सम्बंध में ध्यान परम्परा रहना, फिर किसी भी तत्त्वमें एकाग्र चिन्तन करना, फिर उसकी अदल बदलकर उस धारामें स्वरूपका ध्यान करना, फिर ये विचार भी हट जायें और फिर इस प्रकारके विकल्पोंका भी जिनके प्रारम्भ नहीं है, ऐसा केवल जाननहार परिणतिमात्र रहना, यह है शुक्लध्यानकी उत्कृष्ट अवस्था। इसकी पात्रता बलिष्ठ पुरुषोंमें होती है, जिनका मनोबल, वचनबल और कायबल भी बढ़ा हुआ है।

सामग्र्योरुभयोर्ध्यातुर्ध्यानं बाह्यान्तरङ्गयोः ।
पूर्वयोरेव शुक्लं स्यान्नान्यथा जन्मकोटिषु ॥२०६९॥

ध्यानसिद्धिमें निर्विकल्पताका श्रेय—जब कौरव पांडवोंका विवाद समाप्तसा हो गया था, जब कौरवोंका कुछ न रहा, उनकी ओरसे कोई विसम्वाद न रहा, तो एक तरहसे युद्धका परिणाम निकल आया, किन्तु इसके बाद थोड़े ही समयके पश्चात् उन पांचों पांडवोंको वैराग्य उत्पन्न हुआ। इस लक्ष्मीके अभावमें लोग आशा बनाते हैं और अधिकाधिक रूपमें आ जाय तो यह आशा मर जाती है ज्ञानी पुरुषके। मोही जनोंके तो तृष्णा बढ़ती है। बाहुबलि भरत क्षेत्रपर विजय करने वाले चक्रवर्तीपर भी विजय पा चुका, समझो उसे सारा वैभव प्राप्त हो गया, और वैभवमें बात ही क्या होती है एक लोकमान्यता। इतना बड़ा वैभव पानेके बाद बाहुबलिका दिल भर चुका, कुछ भी वाञ्छा न रही और सहज ही उनके वैराग्य जगा। तो इन पांडवोंको भी विजय प्राप्त हुई, पर उसके बाद विरक्त हो गए और ध्यानस्थ हो गये पांचों पांडव। कौरवोंके किसी रिश्तेदारने पांडवोंको निरखकर उनपर बड़ा क्रोध किया और उन्हें निःशस्त्र बेघरबार देखकर उन्होंने ठान ली यह बात, कि अब इन्हें कुछ युद्धका मजा देना चाहिए। अग्नि जलायी, लोहेके आभूषण बनाकर उस अग्निमें खूब गर्म किये, जब जो लोहे का आभूषण बिल्कुल लाल हो गया तो संडासीसे उसे पकड़कर उनके गलेमें डालता गया और कहता गया कि लो तुम्हारे लिए यह हार भेंट है, यों ही हाथमें, पैरोंमें व शरीरके सभी अंगों में लोहेके खूब तप्तायमान आभूषण पहिनाये। उनके सारे शरीरके अंग जल गए। ऐसे उपद्रव के समय तीन पाण्डवोंको तो जरा भी चित्तमें कोई विकल्प न हुआ और नकुल, सहदेवके चित्तमें यह विकल्प आया कि देखो ऐसे निरपराध बलिष्ठ इन तीन भाइयोंपर कितना उपसर्ग

http://sahjanandvarnishastra.org/

हो रहा है ? उन दोनोंने अपने बारेमें तो विकल्प न किया, किन्तु उन तीन योगियोंके प्रति सोचा, सो इतनेसे विकल्पने उनका निर्वाण रोक दिया।

योगीश्वरोंकी निर्विकल्प समाधिके लाभमें ही लाभ माननेका आग्रह—कितने ही मुनि ऐसे हुए कि उनके ध्यानास्थ बैठे हुएमें उनके शरीरको कहीं सिंहने खाया, कहीं स्यालिनी ने खाया, कहीं अन्य किसी हिंसक पशुने खाया, पर वे रंच भी अपने ध्यानसे नहीं चिगे, ऐसे मुनिराज आत्मचिन्तनमें रत रहते हैं, किसी भी प्रकारका विकल्प नहीं बनाते, अपने इस शरीर तकका भी मान नहीं रखते, क्योंकि वे जानते हैं कि अब तो हमें उस सहज परम-आनन्दका लाभ होने वाला है। ऐसे लाभको छोड़कर मैं कहाँ इन बाह्य शरीरादिकोंके विकल्प में पड़ूं। वे जानते हैं कि यदि हम इस आत्मस्वरूपसे विमुख होकर किसी भी प्रकारके विकल्प में पड़े तो हम अपने इस आत्मस्वरूपमें मग्न नहीं हो सकते हैं। वे ज्ञानी पुरुष किसी हिंसक पशु द्वारा शरीरका भक्षण किए जाने पर भी निर्विकल्प समताभावमें स्थित रहते हैं। उन्हें उस निर्विकल्प परमसमाधिके लाभकी तुलनामें वे बाहरी उपसर्ग न कुछ जैसे प्रतीत होते हैं। तो ऐसे वैराग्यसे ओतप्रोत साधुके ध्यानकी सिद्धि होती है।

ध्यानसिद्धिके लिये अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग साधन—इस प्रकरणमें ध्यानको सिद्धिके सम्बन्धमें दो बातें कही गई हैं—अन्तरङ्गमें तो चाहिए ज्ञान और वैराग्य व बहिरङ्ग में बताया है बज्रवृषभनाराचसंहनन। जो बहुत बड़ी बड़ी बातें भी करते हैं धर्मके प्रसंगमें और उनके मामूली सा जुखाम भी हो जाय तो भी वे बड़ी परेशानीका अनुभव करने लगते हैं, बहुत-बहुत इलाज भी करने लगते हैं, शीत उष्ण आदिककी वेदनाएं भी नहीं सह सकते, इस प्रकारके व्यक्ति कहीं ध्यानमें लीन हो सकेंगे, शुक्लध्यानके पात्र वे कदापि नहीं बन सकते। तो शुक्लध्यानकी पात्रताके लिए ये दो चीजें बतायी हैं—बहिरङ्गमें बज्रवृषभनाराच-संहनन और अन्तरङ्गमें ज्ञानभाव और वैराग्यभाव। यदि ज्ञानभाव वैराग्यभाव और बज्रवृषभ-नाराचसंहनन नहीं हैं तो करोड़ों जन्मोंमें भी इस शुक्लध्यानकी सिद्धि नहीं हो सकती। यहां देखिये साधनाके आशयमें तो अंतरङ्ग तत्त्वको बल दिया जाता है और जिसकी इतनी अन्तरङ्ग सामर्थ्य है उसको यह भव मिलना, शरीर पुष्ट रहना आदिक संहनन मिलना ये सब बातें बनती हैं, उसे मनोवाञ्छित अन्य बाह्य साधन भी सुगमतासे प्राप्त हो जाते हैं।

ध्यानकी योग्यता पानेके लिये ज्ञान और वैराग्य लाभपर बल—ध्यानकी योग्यता बताई गई है कि प्रबल शरीरधारी हो और ज्ञानवैराग्यसे ओतप्रोत हो, इस बातको सुनकर कोई यह बात पकड़ ले कि देखो शास्त्रमें बता रहे हैं कि शरीरको खूब बलिष्ठ करना चाहिए ध्यानके लिए, तो चलो अपन इस शरीरको ही पहिले बलिष्ठ बना लें, तो ऐसा करनेमें तो स्वच्छन्दता बढ़ती है। दूसरी जो अन्तरङ्गकी बात नहीं है वह मुख्य होनी चाहिए। बज्र-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वृषभनाराचसंहनन होने से हम अपने भावोंको अपने वश कर सकते हैं, भावोंकी विशुद्धि कर सकते हैं। उस भावविशुद्धिके प्रसादसे तत्काल भी शान्तिलाभ प्राप्त होता है और भविष्यमें भी भीतरी विकास प्रगतिशील रहता है। तो इस प्रकरणसे हमें यह शिक्षा लेनी है कि ध्यान की बात तो अपनी-अपनी योग्यतापर निर्भर है। व्यवहारमें बताया है कि शुद्ध होकर हाथ पैर धोकर बड़े मुद्रा मण्डलसे ध्यानमें बैठना चाहिए, पर ध्यानके लिए ये कुछ आवश्यक बात नहीं हैं। ध्यानके लिए तो आत्माकी पवित्रता चाहिए, विशुद्ध ज्ञानदृष्टि चाहिए।

ज्ञानदृष्टिपर आत्मपवित्रताकी निर्भरता—बुन्देलखण्डको एक घटना है कि एक औरत के बच्चा पैदा हुआ और उसी स्थितिमें वह बीमार हो गई, मरणासन्न दशा हो गयी, तो पति उसके पास आकर उसकी हालत देखकर रोने लगता है, तो स्त्री कहती है कि तुम क्यों रोते हो? तो उस पतिने अपने रोनेका कारण बताया। स्त्री बोली कि हम न रहेंगी तो तुम्हारी दूसरी शादी तो तुरन्त हो जायगी, तुम्हें क्या है? तो वह पति बोला कि मेरी यह प्रतिज्ञा है कि अब दूसरी शादी न करूँगा तो स्त्री कहती है कि इस बातको तो या तो भगवान जानें या हम आप। तीसरा तो कोई गवाह यहाँ है नहीं। स्त्रीने तीन बार यह कहलवा लिया कि क्या तुम अपनी इस प्रतिज्ञापर दृढ़ हो। पतिने कह दिया कि हाँ हम अपनी इस प्रतिज्ञा पर दृढ़ हैं और अब तो तुम जो चाहती हो सो बतावो। द्रव्य दान कर दें या तुम जो कहो सो दान कर दें या तुम जो चाहो सो कर दें, तो स्त्री कहती है क्या हम जो चाहेंगी सो तुम करोगे? तो पति कहता है हाँ करेंगे। तो स्त्री कहती है कि हम यह चाहती हैं कि अब आप भी यहाँसे चले जाइये, इस बच्चेको भी यहाँसे ले जाइये और कोई भी नाते रिश्तेदार व अन्य कोई भी पड़ौसी मेरे पास न आये। आखिर पति वहाँसे चला गया और उस स्त्रीने उसी अवस्थामें नीचे उतरकर, आसन मारकर वह संन्यासमरण कर लेती है। अब कोई कहे कि उसको तो दो तीन दिन बच्चा हुए बीते थे, ५ दिन या ११ दिन तक तो वह अशुद्ध ही थी, उसे इस तरहसे समाधिमरण न करना चाहिए था, उसका यह कहना ठीक नहीं। तो भाई ध्यानकी सिद्धि तो इस आत्माकी पवित्रतासे होती है आत्माकी पवित्रता ज्ञानदृष्टि पर निर्भर है। इसके लिए हमें वस्तुस्वरूपका निर्णय और अपने सहजस्वरूपकी दृष्टि अधिक बनाना है, फिर तो जो जिस विधिसे हमारी उन्नति होनी होगी, हो जायगी। हमारा तो केवल एक ही काम है—निज सहज स्वभावका आवलम्बन रखना।

अतिक्रम्य शरीरादिसङ्गानात्मन्यवस्थितः।
नैवाक्षमनसायोगं करोत्येकाग्रताश्रितः ॥२१००॥

धर्म्यध्याताके इन्द्रियविषयोंमें मनके संयोगकी अप्रवृत्ति—धर्म सम्बंधी ध्यान करने वाला पुरुष सांसारिक परिग्रह छोड़कर आत्मामें अवस्थित होते हुए एकाग्रताको धारण करके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इन्द्रिय और मनका संयोग नहीं करता है अर्थात् इन्द्रियसे जिस पदार्थका ग्रहण होता है उसका फिर मनसे संयोग नहीं करता। यहाँ इस बातपर प्रकाश मिलता है कि इन्द्रिय तो अपना काम करनेमें समर्थ हैं, सामने कुछ आ गया तो आँखोंसे दिख ही जायगा, कानोंसे बाहरके शब्द सुन ही पड़ेंगे, रसनामें रसका स्पर्श होनेसे रसका अनुभव हो ही जायगा, नासिकासे गंध का स्पर्श होनेसे गंधका भी अनुभव हो जायगा, किसी पदार्थका स्पर्श होनेसे स्पर्शन इन्द्रिय द्वारा स्पर्शका भी अवगम हो जायगा। इन पञ्चेन्द्रियों द्वारा विषयको ग्रहण करनेपर भी मन उन्हें न ग्रहण करे ऐसी बात यह ज्ञानी पुरुष कर सकता है। वह तो मनको केवल अपने स्वरूपमें स्थिर करता है। इससे यह शिक्षा मिली कि जो लोग विवशताका अनुभव करते हैं—पदार्थ ग्रहणमें आये तो मन लग ही जाता है, वे समझ लें कि ऐसा भी ज्ञानबलसे हो जाता है कि मन नहीं फंसता है।

गृहीत इन्द्रियविषयमें मनके असंयोगका उदाहरण—इन्द्रिय द्वारा ग्रहणमें आये और मन न फंसे, इसका एक उदाहरण तो यह है कि साधुजन आहार करते हैं तो उन्हें क्या खट्टा मीठा, नमकीन आदिका स्वाद नहीं आता? आता है, किन्तु उनकी उस चीजमें आसक्ति नहीं है। यदि उन्हें खारा मीठाका पता न पड़े तो त्यागी हुई वस्तुके खानेका अन्तराय कैसे पा लें? साधुजन आहार करते हुए भी निराहार माने जाते हैं इसी कारण कि उन्हें आसक्ति नहीं है। जब कि गृहस्थ पुरुषोंको मनमें बहुत चाह रहती है कि मैं चाट पकौड़ी खाऊँ अथवा कोई अच्छी चीज बाजारमें जाकर खाऊँ या घरपर ही बनवाकर खाऊँ, तो चाहे उन्हें ये चीजें किसी कारणवश खानेको उन गृहस्थोंको मिल न सकें, पर वे निराहार नहीं कहला सकते। कारण कि उस चीजके प्रति उनके आसक्ति है, उनका ध्यान उस ओर बना रहता है तो वे साधु आहार ग्रहण करते हुए भी निराहार हैं। इन्द्रियके द्वारा कोई चीज ग्रहणमें आ जाय तिसपर भी जो ध्यानी पुरुष हैं, ध्यानी जन हैं वे उसे मनसे ग्रहण नहीं करते।

असंख्येयमसंख्येयं सद्दृष्ट्यादिगुणेऽपि च।
क्षीयते क्षपकस्यैव कर्मजातमनुक्रमात् ॥२१०१॥
शमकस्य क्रमात् कर्म शान्तिमायाति पूर्ववत्।
प्राप्नोति निर्गतातङ्कः स सौख्यं शमलक्षणम् ॥२१०२॥

सम्यक्त्वविकास—जो ध्यानमें बढ़ता है उसके गुणोंमें विकास होता जाता है, और इसीका नाम है ऊँचे-ऊँचे गुणस्थानोंमें चढ़ना। चतुर्थ गुणस्थानमें सम्यग्दर्शन हो गया तो आत्माका विकास ही तो हुआ। सर्व पदार्थ यथार्थ ज्ञानमें आने लगे, प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने स्वरूपमें है, कोई किसी अन्यके स्वरूपसे नहीं है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव—ये चार चीजें प्रत्येक स्वरूपमें हैं। जैसे घड़ी, तो जिसे हाथमें उठाया यह पिण्ड द्रव्य है, और जितनेमें यह अवगा-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हित है बस इतना ही क्षेत्र है, और उसकी जो दशा है वह काल है और इसमें जो गुण है वह भाव है। यो कोई भी पदार्थ हो उसमें ये चार चीजें होती हैं। आत्मामें जितना गुण है, पर्याय है, द्रव्य है वह सबका सब है और जितनेमें यह आत्मा फैला है वह है इसका क्षेत्र और जिस परिणतिको लिए हुए है—क्रोध कषाय अथवा ज्ञानप्रकाश विशुद्ध भाव, वह है इसका काल, और जो गुण है वह है भाव। तो आत्माके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आत्मामें ही रहे कि दूसरेमें पहुंच गए ? यों यथार्थ बोध जिसको हो जाता है इस बोधके बलसे अनात्मतत्त्वोंसे विविक्त अन्तस्तत्त्वकी प्रतीति हो जाती है बस वही तो सम्यग्दृष्टि पुरुष है।

ज्ञानीकी परतत्त्वमें परताकी प्रतीति—लोग तो इष्ट वियोग व अनिष्ट संयोगमें व घर की अनेक बातोंमें पड़कर अपनेको मोहभावके कारण परतंत्र बना लेते हैं, पर एक इस वस्तु-स्वरूपकी स्वतंत्रता और अपने यथार्थ स्वभावका भान कर लें तो उनका विकल्प संकट दूर हो जायगा, फिर वहाँ मोह ममत्व न रहेगा। ज्ञानी जीव इस देहको व किसी भी परद्रव्यको अपना नहीं समझता है वह तो अपने सहज स्वभावको ही यह मैं हूं ऐसी प्रतीति करता है। एक बार कोई पति पत्नी कहीं जा रहे थे, वे धर्मात्मा थे। पति ४०-५० कदम स्त्रीसे आगे था। पतिको एक जगह रास्तेमें २५-३० मोहरें पड़ी हुई दिखीं तो सोचा कि कहीं हमारी पत्नी इन मोहरोंको देखकर इनपर लुभा न जाय सो उसने उनपर धूल डाल दी। इतनेमें ही वह पत्नी आयी तो पूछती है कि यह क्या कर रहे हो ? पुरुषने उत्तर दिया कि ये २५-३० मोहरें पड़ी हैं सोचा कि कोई इनको देखकर लूभा न जाय सो इनपर धूल डाल रहे हैं। उस पत्नीके लिए न कहा। तो पत्नी कहती है—अरे चलो, धूलपर धूल क्यों डाल रहे हो ? तो देखो—पुरुषके मनमें तो यह आया कि ये मोहरें हैं और पत्नीके मनमें यह आया कि ये मोहरें भी धूल हैं और जो इनपर डाली जा रही है वह भी धूल है। तो ज्ञानी पुरुषोंकी अनेक ऐसी शुभ कल्पनायें होती हैं जिनसे उनका वैराग्य व्यवस्थित रहता है, वे अपने व्रतमें बढ़ते हैं।

श्रेणीमें उपशमन व क्षपण—प्रमत्तविरतसे जब अप्रमत्तविरतमें चलते हैं तो परिणामों में प्रगति होनेसे वे श्रेणीमें चढ़ते हैं, ऊँचेके गुणस्थानोंमें पहुंचते हैं। तो यहाँ दो श्रेणी हैं—उपशम और क्षपक। जो जीव क्षपक श्रेणीमें चल रहा है उसमें असंख्यात गुने कर्मोंकी निर्जरा चलती है, कर्म नष्ट होते जाते हैं, और जो जीव कर्मोंसे दबे हुए हैं उनके असंख्यात गुणे कर्म उपशमको प्राप्त होते जाते हैं। तो यह सब बल कहाँसे आया ?....एक अपने शुद्ध आत्मतत्त्व की भावनासे, उसके आलम्बनसे यह बात आयी कि स्वतः ही ये कर्म झड़ने लग जाते हैं। किसीने गीली धोतीको सूखने डाल दिया और वह छूटकर गिर गयी तो उसमें धूल चिपट गई। वह उस धूलको यों ही छुड़ाने लगे तो दूसरा समझदार पुरुष कहता है कि अरे इस धूल को यों न साफ करो, इसे यों ही सूखने डाल दो, सूख जानेपर जरासे झटकेमें सारी धूल झड़

Version 1.1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जायगी, अन्यथा जैसे जैसे धूलको छुटाना चाहोगे वैसे ही वैसे धूल चिपटती जायगी। तो यही बात यहाँ घटावो कि आत्मामें जो राग स्नेह है, रागकी चिकनाई है जिससे ये कर्म बँध रहे हैं तो क्या करें कि ऐसी ज्ञानकी धूप दिखावें, ऐसी ध्यानकी तीक्ष्ण किरणें प्रकट होने दें कि जिससे यह रागकी चिकनाई हट जाय तो यह कर्मधूल तो जरासे उपक्रममें झड़ जायगी।

ज्ञानस्वभावकी उपासनासे कर्मका विश्लेष—देखिये कर्मका नाश हम कैसे करें, हमें तो कर्म दिखते भी नहीं, कैसे हम कर्मोंको पकड़ें उनपर हमारा क्या वश है? उपाय यह है कि हम अपने भावोंको सम्हालें, रागद्वेषमें न बँध जायें, और अविकार आत्माका जो ज्ञानस्वभाव है उसकी उपासनामें रहें तो यह कर्मधूल अपने आप झड़ जायगी। तो श्रेणियोंमें उन योगीश्वरोंके जो उपशम श्रेणीमें हैं उनके तो कर्मका असंख्यात गुना उपशम होता है और जो क्षपक श्रेणीमें है उनके असंख्यात गुना क्षय होता है, और जैसे-जैसे कर्मोंका भार हटता है वैसे ही वैसे आत्मीय आनन्दका अनुभव बढ़ता है, जैसे जैसे आत्मीय आनंदका अनुभव बढ़ता है वैसे ही वैसे उन कर्मोंका भी झड़ना हो जाता है। इसमें शिक्षाकी बात यह है कि एक अपने को सम्हाल लें तो सब कुछ सम्हल गया और अपनेको न सम्हाल पाया तो सब कुछ बिगड़ गया।

धर्मध्यानस्य विज्ञेया स्थितिरान्तर्मुहूर्त्तिकी।
क्षायोपशमिको भावो लेश्या शुक्लैव शाश्वती ॥२१०३॥

धर्मध्यानकी मुख्य लेश्या व कालस्थिति—धर्मध्यानकी स्थिति अन्तर्मुहूर्तकी है। बदलता रहे, फिर होता रहे यों परम्परा तो चलती है, पर जो धर्मध्यान हुआ है वह अन्तर्मुहूर्त तक रहता है और इसका भाव क्षायोपशमिक है। धर्मध्यान चारित्र मोहके क्षयोपशमसे और ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे होता है, दोनोंका सुयोग होनेपर ध्यानकी उत्पत्ति होती है, तो इसका भाव क्षायोपशमिक है और केवल शुक्ललेश्या रहती है यह उत्कृष्टतासे बात बतायी जा रही है। धर्मध्यान चतुर्थ गुणस्थानसे प्रारम्भ होता है और चतुर्थगुणस्थानमें ६ लेश्यायें, ५वें गुणस्थानसे ३ लेश्यायें सातवें गुणस्थान तक शुभ और अष्टम गुणस्थानसे केवल शुक्ललेश्या है, पर एक अतिशयकी बात बतायी जा रही है कि जो धर्मध्यानमें रहने वाला पुरुष है उसकी इतनी कषाय मंद है कि वह अपनी वीतरागताका शाश्वत दर्शन करता है, उसका आलम्बन लेता है, उसके शुक्ललेश्या होती है।

धर्म्यध्यानका प्रभाव—धर्मध्यान करने वाले पुरुषकी एक स्थिति बतलाई गई है कि वह किस अवस्थामें रहता है, धर्म्यध्यानी पुरुष पवित्र है, दूसरोंको शान्तिकी छाया दे सकनेमें समर्थ है। यहाँ भी किसी ज्ञानी ध्यानी योगीके निकट कोई बैठे तो उसका विषय कषायोंका परिणाम दूर होने लगता है, और जो ऐसे योगीश्वर हैं उनके निकट तो सिंह, हिरण भी एक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

साथ खड़े हो सकते हैं, अहिंसाकी उनके परम उत्कृष्टता रहती है। जो एक अपनेमें अविकार भावको ही उपयोगमें लिए हुए हैं उनका ऐसा विशुद्ध परिणमन है कि उस जगह जाति विरोधी जीव भी हों तो भी उनके दर्शन कर वे अपनी ही कल्पनामें, अपने ही ज्ञानसे प्रभावित होकर बैर विरोधको छोड़ देते हैं। कुछ कुछ तो यहाँ भी बात देखी जाती है। कोई पुरुष परस्परमें लड़ रहे हों और उनके पाससे कोई धीर गम्भीर शान्त पुरुष निकल जाय तो वे लड़ने वाले लोग कुछ न कुछ शान्त हो जाते हैं।

परम अहिंसककी आदर्श मुद्रा—अहिंसातत्त्वमें जो ऊँचे बढ़े हुए हैं, अपने स्वभावके ध्यानमें जिनका अभ्यास हुआ है उनकी मुद्रा तो बहुत ही अपूर्व होती है और ऐसे आत्माके ध्यान करने वाले पुरुषके मुखकी जो मुस्कान है वह अन्यत्र नहीं है। ऐसे पुरुषोंके जिन्हें दर्शन हो जायें उनका बड़ा सौभाग्य है। उनके दर्शन करनेसे एक विशुद्ध आनंद जगता है। उनकी मुख मुद्रा, उनके ओंठ इन सबका परिणमन ऐसा विशुद्ध मुस्कानको लिए हुए रहता है कि जिसको निरखकर लोग अपनी कषाय बैर विरोध जोड़कर शान्त हो जाते हैं। यहाँ तो कुछ थोड़ासा विषय-सुख प्राप्त करके लोग बहुत हँसते हैं, पर उनके हँसते समयका फोटो लिया जाय तो वह बड़ा भद्दा जंचेगा, लेकिन आत्माका जो विशुद्ध सहज आनंद है उसका जो अनुभव होता है, उसमें जो मुद्रा बनती है वह अपूर्व है, अलौकिक है, ऐसी ही मुस्कान प्रतिमाके मुखपर बनानेकी कोशिश कर सकते हैं कारीगर लोग। प्रतिष्ठित विशुद्ध प्रतिबिम्बकी मुद्राको निरखकर आप अंदाजा कर सकते हैं कि आत्मीय आनंदका अनुभवन करने वालेकी मुद्रा किस प्रकार होती है, इसके मुकाबिलेमें जगतके तीनों लोकके समस्त वैभव जीर्ण तृणकी तरह हैं!

इदमत्यन्तनिर्वेदविवेकप्रशमोद्भवम् ।
स्वात्मानुभवमत्यक्षं योजयत्यङ्गिनां सुखम् ॥२१०४॥

स्वात्मानुभवके प्रतिपक्षी कल्पनावोंसे क्लेशोंमें नियुक्ति—संसार शरीर भोगोंसे विरक्त होनेके कारण तथा अनात्मतत्त्वमें और सहज आत्मतत्त्वमें विवेक होनेके कारण एवं प्रशम भाव होनेके कारण उत्पन्न हुआ जो स्वानुभव प्रत्यक्ष है वह प्राणियोंको शान्तिमें लगाता है। देखिये हम एक जाननके सिवाय और क्या कर सकते हैं? उसके साथमें रागद्वेषकी भी प्रेरणा होती है जिससे मिलकर एक कल्पना बनती है। कल्पना किसका नाम है? रागद्वेषके सम्बंध से ज्ञानकी जो परिस्थिति बनती है उसका नाम कल्पना है। तो कोई हम कल्पना करते हैं तो वह भी हम ज्ञानका ही काम कर रहे हैं। कभी कल्पनातीत होकर एक शुद्ध तत्त्वका अनुभव करते हैं तो वहाँ भी हम ज्ञानका काम करते हैं, एक जाननके सिवाय और कुछ क्या कर सकते हैं? अब इन ज्ञानोंमें ही यह विवेक करना होगा कि किस प्रकारका ज्ञान हमारे क्लेश

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का हेतु है और किस प्रकारका ज्ञान हमारे आनन्दका हेतु है ? जिस जाननेमें परकी ओर लगाव रहता है, चाहे वह रागरूपमें रहे अथवा द्वेषरूपमें रहे, वहाँ परके लगावके कारण क्लेश होता है। इसका कारण यह है कि पर अत्यन्त भिन्न है, उसकी ओरका जो लगाव है वह इसका मिथ्या प्रयोग है।

आध्यात्मिक चोरीका अपराध—हे आत्मन् ! क्यों अपनाता है ? जो अपना नहीं है, अपनेसे अत्यन्त भिन्न है उसको अपनानेसे तो कुछ मिलेगा नहीं। लोकमें भी जो दूसरेकी वस्तु को अपनाते हैं उन्हें दण्ड मिलता है। चोरीका अर्थ ही क्या ? दूसरेके घरमें रखी हुई चीजको उठाकर अपने घर रख लेना और उसे अपनी मान लेना, इस ही का नाम तो चोरी है। परकी चीजको यह मेरी है इस प्रकारकी मान्यता चोरीमें होती है। तो यहाँ अध्यात्मविधिमें चोरी का स्वरूप देखो—जो परवस्तु हैं शरीर धन वैभव, रूप, रस, गंध, स्पर्श ये अत्यन्त पर हैं, इन्हें अपनाना, इन्हें आपा मानना, इन्हें अपना हितकारी मानना बस यही चोरी है, ऐसी चोरी करने वाले यहाँ प्रायः सभी हैं तो इन्हें दण्ड कौन दे सकता है ? दण्ड तो इन्हें स्वयं प्रकृत्या मिल जाता है। तत्काल तो क्लेश होना, चिन्ता होना और आगामी कालमें भी उस कालमें बँधे हुए कर्मोंके उदय कालमें इसे क्लेश होना ये सब चलते हैं। तो ऐसा जानन जिसमें राग-द्वेषका मैल मिला हो, जिससे कल्पनाओंका रूप बनता है वह तो क्लेशका हेतु है। चाहे वह कल्पना एक मौज मानने वाली हो और चाहे वह कल्पना विषाद मानने वाली हो, दोनोंमें क्लेश है। जैसे संतप्त पानीमें उबाल आता है तो यहाँ देखिये कि रागके संतप्त हृदयमें भी क्षोभ होता है और द्वेषसे संतप्त हृदयमें भी क्षोभ होता है। पानीके शुद्ध स्वादको पानी गर्म कर दिया जाय तो खराब हो जाता है और ठंडी मशीनमें रखकर उसे ठंडा कर दिया जाय तो उसका स्वाद बिगड़ जाता है, यों ही आत्माका जो विशुद्ध परिणमन है क्षोभरहित वह न राग में रहता है और न द्वेषमें रहता है।

परद्रव्योंके आकर्षणके कुमार्गमें शान्तिकी असंभवता—जो लोग धन वैभवको पाकर मौज मान रहे हैं, फूल रहे हैं, वे लोग जरा भीतर तो निरखें कि क्या कर रहे हैं ? अपने स्वरूपसे चिगकर किसी परतत्त्वमें आकर्षित हो रहे हैं। उपयोग बाहर लगे, परमें रमे तो इसका फल नियमसे क्लेश है, और यही कारण हैं कि आज कोई भी पुरुष चाहे धनी हो, चाहे नेता बना हो, चाहे मिनिस्टर हो गया हो, पर चैन किसीको नहीं मिल रहा। शान्ति उन्हें है जो हृदयसे ईमानदारीके साथ अर्थात् सम्यग्ज्ञान और विवेकके साथ परवस्तुवोंका त्याग किए हुए हैं, केवल यह मैं ही अपना ज्ञानमात्र तत्त्व हूं. मैं ज्ञानमात्र हूं, इस प्रकार अपनेको केवलज्ञानरूप जो अपनेको अनुभव करते हैं शान्ति उनको है। यही स्वानुभवका मार्ग है। जो इन्द्रियसे परे है, ऐसा स्वानुभव प्राणियोंको सुखमें लगाता है। वह अनुभव कैसे बनेगा—इसके लिए कुछ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उपाय भी विशेषणमें बता दिए। प्रथम तो विवेक। मैं क्या हूं, जब उपयोग केवल ज्ञानज्योति को ही विषय करता है, एक ज्ञानमात्रका जब उसे विवेक आता है कि मैं तो यह हूं और शेष पर है, जिसके यह विवेक आ गया वह नामवरीको, धन सम्पदाको, लोगोंकी प्रशंसाको, लोगों में सम्पर्क बढ़ाया जानेको, इन सारी चेष्टावोंको वह धूलवत् मानता है। यह है विवेककी परीक्षा। लोग मुझे जान जायें कि यह ज्ञानी है, विवेकी है, बड़ा अच्छा है, यदि इस तरहकी चित्तमें धुन है तो समझ लीजिए कि विवेक अभी नहीं जगा। त्यागकी परम्परा विशुद्ध रूपमें तो ऐसी है कि किसीको पता पाड़ना भी जरूरी नहीं है। पता लगे दूसरोंकी ओरसे वह बात अन्य है, पर त्याग करने वाला चाहे धनका त्याग करे, चाहे भीतरी दुर्भावोंका परित्याग करे वह अपने आप उसे दूसरोंको पता करनेका चित्तमें ख्याल नहीं करता। मैं मैं हूं, अपने लिए हूं। यों ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वका जिसे दर्शन हुआ है उसको स्वानुभव प्राप्त होता है।

संसार शरीर भोगोंसे विरक्त जनोंका स्वानुभवपर अधिकार—जो संसारसे विरक्त है, संसार मायने अपने रागद्वेष विकल्प, उनसे विरक्त है वही स्वानुभवका पात्र है। जो धर्म-चर्चा करते हैं या किसी समाचारकी बात कहते हैं, और जो मैं कहता हूं उसे दूसरे न मानें तो चित्तमें जो क्षोभ करते हैं, समझिये उसका संसारमें प्रेम लगा है, इसको क्षोभ है। संसार नाम है अपने विकल्पोंका। विकल्पोंका ऐसा मानना कि ये विकल्प ही मैं हूं, यही मेरा सर्वस्व है, इससे ही मेरा हित है, इससे ही मेरा शान्तिमय जीवन है, ऐसा जो उसने अपना विश्वास बनाया है, ऐसी जो उन विकल्पोंकी पकड़ की है यही तो संसार है, और जो संसारसे विरक्त हैं, निर्लेप हैं, बोल लिया, तत्त्वचर्चा कर लिया, तत्त्वके सम्बंधमें कुछ प्रतिपादन कर लिया इस विधिसे कि अपनेको भी सुनाया जा रहा है और अपनेमें भी उसका रस लेता जा रहा है। जब कोई उस बातको न माने तो न सही। अरे जीव तो अनंतानंत हैं, इन दो चार जीवोंपर ही क्यों विरोध हो गया, ऐसे विकल्पोंकी पकड़ होना यही तो संसारकी पकड़ है। इसमें सब बातें आ गईं। केवल ज्ञानचर्चाके विकल्पकी ही बात नहीं कह रहे, नामवरीका विकल्प, यशका विकल्प, इन सब विकल्पोंकी पकड़ है वही संसारका राग है। और शरीरके साधनमें, पोषणमें जो कल्पना है, विकल्प है वह है शरीरका राग। और भोगोंके साधनमें, इन्द्रियके विषयोंके भोगनेमें जो इसकी प्रीति है वह है भोगोंका राग। इन संसार शरीर और भोगके विषयोंसे जो विरक्त है तथा जिनके ऐसा समर्थ उच्च भेदविज्ञान है कि कोई पुरुष तुरन्त भी विरोध कर रहा है अथवा पहिले किया है उस पुरुषपर ये क्षमाभाव रखते हैं, अपनेमें क्षुब्ध नहीं होते हैं, ऐसी स्थितिमें वह स्वानुभव उत्पन्न होता है जो इन्द्रियसे परे है, वह स्वानुभव प्राणियोंको सुखमें लाता है।

अपनेमें ज्ञान और वैराग्यका निरीक्षण—अपनेको सुखमें लानेकी बात सभी लोग

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सोच रहे हैं। सबका यही प्रयत्न है, पर सत्य उपाय क्या है ? तो आचार्यदेव करुणा करके बता रहे हैं—वह यही उपाय है—वैराग्य, सम्यग्ज्ञान। इनमें हम कुछ उपयोग दे रहे हैं क्या ? निरख लीजिए। सिनेमाकी बात हो कहीं तो टिकट खरीदनेके लिए रुपया भी खर्च करते, लाइन भी लगाये खड़े रहते, कितना चाव रहता है सिनेमा देखनेका। ऐसे ही बड़ा स्वादिष्ट भोजन करनेके लिए अपना कितना चाव बनाये रहते हैं, खूब दौड़ धूप करके अनेक प्रकारकी चीजोंको जुटाते हैं, धन वैभवका संचय करनेके लिए तो रात दिन ख्याल बना ही रहता है। अरे उस धन वैभवके बढ़नेकी कुछ हद भी मान रखी है क्या ? कितना भी हो जाय, पर संतोष नहीं होता है। तो सन्तोष न होनेसे जो कुछ भी वैभव प्राप्त हुआ है उसका भी सुख नहीं लूट पाते हैं, जब उस वैभवकी तृष्णा लगी है तो सुखसे भोजनपान भी नहीं कर पाते हैं, इधर उधरकी दौड़ धूप बनी रहती है, धर्मकी बात सुननेका समय नहीं निकल पाता है, चित्त भी विषयोंसे इतना व्याकुल है कि धर्मकी बात, तत्त्वकी बात समझनेको कुछ बुद्धि नहीं लगायी जाती। इन सभी बातोंमें ध्यान देकर आप अपनेमें निरखिये और निर्णय बनाइये कि अभी हम सही रास्तेपर हैं या अभी सही रास्तेसे अलग हैं।

सुखके वास्तविक उपायको त्वरित करनेका अनुरोध—सुख पाना है तो सुखका उपाय मात्र ज्ञान वैराग्य है, चाहे इस बातको अभीसे मान लें और चाहे १०-५ वर्ष ठोकर खाकर मानें या कुछ भवोंमें ठोकर खाकर मानें। यदि शुद्ध आनन्द मिलेगा तो एक इस ही उपायसे मिलेगा, अन्य कोई उपाय नहीं है। तो उसके लिए हम विलम्ब क्यों करें ? समय लम्बा क्यों लगायें। कुछ लोग सोचते हैं कि अभी इतने दिन और मौजमें अपना समय गुजार लें, फिर तो बस धर्ममें ही अपना चित्त लगायेंगे, तो यह सोचना उनका ठीक नहीं है, क्योंकि पहिली बात तो यह है कि उनको वैसा अवसर ही न मिल पायगा कि वे धर्मध्यानमें लग सकें, उनका वह समय लम्बा हो जायगा। जो लोग कैसी भी परिस्थिति हो, इस ही समय अपनी शक्तिके अनुसार धर्मपालनका आदर नहीं करते। वे चाहे कितना ही सोचें और कहें कि हम इतने वर्ष बाद धर्ममें लगेंगे, अभी तो हम एकदम जो कुछ भी कहो, अधर्म पाप तृष्णा इनमें जुटे हुए हैं, और इतने वर्ष बाद एकदम धर्ममें जुट जायेंगे तो उनका यह सोचना और कहना गलत है, क्योंकि जिसे धर्मभावका इस वक्त भी कुछ आदर नहीं है वह धर्मभावका आदर आगे क्या करेगा ? इससे जो भी स्थिति है उस ही स्थितिमें जितना अधिक हो सकता इस धर्मका पालन करें, ज्ञानकी बात सीखें, प्रभुकी भक्तिमें रहें, अपने आत्माका चिन्तन करें। प्रत्येक सम्भव उपायोंसे हम अभीसे धर्ममें अधिक जुट जायें तब तो हमारा भला है। उम्रकी बात नहीं निरखना है कि अभी तो हमारी उम्र थोड़ी है, कुछ थोड़ी उम्र अभी और गुजरने दें, अरे जो जब चेत जाय, जितनी जल्दी चेत जाय उतना भला है। उम्र तो अनंत कालकी हो चुकी है, अभी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कितनी उम्र और बढ़ाना चाहते सो तो बतावो। अरे अपने कल्याणका उपाय अभीसे बना लो, सही विवेक जगे, संसार, शरीर और भोगोसे विरक्ति जगे और प्रसमभाव उत्पन्न हो इसीसे स्वानुभव प्रत्यक्ष बनता है और उसके कारण यह वास्तविक आनंदका पात्र होता है।

अलौल्यमारोग्यमुनिष्ठुरत्वं गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पम्।
कान्तिः प्रसादः स्वसौम्यता च योगप्रवृत्तेः प्रथमं हि चिह्नम् ।।२१०५।।

अध्यात्मयोगप्रवर्तकोंका प्रथम चिह्न—अध्यात्मयोगमें जो प्रवेश करते हैं उनके प्रथम चिह्न ये हैं—तो धर्मध्यानमें अपना यत्न करते हैं उनका परिचय दिया जा रहा है—प्रथम तो विषयोंमें इन्द्रियकी लम्पटता नहीं होती। इंद्रियके विषय ५ हैं, इन ५ विषयोंमें इसकी आसक्ति नहीं रहती है। थोड़ेसे यत्नमें जो विषयसाधन होने आवश्यक हैं उनमें ही यह गृहस्थ रहता है, और साधुजन तो उनका विकल्प नहीं करते। समयपर आवश्यक होनेपर सविधि आहार आदिक कर लिया, पर न विकल्प पहिले और न विकल्प बादमें। इंद्रियविषयोंमें लम्पटता नहीं रहती। अब सोच लीजिए, जो लोग खाने पीनेका बड़ा शौक रखते हैं, बाजार की चाट पकौड़ी जलेबी आदि खाते हैं, बहुत-बहुत चाय पीते हैं, अनेक प्रकारकी चीजें पाउडर लिपस्टिक आदि बिल्कुल व्यर्थकी चीजोंका प्रयोग करते हैं क्या उन्हें अपने कुछ कल्याणकी भी सुध है? अरे उनकी दृष्टि तो बाह्यमें लगी हुई है, उन्हें अपने आत्मस्वरूपकी कहाँ सुध है? आप ही बतावो कि जिसकी इन इंद्रिय विषयोंमें लम्पटता है, बाह्यमें दृष्टि है वे इस कल्याणकी प्राप्तिके पात्र भी हैं क्या? नहीं हैं। तो धर्मध्यानमें यत्न करने वालोंकी यह प्रथम निशानी है कि वे इंद्रिय विषयोंमें लम्पटता नहीं रखते।

अध्यात्मयोग प्रवर्तकोंके शेष चिह्न—धर्मध्यानके प्रवर्तकोंका दूसरा चिह्न है—मनका चंचल न होना, थोड़ा कहीं मन बाहरमें चला भी जाय तो झट स्थिर हो जाय। तीसरा चिह्न है—आरोग्य रहना, चौथी बात है–निष्ठुरता न होना, ५वीं बात है शरीरका गंध शुभ होना, दुर्गन्ध वाली बात शरीरसे न निकलना, योग साधना वालेकी बात कही जा रही है। आप सोचेंगे कि इनसे उसका क्या सम्बंध?....अरे जब अरहंत अवस्था होती हैं तो शरीरका क्या रूप बनता है, वहाँ अतिशय करके बनता है, तो कुछ थोड़ीसी बात यहाँ भी दिखती है। एक तो योगीके मलमूत्रका अल्प होना, प्राकृतिक है, क्योंकि योगियोंका आवश्यक अल्प आहार होता है। ज्यादा भोजन करनेसे मलमूत्रकी अधिकता होती है, उनका शरीर कान्ति सहित होता है, अर्थात् शक्तिहीन नहीं होता है, अपने धर्मध्यानके कार्यमें प्रमाद न आना, चित्तमें प्रसन्नता होना, मनमें रंच भी मलिनता न होना, शुद्ध पवित्र होना और शब्दोंका उच्चारण सौम्य होना आदिक ये धर्मध्यानके बाह्य चिह्न बताये गए हैं। यह केवल एक पहिचानके लिए कहा गया है, भीतरमें तो वे कहाँ लग रहे हैं, किस पावन तत्त्वमें अपना उपयोग जमाये हुए

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं वह पवित्रता है उनकी वास्तविक आन्तरिक । पर बाह्यमें ये भी चिह्न हो जाया करते हैं । इस प्रकरणसे हमें यह शिक्षा लेनी है कि हम विवेक बनायें, वैराग्य बढ़ायें, क्षमाभाव बढ़ायें और अपने आत्माके अनुभव करनेकी धुन रखें, इससे हमारे संकट दूर होंगे ।

अथावसाने स्वतनुं विहाय ध्यानेन संन्यस्तसमस्तसङ्गाः ।
ग्रैवेयकानुत्तरपुण्यवासे सर्वार्थसिद्धौ प्रभवन्ति भव्याः ॥२१०६॥

धर्मध्यानके फलमें उत्तम देवगतिमें जन्म—धर्मध्यानके वर्णनके पश्चात् इस प्रकरणमें धर्मध्यानके फलमें भव्य पुरुष पर्यायके अन्त समयमें समस्त परिग्रहोंको छोड़कर अपना शरीर छोड़ते हैं और ऐसे पुरुष पुण्यके स्थानमें उत्पन्न होते हैं । धर्मध्यान सप्तम गुणस्थान तक कहा गया है । धर्मध्यानकी उत्कृष्टता प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरतमें होती है, वहाँ परिग्रहके त्यागी, केवल आत्मभावके अनुरागी ज्ञानविलासमें रमकर इस पर्यायको छोड़ते हैं तो वे ऐसे स्थानोंमें उत्पन्न होते हैं जहाँ पुण्यका उदय प्रचुर रहता है—जैसे नवग्रैवेयक, नवअनुदिश, पंच अनुत्तर जिसमें सर्वार्थसिद्धि मुख्य स्थान है । नवग्रैवेयक कहाँ है ? यह स्वर्गोंसे ऊपर है ।

वैकण्ठवासी देवोंकी चर्चा—थोड़ी चर्चा आजके प्रकरणमें स्वर्ग और स्वर्गसे ऊपर निवास करने वाले देवोंकी होगी । उनके स्थान कहाँ हैं, सोलह स्वर्गोंके बाद ग्रैवेयक लगता है, और यों समझिये—जैसे ७ बालक एकके पीछे एक खड़े हो जायें और वे पैर पसारकर हाथको कमरपर रखकर खड़े हों तो वह लोकका सही आकार बनता है । उसमें जो बीचका बालक है चौथे नम्बरका, उस बालकके गलेसे लेकर जितनी गलेकी चौड़ाई है उतनी चौड़ी लाइन नीचे तक जमीन तक खींच लें, जितना उस नालीका स्थान है, वहाँ ही त्रस जीव रहते हैं, इस कारण उसे त्रसनाली कहते हैं तो नाभिस्थानपर मध्यलोक है, नाभिसे ऊपर ऊर्ध्वलोक है, तो स्वर्गकी रचना बहुत ऊँचे तक चली गई है । इसके बाद ग्रैवेयककी रचना है । ग्रीवासे ग्रैवेयक शब्द बना, और लोग उसे कहते हैं बैकुण्ठ । और शुद्ध शब्द कहना हो तो वैकण्ठ । जो लोकका कंठस्थान है वह है वैकण्ठ । वही है बैकुण्ठ । तो बैकुण्ठमें जाकर जीव चिरकाल तक रहता है, और लोग उसे मोक्ष मानते हैं, किन्तु ऐसा मोक्ष मानते हैं कि चिरकाल निवास के बाद उसे फिर जन्म लेना पड़ता है तो वह यही ग्रैवेयक है । यहाँ भी २३ सागरसे लेकर ३१ सागर पर्यन्तकी आयु होती है । एक सागर अनगिनते अरबों खरबों वर्षोंका होता है । उसकी संख्या ही नहीं, तो वह चिरकाल हुआ, इतने काल तक वहाँ रहता है, फिर उसके बाद वहाँसे उसे यहाँ जन्म लेना पड़ता है । वहाँ सुख सांसारिक दृष्टिसे बहुत कुछ है । वे वेदना-रहित हैं, उनका दिव्य काय है, मंद कषाय है, ऐसे पुण्यस्थानमें धर्मध्यानी पुरुष उत्पन्न होते हैं, पर इन पुण्यस्थानोंमें परिग्रहका त्याग करके ही उत्पन्न हो सकते हैं । मुनिव्रत धारण करके, सकल संयम धारण करके इन स्थानोंमें उत्पन्न होते हैं ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वैकुण्ठसे ऊपरके देवोंके स्थान—स्वर्गोसे ऊपर ६ पटलोंमें कुछ विमान बने हैं। वहाँ नवग्रैवेयक है, उससे ऊपर एक पटलमें विमान है उसे अनुदिश कहते हैं। अनुदिशमें रहने वाले देव ग्रैवेयकसे भी उत्कृष्ट हैं, और उसके ऊपर एक पटल है जहाँ ५ विमान हैं, जिसके बीचमें सर्वार्थसिद्धि है और चारों ओर विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित नामके विमान हैं। उनमें रहने वाले देव अनुदिशवासियोंसे भी उत्कृष्ट हैं। उसके ऊपर एक सिद्धशिला है और उसके ऊपर सिद्धोंका निवास है। उन पुण्यस्थानोंमें ये धर्मध्यानी पुरुष उत्पन्न होते हैं। यहाँ यदि थोड़ेसे प्राप्त वैभव भोगोंका परित्याग कर दिया जाय तो चिरकाल तक ये सुख भोगें ऐसे स्थानों में उत्पन्न होते हैं और कुछ वर्षोंके पाये हुए समागममें यह जीव लम्पटी हो जाय तो उसकी उत्पत्ति दुर्गतियोंमें होती है।

तत्रात्यन्तमहाप्रभावकलितं लावण्यलीलान्वितं,
स्त्रग्भूषाम्बरदिव्यलाञ्छनचितं चंद्रावदातं वपुः।
संप्राप्योन्नतवीर्यबोधसुभगं कामज्वरार्तिच्युतं,
सेवन्ते विगतांतरायमतुलं सौख्यं चिरं स्वर्गिणः ॥२१०७॥

कल्पवासी और कल्पातीत देवोंकी अवस्था—जो देव धर्मध्यानके प्रभावसे स्वर्गमें उत्पन्न होते हैं, जो ग्रैवेयकसे नीचे और मध्यलोकसे ऊपर हैं वे भी वहां अत्यन्त प्रभाव सहित हैं, सुन्दरता और क्रीड़ावोंसे युक्त हैं, ये स्वर्गोंके रहने वाले देव देवांगनाओं सहित होते हैं, ऊपरके देवोंके इतने मंद कषाय हैं कि उनके कामव्यथा नहीं जगती है। तब समझ लीजिए कि यह कामकी व्यथा होना पापका उदय है और उसके साधन जुटाना एक क्लेशकी चीज है। स्वर्गोंसे ऊपरके देव जिनका प्रभाव, जिनका सुख, जिनकी वृत्ति, जिनको धर्मचर्चाका प्रोग्राम स्वर्गोंसे भी उत्कृष्ट है, वहाँ पर कामकी व्यथा नहीं होती है, और वे वहाँ अकेले ही रहते हैं, उनके साथ देवांगनायें नहीं होती हैं।

कामव्यथित मूर्खोंका उदाहरण—दो मूर्ख जा रहे थे, उन्हें रास्तेमें मिली एक बुढ़िया। उन दोनों मूर्खोंने किया राम राम, बुढ़ियाने दिया आशीर्वाद। तो वे दोनों आगे चलकर इस बातपर झगड़ने लगे कि बुढ़ियाने आशीर्वाद किसे दिया? एक कहे कि हमें दिया और दूसरा कहे कि हमें दिया। फिर उन दोनोंने सलाह की कि चलो बुढ़ियाके पास चलकर पूछें कि तुमने हम दोनोंमें से किसे आशीर्वाद दिया? गये वे दोनों बुढ़ियाके पास। पूछा कि तुमने किसे आशीर्वाद दिया? तो बुढ़िया कहती है कि तुम दोनोंमें से जो अधिक मूर्ख होगा उसको हमने आशीर्वाद दिया। तो एक बोला—अच्छा बुढ़िया दादी तुम हमारी मूर्खताकी कहानी सुन लो। ····सुनावो।····मेरे दो स्त्री हैं, एक स्त्री तो थी अटारीपर और एक स्त्री थी नीचे। तो जब मैं अटारीसे उतरने लगा तो एक स्त्रीने ऊपरसे हाथ पकड़कर ऊपरको खींचकर कहा—यहाँ

Version

http://sahjanandvarnishastra.org/

आवो, दूसरीने नीचे पैर पकड़कर खींचकर कहा—यहाँ आओ सो उस रस्सा-कसीमें देखो हमारी टांग टूट गयी। तो हम कितना बेवकूफ हैं ? दूसरेने कहा—बुढ़िया दादी अब हमारी मूर्खता की कहानी सुनो।…सुनावो। मेरे दो स्त्री हैं, एक बार रातमें मैं लेटा था, मेरे दोनों हाथोंपर दोनों स्त्री सिर रखकर लेटी थीं, मेरे मस्तकके पास कुछ ऊपरमें एक दीपक रखा था। एक चूहा आया, दीपककी जलती हुई बाती खींचकर भागने लगा तो वह बाती मेरी आँखपर आ गिरी। अब मैंने सोचा कि यदि किसी हाथसे बाती उठाता हूं तो इन स्त्रियोंको कष्ट होगा, सो बाती न उठानेसे देखो मेरी यह आँख फूट गई। तो मैं कितना बेवकूफ हूं ?…तो अब बतावो बुढ़िया दादी तुमने किसे आशीर्वाद दिया ? तो बुढ़िया कहती है कि अच्छा—हमने तुम दोनोंको ही आशीर्वाद दिया। सो सर्वत्र समझ लीजिये—ये कामव्यथायें तो पापके उदय हैं।

देवोंके सुखका साधारण जनोंपर आकर्षण—स्वर्गोंमें भी जैसे-जैसे ऊँचे स्वर्गोंके देव हैं वैसे ही वैसे उनमें विकार कम होता रहता है, लेकिन देवांगनायें हैं सोलह स्वर्गोंके देवोंके। वे देव वहाँ माला, भूषण, वस्त्र दिव्य गंध पुष्प आदिकसे युक्त अनेक स्थानोंमें रहकर अपना चित्त प्रसन्न करते रहते हैं। वे शुक्लवर्णके शरीरको प्राप्त करते हैं। ज्ञानसे वे सुभग हैं, काम-ज्वरकी वेदनासे रहित हैं, अंतरायरहित ऐसे सुखोंको वे चिरकाल पर्यन्त भोगते हैं। देखो—देवोंकी बात प्रायः सबके चित्तमें है, और वे स्थूलविवेकी जब धर्म करते हैं, दान करते हैं, उपवास करते हैं, व्रत पालते हैं तो यह इच्छा रखते है कि मैं देव बनूं, पर देव हैं क्या ? ये ही संसारी प्राणी। देवोंके चार गुणस्थान बताये गए हैं, इसके मायने यह हैं कि देव संयमा-संयमको धारण नहीं कर सकते। संयमकी बात तो दूर रहो, लेकिन इससे इतनी बात तो जानी गई कि सबके चित्तमें यह बात समायी हुई है कि देवोंको सुख बहुत होता है। तभी तो देवजन्मकी वाञ्छा रखते हैं मनुष्य लोग, पर मोक्षमार्गकी दृष्टिसे जिसमें आत्माका विकास बने उस दृष्टिसे देवगतिसे भी उत्तम यह मनुष्यगति है।

मनुष्यभवका महत्त्व—यदि कोई धर्मके ढांचेमें ढालकर अपना आत्मदर्शन किया करे तो यह मनुष्यगति उस देवगतिसे भी उत्तम प्रतीत होगी है। जब तीर्थंकर भगवान विरक्त होते हैं तो तपकल्याणक मनानेके लिए देव आते हैं और वे दिव्य पालकी सजाते हैं। प्रभु पालकीमें बैठते हैं, और पालकी उठानेको जब देव इन्द्र हाथ लगाते हैं तो मनुष्य तत्काल रोक देते हैं, तुम लोग क्या करते हो ? इस पालकीमें तुम लोग हाथ न लगावो, इस पालकीको हम लोग उठायेंगे। तो देव बोले, अरे हमने गर्भकल्याणक मनाया, जन्मकल्याणक मनाया, अन्य भी कल्याणक मनाये, हमारा अधिकार है पालकी उठानेका। तो मनुष्य बोले—कुछ भी हो पर तुम लोग इस पालकीमें हाथ न लगाना। तो लड़ाई हो गई देवोंकी और मनुष्योंकी। दो चार बुजुर्ग निर्णायक चुन लिए। मनुष्य और देवोंके बयान ले लिये गये। तब उन निर्णायकों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

से पूछा गया कि इन भगवानकी पालकी उठानेका अधिकारी मौन है ? तो उन्होंने बयान किया कि भगवानकी तरहका जो संयम धारण कर सके, भगवानकी तरह बन सके वह भगवानकी पालकी उठानेका अधिकारी है। यह बात सुनकर देवता अपने हाथ पसारकर भीख माँगते हैं कि ऐ मनुष्यो ! यह स्वर्गकी सारी सम्पदा हमसे ले लो, पर अपना मनुष्यत्व हमें दे दो। अब सोचिये कि मनुष्यभव पानेका कितना बड़ा महत्त्व है ?

व्यर्थकी परेशानी—भैया ! सब व्यर्थ ही दुःखी हो रहे कल्पनायें कर करके, जरा सोचो तो सही—इस भवसे मरण करके कहींके कहीं जाकर पैदा हो गए तो फिर क्या होगा ? न कुछसा यह थोड़ासा क्षेत्र जिसमें अपनी कीर्ति फैलानेकी चाह करते हैं यह इतनी बड़ी दुनियाके सामने कुछ गिनती भी रखता है क्या ? पर व्यर्थमें ममता करके कष्ट मान रहे हैं। अरे आज जो कुछ भी समागम प्राप्त है, जितना भी जिसे वैभव मिला है उतना अपनी जरूरतसे ज्यादा है ऐसा समझ लो। इसका प्रमाण यह है कि जिन लोगोंके पास आपसे कई गुना धन कम है उनका भी गुजारा चल रहा है। व्यर्थकी कृपणता रखते, व्यर्थकी लिप्सायें रखते, व्यर्थके विकल्प बनाते, व्यर्थकी तृष्णायें रखते, ये सब बातें किसलिए की जा रही हैं ? अरे मनुष्य भव पाकर तो क्या करना था और क्या करने लगे ? करना था धर्मसाधन और लग बैठे विषयसाधनमें। कोई लोग पहिले तो बहुत गरीब थे तब धर्मसाधनाका समय था, कुछ धर्म कर्म भी करते थे, पर जब कुछ धन अधिक हो गया तो अब धर्मसाधना करनेकी फुरसत ही नहीं मिलती। उनके पास न स्वाध्याय करनेका समय है, न संत समागम करनेका समय है। पर बहुतसे धर्मात्मा सेठ ऐसे हुए हैं जिनका दो चार घंटेके अलावा शेष समय संत सेवावोंमें ही व्यतीत होता था, और आज भी कुछ ऐसे लोग मिल सकते हैं, बहुत पहिले जमानेके तो बहुतसे उदाहरण आपको मिलेंगे जिनमेंसे बहुतोंकी आप जानते भी होंगे।

विशुद्ध भावसे धर्मपालनका अनुरोध—अरे धन कमाता कौन है यह वैभव ? क्या ये हाथ पैर कमाते हैं, क्या यह बुद्धि कमाती है ? अरे वह तो पुण्यके उदयसे प्राप्त होता है। वह पुण्य रस बढ़ता है धर्मभावसे, निर्मलताके परिणामसे। तो प्रत्येक स्थितियोंमें हमें धर्मसाधनाकी ओर दृष्टि रखना ही चाहिए। यदि दुःखदायी स्थिति है तो धर्मके प्रसादसे दुःख कटेगा और अगर सुखकारी स्थिति है तो धर्मके प्रसादसे सुख चिरस्थायी होगा। यह धर्मध्यानकी बात चल रही है। जो बड़े विशुद्ध भावोंसे धर्मध्यान करते हैं ऐसे पुरुष मरकर स्वर्गोंमें और कल्पातीत देवोंमें उत्पन्न होते हैं। ऐसी बात जानकर मनमें अपने लिए इस तरहकी लालसा नहीं बनानी चाहिए कि हम भी ऐसे स्वर्गोंमें उत्पन्न हों। ज्ञानी पुरुषोंका ध्येय तो संसारसंकटोंसे छूटकर आत्मस्वभावमें रमनेका है। पर इस धर्ममार्गमें चलकर भी जो रागांश शेष है उसके कारण ऐसा पुण्यबंध होता है कि ऐसे स्वर्गोंमें और ऊपरके देवोंमें उनकी उत्पत्ति

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होती है ।

ग्रैवेयकानुत्तरवासभाजां विचारहीनं सुखमत्युदारम् ।
निरंतरं पुण्यपरम्पराभिर्विवर्द्धते वार्द्धिरिवेन्दुपादैः ॥२१०८॥

तत्त्वज्ञ धर्मध्यानीकी स्वरूपमग्नताकी आन्तरिक अभिलाषा—धर्मध्यानके फलमें ग्रैवेयक और अनुत्तरादि विमानोंमें रहने वाले देवोंमें जन्म होता है । यहाँ उन देवोंका सुख बताया जा रहा है । धर्मध्यानके फलमें देवोंके सुख आते ही हैं, उत्तम देवोंमें जन्म होता है, लेकिन धर्मध्यानी पुरुषको यह वाञ्छा नहीं होती है कि मेरा इस प्रकारके सुखों वाली जगहमें जन्म हो । वह धर्मध्यानी पुरुष तो प्रभुकी भक्तिमें भी अपने स्वरूपमें समाना चाहता है । जिसने यथार्थ तत्त्वका निर्णय किया और जिसके संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य हुआ है वह यह चाहता है कि मैं सर्व विकल्पोंसे दूर होऊँ, मैं अपने आपमें ऐसा समा जाऊँ, मैं दुनियाके लिए कुछ न रहूं । जब प्रभुके उस विशुद्ध ज्ञानानन्दके चमत्कारमें अपनी दृष्टि लगाता है, प्रभुके निकट पहुंचता है तो वह और रोये तो कहाँ रोये, अपना दुःख बताये तो किसे बताये ? यहाँ जगतमें तो कोई सुनने वाला नहीं है । रोये तो उनके गुणस्मरणकी छायामें रहकर रोये । दिल लगाये तो कहाँ लगाये ? अपनी एक धुन एक तान कहाँ लगाये ? वह समझता है कि क्या है इस संसारमें ? केवल यही एक वीतराग प्रभुका गुणस्मरण ही शरण है । ये समस्त वैभव, ये सब पौद्गलिक ठाठ धूलके समान हैं । जो यह बात लिखी गई है कि कंचन काँच बराबर हैं, यह बात केवल लिखी ही नहीं है । मोही पुरुष तो इसे यों ही लिखी गई है बात ऐसी समझते हैं, और इन्हीं धर्मवाक्योंको पढ़कर सुनकर जानकर विद्यावान बनकर भी यदि नहीं चेतता है तो न चेते, लेकिन जो लोग उसके जानकार हैं, जो लोग उसका महत्त्व समझते हैं वे तो ऐसे वाक्योंको सुनकर ही कंचन कांचमें समानता निरखने लगते हैं, और एक शुद्ध स्वभावके स्मरणसे हो अपना हित समझते हैं । इसी प्रकार मोहीजनोंने तो नियम बना रखा है कि सब धर्म एक ही हैं, परन्तु मोहियोंके माननेका क्या उठता है ? शान्ति तो अनाद्यनन्त एक स्वरूप ज्ञायकस्वभाव अन्तस्तत्त्वकी उपासनासे प्राप्त हो सकती है । यही मात्र एक वह आत्मधर्म है जिसके प्रसादसे मुक्ति प्राप्त होती है ।

निकटभव्यों द्वारा परमब्रह्मत्वके आलम्बनके महत्त्वका अङ्कन—परमपावन चिदानंद स्वरूपका ब्रह्मत्वका अनादर तिरस्कार करने वाले प्रायः लोकके सभी प्राणी हैं, फिर भी निकट भव्य तत्त्ववेदी पुरुष कारणपरमात्मतत्त्वकी उपासना करते हैं । राजा द्वारा आदर न पाने वाले एक कविने कहा—त्वं चेन्नीचजनानुरोधनवशादस्मासु मंदादरः, का नो मानध्यानहानिरिपुता स्यात्किं त्वमेकः प्रभुः । गुञ्जापुञ्जपरम्परापरिचयाद्भिल्लीजनैरुज्झितं, मुक्तादामनिधाम धारयति किं कण्ठे कुरङ्गीदृशाम ॥ हे राजन् यदि तुमने नीच जनोंके अनुरोधसे हममें मंद आदर कर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दिया तो इतनेसे मेरी क्या हानि हुई ? क्या तुम एक ही प्रभु हो ?

परमार्थधर्ममें ही धर्मरूपता—एक राजा राजसभामें बहुत दिनोंसे साधारण कल्पित कवियोंका आदर कर रहा था, किन्तु एक मुख्य विद्वान कविकी उपेक्षा कर रहा था। वहाँपर बहुतसे कवि लोग एकत्रित हुआ करते थे। तो इस तरहसे जब काफी दिन गुजर गए, तो एक दिन उनमेंसे वह कवि एक श्लोकमें ,बोल उठा—रे रे रासभ भूरिवारवहनात् कुग्रासमश्नासि किं, राजाश्ववसतिं प्रयाहि चणकाभ्यूषं सुखं भक्षय। ये ये पुच्छभृतो हया इति वदन्त्यत्राधिकारे स्थिता, राजा तैरुपदिष्टमेव मनुते सत्यं तटस्थाः परे ॥ हे गधे ! तू बहुत बोझा क्यों ढोता है, राजाकी अश्वशालामें पहुंच जा और खूब दाना खा। लोगोंने यह नियम बना लिया कि जिन जिनके पूंछ लगी है वे सर्व घोड़े हैं। राजा उनकी ही मानता, बाकी लोग तटस्थ हैं। यदि राजा घोड़ेमें और गधेमें अन्तर नहीं जानता, गधेकी पूंछ निरखकर घोड़ेकी पूंछके समान समझकर उस गधेको भी घोड़ा बता दे, घोड़ेका अनादर कर दे तो वह उसके मनकी बात है, पर उसके अनादर कर देनेसे कहीं वह गधा घोड़ा जैसा तो न बन जायगा। जैसे वनमें फिरने वाली भिल्लनी जिन्हें गुम्चियोंका ही परिचय है वे यदि कहीं मुक्ता फल पा जायें और उसका प्रयोग पैरोंमें पहिननेमें करें तो वह उनकी बात है, लेकिन वह मुक्ता फल क्या बड़े-बड़े चक्रवर्ती राजाकी महारानीके गलेमें शोभाको न प्राप्त होगा ? अरे वे भिल्लनियां यदि उस मुक्ता फलको गुम्ची समझकर अनादर करती हैं तो क्या उससे उसका अनादर हो जायगा ? अर्थात् न होगा। वह मुक्ताफल तो बड़ी-बड़ी पट्टरानियोंके गलेमें शोभाको प्राप्त होगा। इस ही प्रकार से समझ लो—यदि इस परमात्मतत्त्वका, आत्माके सहजस्वरूपका, कारणसमयसारका कोई मोही पुरुष निरादर करते हैं, उसकी ओर दृष्टि नहीं करते, उसपर झुकते नहीं, उसको एकमात्र शरण नहीं मानते तो मत मानो, किन्तु जिनका संसार निकट है, जो संसारके संकटोंसे निकट कालमें छूटने वाले हैं, क्या ऐसे पुरुषोंके उपयोगमें वह कारणपरमात्मतत्त्व शोभाको न प्राप्त होगा ?

प्रभुस्वीकृत मार्गमें ज्ञानीकी चर्चा—हे प्रभो ! आपने क्या किया ? जो मार्ग अपनाया वही मेरा हित कर सकता है। यदि प्रभुकी भक्ति करके भी प्रभुकी महिमाको न जाना तो कहाँ भक्ति हुई ? यों तो किसी भी कुदेवके पास, किसी भी धनिकके पास, किसी भी नेता, राजाके पास जाकर भीख माँगने वाले लोग संसारमें बहुत पाये जाते हैं। प्रभुभक्तिका उपयोग तो उनके है जिन्होंने जिस रास्तेसे चलकर प्रभु बने उसी रास्तेमें अपना कदम रखा। जीवन तो उन्हींका धन्य है। ध्यानी पुरुष ग्रैवेयक, सर्वार्थसिद्धि आदिककी वाञ्छा नहीं करता, बल्कि यह भी कह दीजिए कि उसके चित्तमें यह भी धुनि नहीं रहती कि मैं सिद्ध बनूं। तब क्या धुन रहती है ? मुझे बनना क्या है, यह भी धुन नहीं रहती। धुन भी क्या रहती है ? जो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बात यथार्थ दिख गई वह भूली नहीं जा सकती, सो सतत परमार्थ यथार्थ निजको निरखते हैं, बस यही धुन है। सर्व विकल्पोंका निरोध होकर अपने आपके सहज ज्ञानज्योतिमें जो विश्राम बनाता है उस विश्रामके प्रसादसे जो अलौकिक आनंद आता है वैसा आनन्द सारे देवेन्द्र, सारे चक्रवर्तियोंका भी सुख संचित कर लो तब भी उतना आनंद नहीं आता है। ऐसे अद्भुत आत्मीय स्वाधीन आनंदका जिसे अनुभव हुआ है उसे यहाँके सारे सांसारिक सुख फीके लगते हैं। उसकी तो एक ऐसी धुन रहती है कि मेरे वर्तमान विशुद्ध परिणमनके प्रतापसे जो होता हो, हो, उसके विपरीत किसी असत्यमें जाय तो कहाँ जाय ? यह है ज्ञानीकी चर्या।

प्रभुभक्तिके प्रसंगमें ज्ञानी भक्तके हर्ष व विषादका अलौकिक संगम—यह धर्मध्यानी पुरुष प्रभुकी भक्तिके समय अपने आपको कैसा भीतर ले जाता है कि जिसके गुणोंका स्मरण करके, आँखोंमें जो कुछ अश्रुवोंकी धारा बह निकलती है तो वह आनन्द और विषादकी संयुक्त स्थिति बनती है। जैसे बिल्कुल विरुद्ध अलग-अलग दिशावोंसे आई हुई नदियाँ किसी एक स्थलपर मिल जायें ऐसे विषाद और आनंदका मिलन होता है। विषाद तो वहाँ अपनी वर्तमान स्थितिका है और आनंद प्रभुकी तरह अपने आपमें जो चमत्कार और वैभव सिद्ध हुआ है उसका है। तो आनंद और विषाद ये दोनों स्थितियाँ एक साथ हो जाती है और वह भी अलौकिक आनंद और अलौकिक विषाद जब इन दोनोंका मिश्रण होता है तो कोई स्पष्ट बोल नहीं बोल सकता, बोलेगा तो अस्पष्ट। तोतलोंसे भी गजबका तोतला। और विषादमें जब अधिक होगा तो भी स्पष्ट वाणी नहीं निकलती। यहीं देख लो—कोई किसी बातपर बहुत अधिक हँस रहा हो अर्थात् खुश हो रहा हो और उस हँसती हुई हालतमें कोई बात बतावे तो कुछ समझमें आता है क्या ? और अत्यन्त विषादके समय भी जो बोल निकलता है वह भी अस्पष्ट रहता है। तो जहाँ प्रभुके गुणोंका स्मरण करके अलौकिक आनंद होता है और साथ ही अपनी वर्तमान इस परिस्थितिको निरखकर अलौकिक विषाद होता है जहाँ दोनों एक साथ रहते हैं ऐसा भक्त भगवानके प्रति उमंग करके कुछ बोल भी रहा है तो वह किसकी समझमें आये ? साथ ही उस बोलपर वह हैरान भी है क्योंकि जिसको कह रहे वह सुनता नहीं, अन्यको सुनाना नहीं। फिर भी उससे उससे उस खुशीमें शब्द बोले ही नहीं जा रहे, ऐसी गद्गद् वाणीके साथ वह भक्त प्रभुकी स्तुति करता है। हे प्रभो ! मुझे आपसे कुछ चाहिए नहीं।

अहमिन्द्रके सुखोंकी विचारातीतता—भैया ! जो निमित्तनैमित्तिक भावकी बात है वह होती ही है। धर्मध्यानके फलमें परमवीतरागताके अभावमें ग्रैवेयक और अनुत्तरादि विमान के देवोंमें उत्पत्ति होती है। उनका सुख विचारातीत है। क्या करें विचार ? एक बार जंगल के भील लोग लकड़ियोंका बोझ लादे चले जा रहे थे गावोंमें बेचनेके लिए। वे आपसमें गपें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मार रहे थे और राजाकी चर्चा कर रहे थे। एक भील बोला कि राजाको तो बड़ा ही सुख है। एकने पूछा कैसे ? तो वह बोला—अरे कैसे क्या बतायें, उसको तो बहुत आराम है, वह तो रोज-रोज गुड़ ही गुड़ खाता होगा। तो भीलोंका विचार कहां तक बढ़े ? विचारहीन सुख है भीलोंके। तो उन अहमिन्द्र देवोंकी कषाय अत्यन्त मंद हैं कि जिनकी उपमा यहाँ किसीसे नहीं दी जा सकती। उन देवोंके यहाँ तत्त्वचर्चाका समागम निरन्तर रहता है। वे अपना स्थान छोड़कर कहीं भ्रमण नहीं करते। उन देवोंके शरीर बहुत छोटे हैं—किसीका १ हाथका शरीर तो किसीका १।। हाथका शरीर, ऐसे अल्पकाय वाले, दिव्य काय वाले देव जिनको २३से ३१, ३२ अथवा ३३ हजार वर्षमें थोड़ी भूख लगती है और समय आनेपर कंठसे अमृत झरता है उससे तृप्ति हो जाती है। उन दिव्य देहाधिष्ठित देवोंका सुख हम आप क्या विचारमें लायें ? इतने अनुत्तर सुख वाले जन्मको पाते हैं ये धर्मध्यानी जीव।

अहमिन्द्र देवोंके विचारातीत सुखका अनुभवन व पुण्यरसका वर्द्धन—ये अहमिन्द्र देव विचारातीत सुख भी भोग रहे हैं और साथ ही पुण्यरस भी बढ़ा रहे हैं। कुछ तो देव ऐसे होते हैं जो पाये हुए सुखोंको भोगते रहते हैं और पापबंध करते रहते हैं जिससे वे दुर्गतिके पात्र होते हैं, लेकिन अहमिन्द्र देव जिनकी एक दूसरेसे रंचमात्र भी आधीनता नहीं, जिनका वैभव एक समान है इस कारण दूसरेके वैभवको देख करके उनमें ईर्ष्या द्वेषकी बातें भी नहीं होती हैं, जिनका धर्मचर्चामें समय गुजरता है वे निरन्तर पुण्यरसको बढ़ाते रहते हैं। जो नवीन-नवीन तत्त्वचर्चायें करके अथवा जो चर्चायें आत्मीय अलौकिक आनन्दको प्रदान करने वाली हैं, उनको करके ३३ सागरका इतना लम्बा समय व्यतीत कर देते हैं। उनके पुण्यरस बढ़ता है, वे एक दो मनुष्यभव पाकर ही मुक्त हो जाते हैं। धर्मध्यानका इतना बड़ा प्रसाद है। अब क्या करना चाहिए इसपर विचार कीजिये। जो बात यहाँ मनुष्यके वशकी नहीं है उसकी कल्पनामें अपना समय गुजारना है अथवा जो अपनी बात है, जिसमें अपना उत्थान है, जिसमें अपना उद्धार है उसका स्मरण करना चाहिए। खूब विचार कर लो। यह केवल सुनने मात्रकी बात नहीं है या केवल कहने मात्रकी यह बात नहीं है, जो इस बातको अपनेमें उतारेगा वही उसका आनंद पायगा।

देवराज्यं समासाद्य यत्सुखं कल्पवासिनाम्।
निर्विशन्तितोऽनंतं सौख्यं कल्पातिवर्त्तिनः ।।२१०६।।

कल्पवासी देवों, इन्द्रोंके सुखसे अनन्त गुणा कल्पातीत देवोंका सुख—सोलह स्वर्गोंके इन्द्रों देवोंको भी बहुत सुख है, स्वाभाविक विक्रियाऋद्धि है, जहाँ चाहे वे क्षणभरमें ही पहुंच जायें। कितने ही द्वीप समुद्रोंको पार करके पहुंच जायें, किसी भी वनमें क्रीड़ा करें, जिनके शरीरमें पसीना नहीं, जिनके शरीरमें मल रुधिर आदिक रोग नहीं, जिनको आजीविकाकी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कोई चिन्ता नहीं, तो समझ लीजिए कि उनको भी कितना सुख है, लेकिन सभी सोलह स्वर्गों के समस्त देवोंका जो भी सुख है वह भी मिला दिया जाय तो भी कल्पातीत देवोंके सुखकी तुलना नहीं हो सकती। कल्पातीत देवोंका सुख तो कल्पनामें भी नहीं आ सकता। धर्मध्यान ज्ञानचर्चाके अनुरागमें ऐसे कल्पातीत देवोंमें धर्मध्यानी पुरुषका जन्म होता है।

संभवन्त्यथ कल्पेषु तेष्वचिन्त्यविभूतिदम्।
प्राप्नुवन्ति परं सौख्यं सुराः स्त्रीभोगलांछितम् ॥२११०॥

धर्मध्यानके फलमें कल्पवासियोंमें जन्म—धर्मध्यानसे मनुष्य अपनी पर्यायको छोड़कर सोलह स्वर्गोंमें भी उत्पन्न होते हैं, तो वे देव भी अचिन्त्य विभूतिके देने वाले और स्त्रीभोग सहित उत्कृष्ट सुखोंको प्राप्त होते हैं। जो यहाँके समागमोंमें कल्पित सुख माना जा रहा है उन सुखोंकी यदि उपेक्षा कर दी जाय, उनमें लालसा न रखी जाय तो इस प्रकारके पुण्यका बंध होता है कि ऐसे दिव्य सुख स्वतः ही प्राप्त होते हैं। यहाँके भी सुख चाहना है तो इसके लिए आवश्यक है कि विषयोंकी प्रीति छोड़ दी जाय। देखो जब विषयोंसे प्राप्त होने वाला आनंद भी विषयोंका त्याग किए बिना नहीं मिलता तो संसार संकटोंसे सदाके लिए छुटकारा पाकर जो उत्तम आनंद प्राप्त होनेको होता है वह कैसे प्राप्त हो सकता है?

विषयपरित्याग किए बिना विषयसेवनकी आसक्ति—यहाँ सुख हैं ६ प्रकारके। स्पर्शनइन्द्रियका सुख—विषयभोग, रसनाइन्द्रियका सुख--रसीले पदार्थोंका स्वाद, घ्राण इन्द्रियका सुख—सुगंधित पदार्थोंका सेवन, चक्षुरिन्द्रियका सुख—सुन्दर रूपोंका अवलोकन, और कर्णइन्द्रियका सुख—सुन्दर रागरागनीके शब्द सुनना, और मन इन्द्रियका सुख—कोई विशिष्ट ख्यातिकी बात चाहना आदिक हैं। स्पर्शनइन्द्रियजन्य सुख वही पुरुष भोगने लायक रहता है जो स्पर्शनइन्द्रियके सुखका त्याग करता है। जो बहुत अधिक स्पर्शनइन्द्रियजन्य सुखोंमें रत होता है, विषयसेवन करता है, ब्रह्मचर्यका घात करता है वह स्पर्शनइन्द्रियजन्य सुखोंको भली भांति भोग नहीं सकता। इसी प्रकार रसनाइन्द्रियजन्य सुखमें भी यही बात है। खानेका आनंद तब आता है जब पहिले कई घंटेसे खाना छोड़ दिया गया हो। खूब पेट भरा हो फिर भी खाते रहें तो उस खानेमें खानेका वह सुख नहीं मिलता। बहुतसे लोग तो इसी बातपर हैरान हो जाते हैं कि पत्तलमें तो बहुतसी मिठाइयाँ परोस दी गई हैं, पूड़ी साग भी परोस दिया है अब इनमेंसे पहिले क्या खायें कुछ लोग तो ऐसा सोच लेते होंगे कि लावो पहिले पूड़ी साग खा लें, बादमें मौजसे इन पेड़ा बर्फियोंका स्वाद लेते रहेंगे, और कुछ लोग यह सोच लेते होंगे कि लावो पहिले पेड़ा बर्फी आदि मिठाइयोंपर हाथ मारें, पीछे पूड़ी साग खा लेंगे। देखो भोगके समय भी कितना क्षोभ रहता है? रसनाइन्द्रियजन्य सुख भी तब मिलता है जब पहिले से कई घंटोंसे त्याग किया हो। एक निश्चित निर्णय यह है कि भोजनका परित्याग किए बिना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भोजनका आनंद नहीं मिल सकता। खूब खाओ, भली प्रकार खाते रहो तो एकदम १०-२० दिनको यह सारा खाना छूट जायगा, केवल मूँगकी दालपर ही वैद्य निर्भर करा देगा। तो रसनाइन्द्रियजन्य सुख भी रसनाइन्द्रियके विषयोंका त्याग किए बिना नहीं लूटा जा सकता।

गन्धरूप शब्द विषयके भी परित्याग बिना उनके सेवनकी अक्षमता—घ्राणइन्द्रियजन्य सुख भी बिना उसका कुछ त्याग किए लूटा नहीं जा सकता। कोई बहुत-बहुत गंधका उपयोग करता रहे, इत्र फुलेल आदिकी बहुत-बहुत गंध कोई लेता रहे तो उसे उसका सुख नहीं मिल पाता है, उसकी गंधसे थोड़ी ही देरमें जी घबड़ा जायगा। तो घ्राणइन्द्रियजन्य सुख भी बिना कुछ उसका त्याग किए नहीं लूटा जा सकता है। इसी तरह चक्षुरिन्द्रियकी बात है। जो रूप बहुत सुहावना लग रहा है, उसी चामको कोई बहुत-बहुत देखता रहे तो देखते-देखते मन थक जायगा, आँखें थक जायगीं, और देखते रहनेमें वह सुख न मिल पायगा। उसका कुछ त्याग करे तो उस चक्षुरिन्द्रियजन्य सुखको लूटा जा सकता है। इसी प्रकारकी बात कर्णेन्द्रिय सुखकी है। कोई बहुत बढ़िया रागरागनीके गाने हो रहे हों, रातभर होते रहें तो लोग कह भी बैठते हैं कि अब बन्द करो। अरे जब बड़ी सुख वाली वह चीज है तो बन्द क्यों करवाते हो? तो त्यागपूर्वक ये इन्द्रियके सुख भोगे जा सकते हैं। यही मनकी परिस्थिति है। जो उस ही ध्यानमें लगा रहता है फिर उसकी मौज नहीं रहती। तो जब संसारके सुख भी विषयों का कुछ परित्याग किए बिना प्राप्त नहीं हो सकते, भोगे नहीं जा सकते तो समझ लीजिए कि त्यागकी कितनी महत्ता है?

निष्कलङ्क अन्तस्तत्त्वके अवधारणका अनुरोध—भैया! एक ही तानमें अपने आपको अपनेमें समा दे, ऐसा भाव व ऐसा ही यत्न करें। यहाँका समागम प्रकट भिन्न व असार है। आज यदि हम मनुष्य न होते, कहीं कीड़े मकोड़े होते, तो मेरे लिए यह दुनिया क्या थी, जिनकी शकलको निरखकर ये इंद्रिय और मनके व्यवहार हो रहे हैं। अगर गर्भमें ही मर गया होता, या जन्मते ही मर गया होता या बचपनमें ही मर गया होता तो मेरे लिए यह घर, ये दुनियाके लोग क्या थे, जिनको निरखकर ये इन्द्रिय और मन बेकाबू हो रहे हैं। हे आत्मन्! किसी भी समय जिस ढंगसे भी बने—सोच लो, बाह्यसे विरक्त और स्वरूपमें अनुरक्त होना योग्य है। सीधा ढंग तो एक ही है अपने आपके शुद्ध कार्य परमात्मस्वरूपकी दृष्टि रखना, इस व्यवसायसे सहज तत्त्वरमण बनता जाता है। चीज एक ही है उपादेय। एक रंगरेज था, उसके पास बहुतसे लोग भिन्न-भिन्न प्रकारके रंगोंमें पगड़ी रंगानेके लिए आया करते थे। सो वह रखा तो लेता था सभी पगड़ियाँ और कह भी देता था कि हाँ रंग देंगे, पर उस रंगरेजको केवल एक ही रंग प्यारा था—आसमानी। कलाकार लोग तो अपने घरके राजा हुआ करते हैं, जो उन्हें पसंद होता है वह करते हैं। तो सारी पगड़ियाँ रखा लेनेके बाद वह रंगरेज कह देता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

था कि देखो—पगड़ी चाहे किसी रंगमें रंगावो, पर खिलेगा केवल आसमानी रंग। दूसरा कोई भी रंग न खिलेगा। तो यों ही सुखके उपायोंमें, धर्मके प्रसंगमें कुछ भी तत्त्व बना लें, पर शुद्ध विकासकी परमशांतिकी सुगम, कुञ्जी तो केवल एक ही है जिसके किए बिना किसी ने निर्वाण नहीं प्राप्त किया, और वह है बिना सम्पर्कके, बिना उपाधिके, बिना रागद्वेषके स्वयं अपने आपमें बसा हुआ अपने ही स्वरूपके कारण जो परमपारिणामिक भाव शुद्ध स्वभाव ज्ञान ज्योति है, उस सहज भावका शरण लें, उसकी दृष्टिमें चलें, उसको ही अपना सर्वस्व समर्पित करना यह ही मात्र एक सुगम उपाय है। धर्मध्यानी पुरुष इस ही पर तो रहता है, उसे किसी भी चीजकी वाञ्छा नहीं है।

दशाङ्गभोगसम्भूतं महाष्टगुणवर्द्धितम्।
यत्कल्पवासिनां सौख्यं तद्वक्तुं केन पार्यते ॥२१११॥

कल्पवासियोंके सुखकी भी विशेषता—धर्मध्यानके फलमें कल्पवासी देवोंमें जन्म होता है। वहाँ १० प्रकारके अंग भोगोंसे उत्पन्न हुआ सुख और अणिमा आदिक ८ गुणोंसे बढ़ा हुआ सुख जो कल्पवासियोंको होता है वह यहाँ कहा जानेमें नहीं आ सकता। एक सांसारिक सुखकी बात कही जा रही है। जो सुख वहां स्वर्गोंमें है कि कल्पवृक्षसे जो चाहो सो मिले। अणिमा महिमा आदिक अनेक प्रकारकी वहाँ प्राकृतिक कलायें हैं। अपने शरीरको कहो इतना छोटा बना लें कि एक दो अंगुलका ही हो, और कहो इतना बड़ा बना लें कि जितना बड़ा कोई जानवर भी न हो सके। अपने डीलडौलको कहो इतना वजनदार बना लें कि देखनेमें तो अत्यन्त छोटा हो और उसका वजन बहुत अधिक हो। और कहो डीलडौल तो बहुत ही विस्तृत और वजन उसका बिल्कुल थोड़ा हो, अपने रूपको जितना सुन्दर चाहें वे बना सकते हैं। कहो ऐसा सुन्दर रूप बना लें कि जिसकी यहाँ कुछ उपमा ही न दी जा सके। इस प्रकार की कलावोंसे उत्पन्न हुआ सुख कल्पवासी देवोंको जो है उसकी यहाँ मनुष्यलोकके किसी भी सुखसे उपमा नहीं दी जा सकती। यह सांसारिक सुखकी बात चल रही है। सुख सुन करके कुछ चित्तमें मलिन भाव लानेका अवकाश भी हो सकता है। ऐसे सुखकी चाह करने लगे कोई इसके लिए यहाँ नहीं कहा जा रहा है किन्तु धर्मध्यानमें ऐसा फल मिलता ही है जब तक संसार है, और फिर कोई साधारण जन ऐसा भी सोच सकते हैं कि मनुष्यलोकमें इन अशुचि असार सुखोंसे दिल हटा ले तो एक सागरों पर्यन्तका ऐसा सुख मिल सकता है।

सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तं सर्वाभ्युदयभूषितम्।
नित्योत्सवयुतं दिव्यं दिवि सौख्यं दिवौकसाम् ॥२११२॥

स्वर्गोंमें नित्योत्सवकी विशेषता—स्वर्गोंमें देवोंका सुख सर्व प्रकारके द्वन्द्वोंसे रहित है। कोई वहाँ छोटा नहीं, वहाँ अस्थिरता नहीं है, एकसी व्यवस्था है। इन्द्र है, उसकी

Report any errors at vikashd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आज्ञा चलती है, वहाँ ऐसे देवोंका जन्म होता है और उस ढंगमें रहते हैं, उनके कोई अस्थिरता नहीं है, न वहाँ कोई झगड़ा झांसाकी बात है। सब देव सुखी हैं। और वहाँ पर समस्त अभ्युदय है, नित्य उत्सव वहाँ होते रहते हैं। आज किसी देवका जन्म हुआ उसका ही उत्सव चल रहा है, किसी दिन किसी बड़े देवका जन्म हुआ, इन्द्रका जन्म हुआ, बड़ा समारोह मनाया जा रहा है। वहाँ किसीके कोई बाल बच्चा नहीं पैदा होता। जैसे यहाँ मनुष्योंमें कोई बच्चा पैदा होता है और उसका उत्सव मनाया जाता है जो कि एक मलिन भावों सहित उत्सव है, लेकिन यहाँ विशिष्ट पुण्यवान जीव आया है, कोई मुनि था, कोई श्रावक था, बड़ा धर्मपालन किया, उसके फलमें यह जन्म हो रहा है, तो उसका उत्सव मनाने के लिए देव आते हैं। एक साधुता जानकर, सजातीयता जानकर बिना मोहभावके शुभभावों से उत्सव समारोह मनाया करते हैं और साथ ही यह भी सोच सकते कि जो देव जन्म ले रहा है उसके पुण्यकी ऐसी प्रेरणा है कि देव आकर उसका उत्सव मनाते हैं। स्वर्गोंमें देव उत्सव किस विधिसे मनाते हैं, किस विधिसे उसका प्रयत्न रखते हैं, यह भी एक अलौकिक पद्धति हैं। देव जब जन्म लेता है तो अन्तर्मुहूर्तमें ही वह बड़ा पुष्ट और युवावस्था सम्पन्न होता है, और जन्म लेकर जब देखता है सोचता है—अरे मैं यहाँ कहाँ आ गया, ये कौन लोग खड़े हैं, बड़े असमंजससे, कैसा ये लोग टकटकी लगाये हमें देख रहे हैं, यह सब क्या है, इस प्रकार जब वह देव कुछ अचम्भा करता है तो पासमें खड़े हुए देव कहते हैं—महाराज! आप बड़े पुण्यके कारण यहाँ पधारे हैं, आपका जन्म हुआ है, यह स्वर्ग है, ये देवता लोग खड़े हैं। ये सब आपका आदर करनेके लिए इकट्ठा हैं और थोड़ी ही देरमें अवधिज्ञानसे वह सब कुछ जान भी जाता है। ऐसा वहांका सद्व्यवहार है।

प्रतिसमयमुदीर्णं स्वर्गसाम्राज्यरूढं,
सकलविषयबीजं स्वान्तदत्ताभिनन्दम्।
ललितयुवतिलीलालिङ्गनादिप्रसूतं,
सुखमतुलमुदारं स्वर्गिणो निर्विशन्ति ॥२११३॥

स्वर्गवासी देवोंका विविध सुखमें समययापन—स्वर्गके देव प्रत्येक समयमें उदय आये हुए विच्छेद रहित स्वर्गके साम्राज्यसे प्रसिद्ध उदार सुखका अनुभव करते हैं। ऐसा सुख भोगते हैं जो अन्तःकरणको आनंद देने वाला है, जहाँ सुन्दर देवांगनाएँ हैं उनकी लीलावोंसे, उनके रागअलापोंसे जो सुख उत्पन्न होता है वह सांसारिक सुखकी दृष्टिसे अद्भुत सुख है। ऐसे सुखों में ये देव सागरों पर्यन्तका समय बिता देते हैं, पर कुछ उन्हें पता नहीं पड़ता कि इतना समय कैसे व्यतीत हो गया?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सर्वाभिमतभावोत्थं निर्विघ्नं स्वःसुखामृतम् ।
सेव्यमाना न बुद्धयन्ते गतं जन्म दिवौकसः ॥२११४॥

स्वर्गसुखमें सारा समय गुजर जानेका अबोधन—वे स्वर्गवासी देव अपने समस्त मनोवाञ्छित पदार्थोंसे उत्पन्न बाधारहित ऐसे अद्भुत सुखामृतका सेवन करते हुए व्यतीत हुए समयको नहीं जानते । सुखके दिन जल्दी व्यतीत हो जाते हैं, उसका कारण यह है कि सुखोंमें इतनी अधिक आसक्ति हो जाती है कि वह समय जाना नहीं जाता । कहीं ऐसा नहीं है कि सुखके दिन छोटे होते हों और दुःखके दिन बड़े । दुःखके दिन तो काटे नहीं कटते हैं, दुःख तो किसीको भी इष्ट नहीं । इसीसे दुःखका समय अधिक लम्बा मालूम पड़ता है । तो सागरों पर्यन्तकी आयु है स्वर्गोंमें । २२ सागरकी आयु सोलहवें स्वर्गमें देवोंकी बतायी है । १ सागर कितना बड़ा होता है ? कल्पना करो कि दो हजार कोशका लम्बा, चौड़ा, गहरा कोई गड्ढा है और उसमें बालोंके छोटे-छोटे टुकड़े, जिनका दूसरा हिस्सा न हो सके, सो भी बहुत कोमल पतले बालोंके टुकड़े ठसाठस भर दिये जायें, उसपर सैकड़ों हाथी फेर दिये जायें, फिर प्रत्येक १०० वर्षमें एक बालका टुकड़ा निकाला जाय तो सारे बाल-खंड निकालनेमें कितने वर्ष लगेंगे ?···जितने वर्ष लगें उतनेका नाम है व्यवहारपल्य और उससे अनगिनते गुणे वर्षोंका नाम है उद्धारपल्य और उससे अनगिनते गुणे वर्षोंका नाम है अद्धापल्य । एक करोड़ अद्धापल्य में १ करोड़ अद्धापल्यका गुणा करें, उसका नाम है एक कोड़ाकोड़ी अद्धापल्य । ऐसे १० कोड़ाकोड़ी अद्धापल्यका १ सागर होता है, ऐसे-ऐसे २२ सागरकी भी उम्र सुख भोगते-भोगतेमें गुजर जाती है, पता नहीं पड़ता । जब मरणका समय आता है तो सोच होता है कि अब तो मेरा मरनेका वक्त आ गया है ।

सांसारिक सुखमग्नतासे महती विपन्नता—भैया ! सुखमें मग्न होना भी बहुत बड़ी विपदा है । मोही जन तो इन सुखोंमें आसक्त हो जाते है, ज्ञान और वैराग्यका बल लगानेका वे प्रयत्न नहीं करते । ये इष्ट समागम मिले हैं तो सोचना चाहिए कि ये कभी बिछुड़ेंगे । यदि यह विचार आ गया तो इष्ट समागममें आसक्ति नहीं होती । और फिर इष्ट समागम क्या है ? कोई क्या कर देगा अपनेमें ? कैसा ही प्रिय हो, कैसा ही मित्र हो, कैसा ही आज्ञाकारी हो, कर क्या देगा ? वह अपनेमें अपना ही परिणाम करेगा । दूसरा अपनेमें अपनी ही कषाय शांत करेगा । प्रभुका ध्यान करके प्रभुसे यही मांगें कि हे नाथ ! यह सांसारिक सुखमें मग्न होनेकी विडम्बना विपदा मेरे पर न आये, मैं उस सुखमें ही सुखी हूं, मैं उस दुःखमें ही आनंद मानूंगा जिस दुःखमें रहकर हे प्रभो ! तेरी याद तो आती रहे । अपने आपके उस परमात्मस्वरूपकी सुध तो आती रहे तो दुःख भी मुझे मंजूर है ।

कष्टसहिष्णुताका गुण—ये सांसारिक सुख कर्मोंके आधीन हैं, उदय ठीक है तो सुख

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मिलेंगे, जिन सुखोंका अन्त होता है, जिन सुखोंके बीचमें अनेक दुःख भरे पड़े हुए हैं, जो सुख पापके बीज हैं ऐसे सुखोंका राग न हो। भैया ! विनती करें प्रभुसे और अपने चित्तमें ऐसी सहनशीलता उत्पन्न करें कि जो कोई दुःखकी स्थिति आये तो उन सब दुःखोंको सहन करनेमें समर्थ हों, जो दुःख ऐसे हैं कि मेरे शरीरपर कोई प्रयोग न कर सके, बाहर बाहरकी ही बातें हैं, उन दुःखोंको सहन करनेमें कौनसी कठिनाई है ? धन कम हो गया, कोई रूठ गया, किसी इष्टका समागम नहीं हो सक रहा, किसी इष्टका वियोग हो गया तो ये तो बाहर ही बाहरकी होने वाली बातें हैं। शरीरपर मार तो नहीं पड़ रही। ऐसे दुःखोंको सहन करनेमें कौनसी कठिनाई आ रही है ? अगर कुगति आ गयी तो उसका फल कौन भोगेगा ? खुदको ही तो भोगना पड़ेगा। सो ऐसे सुखोंके दिन स्वर्गवासियोंके ऐसे व्यतीत हो जाते कि वे जाने नहीं जाते।

(धर्म्यध्यानफलवर्णन प्रकरण ४१)

तस्माच्च्युत्वा त्रिदिवपटलाद्दिव्यभोगावसाने,
कुर्वन्त्यस्यां भुवि नरनुते पुण्यवंशेऽवतारम्।
तत्रैश्वर्यं परमवपुषं प्राप्य देवोपनीतै–
र्भोगैर्नित्योत्सवपरिणतैर्लाल्यमाना वसन्ति ॥२११५॥

धर्मध्यानका अन्तिम परिणाम—आचार्यदेव अब स्वर्ग सुखकी विडम्बनाओंसे उस जीवको निकाल रहे हैं। स्वर्गके देव दिव्य भोगोंको भोगकर स्वर्गपटलसे च्युत होते हैं और इस भूमण्डलमें अवतरित होते हैं और ऐसे पुण्य वंशमें जन्म लेते हैं जहाँ लोग नमस्कार करते हैं। देखिये—थोड़ासा फर्क है पहिलेके कथनसे, जो स्वर्गोंके सुखोंमें आसक्त रहते हैं ऐसे देवोंको यह मौका नहीं रहता, जो स्वर्गोंमें रहकर भी, उन सुखोंके बीच रहकर भी उनसे उदास रहते हैं, ऐसे देवोंको यह मौका मिलता है। उनका उस आयुके पूर्ण करनेके बाद पवित्र वंशमें, उच्च घरानेमें जन्म होता है जहाँ लोग नमस्कार करते हैं। तत्त्वज्ञानका प्रभाव है यह। जैसे ये नारकी जीव यदि कोई सम्यग्दृष्टि है तो वह नरकके दुःखोंको भोगकर भी अन्तरङ्गमें अनाकुल रहता है, क्योंकि यथार्थ ज्ञानका प्रकाश हुआ है, वहाँ ऐसे ही जो तत्त्वज्ञानी देव हैं उन्हें अनेक प्रकारके समागम मिले हों तिसपर भी उन सुखोंसे वे उदासीन रहते हैं। वे करें क्या, धर्मध्यानके फलमें देवगतिमें जन्म लिया, वही धर्मध्यानका संस्कार वहाँ भी है।

देवगतिमें धर्मसंस्कार—यहाँ इस कालमें जो अनेक ऋषिराज हुए हैं—कुन्दकुन्द स्वामी, अमृतचन्द्राचार्य, समन्तभद्राचार्य, अकलंक देव, विद्यानंद स्वामी आदि, कल्पना तो ऐसी आती है कि वे ऐसे विशुद्ध भाव वाले थे कि इस कालमें मोक्ष तो उनका नहीं हो सका, पर गये हैं वे स्वर्गोंमें, तो ये ऋषि संत वीतराग भावमें रहते होंगे। उनपर क्या गुजर रही होगी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि अनेक देवांगनायें उनके पास आकर नृत्य कर रही होंगी, उनके मनको लुभा रही होंगी, और कभी वे ऋषिराज हाथकी ताली भी बजा देते होंगे, सिर भी हिलाते होंगे, उनके रागरंग में सहयोग भी देते होंगे, कल्पना तो आती है कि ऐसा हो भी सकता है लेकिन जो तत्त्वज्ञान तपश्चरण उन ऋषिसंतोंने यहाँ किया था उसका संस्कार वहाँ होगा। वहाँके उन सभी प्रसंगों में वे उदास चित्त रहते होंगे और तत्त्वकी भावना भाते रहते होंगे। तीर्थंकरोंके कल्याणकोंमें, अनेक धर्म समारोहोंमें जिनका गमनागमन रहता है, दिलचस्पी रहती है ऐसी आयुको पार करके इस भूमण्डलमें जन्म लेते हैं और ऐसे पुण्यवंशमें जन्म लेते हैं कि जहाँसे फिर वे धर्म-ध्यान कर विशिष्ट संयम धारण कर निर्वाण भी प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे वे देव यहाँ परम ऐश्वर्यको पाते हैं, उत्कृष्ट शरीर प्राप्त करते हैं और उनके भी जीवनमें नित्य उत्सव रहा करता है। महापुरुषोंके प्रायः नित्य उत्सव समारोह होते रहते हैं, वे देव अनेक भोगोंमें अपना निवास करते थे। अब देवगतिसे आकर होते हैं मनुष्य, पर वहाँ भी अनेक पुण्यवंत पुरुषोंको वे देव अपने यहाँसे भोग सामग्री लाते हैं, वस्त्र लाते हैं और दिव्यभोजन भी लाते हैं।

प्रभुभक्तिमें भक्तकी आन्तरिक चाह—यहां तीर्थंकर देवके प्रति चिन्तन कीजिये कि नाथ ! जब आप स्वर्गसे भी यहाँ न आये थे तो यहाँकी नगरी उससे ६ माह पहिलेसे ही स्वर्ग-मयी बन गई थी, आये न देवलोकसे थे आप यहाँपर, फिर भी वह नगर स्वर्गसम्पदाका घर बना दिया था। तब हे नाथ ! जब भक्तिभावसे आपको हृदयमें विराजमान कर रहा हूं, और तिसपर भी मैं आपसे कोई चीज नहीं मांगता हूं। ईमानदारीकी बात तो यह थी कि आप नगरमें न आ पाये थे और ६ माह पहिलेसे ही सम्पदाका घर बन गया था। अब यहाँ आप विराजे हो तो अब तो न जानें यहाँपर मेरे हृदय आसनपर क्या न बन जाना चाहिए, लेकिन वह भी मैं कुछ नहीं मानता हूं। केवल इतना ही चाहता हूं, आपका सुख न चाहिए। मैं यह चाहता हूं कि इतना तो हो जाय कि मेरा जो वैभव है, मेरी जो निजकी निधि है वह तो मुझे मिल जाय। जानूं प्रभो तुम्हें प्रभु व दया जब मेरा जगजाल मिट जाय। तो प्रभुभक्ति करके धर्मध्यानी पुरुष अन्य कुछ नहीं चाहता। केवल यह भावना रहती है कि मेरा जन्म मरणका संकट दूर हो।

सांसारिक क्लेश व उससे मुक्तिका उपाय—संसारमें कौनसा पदार्थ ऐसा है जो चाहने योग्य हो ? किन्तु जब महापापका उदय आया तब इस जीवकी बुद्धि किसी दूसरेके प्रति प्रेम और स्नेहभावमें लग गयी। वहाँ समझिये कि यह मोह भी एक दुःख देने वाली वस्तु है। दुःख देने वाला अन्य कोई पदार्थ नहीं है, केवल एक मोह ही है। मोहको निद्रा बताया है। निद्रामें जैसे पुरुष अचेत हो जाता है ऐसे ही मोहमें यह अचेत हो जाता है। उस मोहका दुःख कौन मिटाये, किसी दूसरेमें सामर्थ्य नहीं। खुद ही जग जाय, मोहको दूर करे तो सुखी हो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सकता है अन्यथा उसके सुखी होनेका औषधि दुनियामें कहीं नहीं है। एक सेठको अपने महलमें नींद आ गई और स्वप्न आ गया कि मुझे बड़ी गर्मी लग रही है, मुझे आज गंगा नदी में नावसे सैर करने चलना चाहिए। स्त्री बोली कि हमें भी गर्मी लग रही है, हमें भी ले चलो, पुत्र, पुत्री व पहरेदार सभी कहने लगे कि हमें भी तो गर्मी लग रही है, हम भी सैर करने चलेंगे। सो घरमें ताला लगाकर सभी लोग सैर करने चले गए। नावमें बैठकर मजधारमें पहुंचे। यह स्वप्नकी बात बताई जा रही है। एक भंवर ऐसी आयी कि नाव डगमगाने लगी। सेठ दुःखी होने लगा। ओह! सब मरे। यह धन भी गया। मल्लाहसे कहता है—बचावो, बचावो हम तुम्हें ५००) रु० देंगे।····अरे कहाँ बच सकते हो?····अरे ५०००) रु० देंगे बचावो।···अरे जब हम ही न रहेंगे तो ये रुपये कौन लेगा? हमें छुट्टी दो, नाव अब नहीं बचेगी, हम तो अपने भुजबलसे तैरकर निकल जायेंगे। अब उस सेठके दुःखका क्या ठिकाना? देखा पड़ा तो है वह महलमें और कितना दुःखी हो रहा है? अब उसके दुःख दूर होनेका क्या इलाज है सो तो बतावो? क्या पासमें खेलने वाले उसके बच्चे, अथवा पासमें ही बैठे हुए मित्रजन अथवा अन्य परिजन लोग उसके उस दुःखको मेट सकेंगे क्या? अरे उसके दुःखको मेटनेमें कोई समर्थ नहीं है। हाँ, वह स्वयं जग जाय, उसकी निद्रा भंग हो जाय तो उसका सारा दुःख मिट सकता है। वह सेठ जग गया और देखा कि अरे यहाँ तो कुछ भी दुःख नहीं है। हम तो अपने महलमें पड़े हैं, वह दुःख तो सब एक स्वप्नका था, लो वह सुखी हो गया, तो ऐसे ही मोहकी नींद्में अचेत पुरुषोंको स्वप्न आ रहा है, मेरी स्त्री, मेरा पुत्र, मेरा घर, मेरा वैभव। ये मरे जा रहे हैं, नष्ट हुए जा रहे हैं, यों सोचकर ये अचेत प्राणी दुःखी हो रहे हैं। इनका यह दुःख कैसे मिट सकेगा?···अरे इनके इस दुःखको मिटानेमें कोई भी समर्थ नहीं। हाँ केवल एक ही उपाय हैं कि ये स्वयं जग जायें, इनको मोह-निद्रा भंग हो जाय।

ततो विवेकमालम्ब्य विरज्य जननभ्रमात्।
त्रिरत्नशुद्धिमासाद्य तपः कृत्वान्यदुष्करम् ॥२११६॥
धर्मध्यानं च शुक्लं च स्वीकृत्य निजवीर्यतः।
कृत्स्नकर्मक्षयं कृत्वा व्रजन्ति पदमव्ययम् ॥२११७॥

मुमुक्षुको विवेककी प्रथम आवश्यकता—जब कि संसारमें किसी भी वस्तुका शरण लेना हितकारी नहीं है तब समस्त परपदार्थोंसे विरक्त होकर परमशरणभूत जो आत्माका स्वरूप है, भगवानका जो स्वरूप है उसमें दृष्टि देना, उसकी शरण गहना, यही एक हितकारी है। जब इस धर्मध्यानमें यत्न होता है संत पुरुषोंका तो उसके फलमें मनुष्यभवके बाद वे अहिमिन्द्र देवमें उत्पन्न होते हैं और वहाँसे आयु पूरी कर बड़े श्रेष्ठ मनुष्य होते हैं। फिर वैराग्य से सुवासित होकर, दीक्षित होकर, आत्मध्यानमें लगकर निर्वाणपद प्राप्त करते हैं। इस कारण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

से जिन्हें मोक्षकी इच्छा है वे इस विवेकका आलम्बन करें। यहाँ संसारमें तो सारा अटपट सम्बंध है। जो आपके घरमें दो चार जीव आ गए हैं वे उन अनंत जीवोंमें से हैं, यदि ये न आते, इनकी जगहपर और कोई आते तो उनसे मोह करते। तो फिर अपना तो कोई न रहा। तब विवेक करना चाहिए कि इस आसक्ति स्नेह और मोहसे कुछ भी सिद्धि न होगी। जो पुरुष मोही होगा, आसक्त होगा वह अपना जीवन व्यर्थमें खो रहा है, हाथ कुछ लगेगा नहीं और व्यर्थ ही जिन्दगीमें कष्ट सह रहा। यदि धर्मकी प्रीति हो जाय तो इस जीवको इस भवमें भी शान्ति मिले और आगे भवका भी रास्ता मिले, जिससे रत्नत्रयकी साधना कर सकें। तो विवेक करना चाहिए।

अविवेकका उदाहरण और विवेककी ओर झुकाव—जैसे किसी आदमीने किसी लड़के को बहका दिया कि देख लड़के! तेरा कान वह कौवा लिए जा रहा है, तो वह लड़का उस कौवाका पीछा करता है। कोई पूछता है—अरे बेटा क्यों भागे जा रहे हो ? तो वह कहता—अरे बाबा जी छेड़ो मत, बड़ा गजब हो गया,""अरे क्या हो गया ?""अरे मेरा कान कौवा ले गया। वह समझाता है—अरे कौवा तेरा कान कहाँ लिए जा रहा है, अपने कानको टटोल-कर देख तो सही। जो उसने टटोलकर देखा तो कहता है—अरे कान तो यहीं लगा है। तो ऐसे ही दुनियाके मोही प्राणियोंको बहका रखा है दूसरे बहके हुए व्यक्तियोंने—देखो अमुकमें सुख है, ऐसे इन्द्रिय भोगोंमें सुख है, यों भोजन करो, यों देखो, यों सुनो, इसमें सुख है। यों बहका रखा है और अपने सुखके लिए दौड़ा जा रहा है विषयसाधनोंके पास। आचार्यदेव समझा रहे हैं—अरे भाई कहाँ दौड़े जा रहे हो ?""तो ये मोही प्राणी कहते—आचार्य महा-राज, आप चुप बैठे रहो, मेरा सुख उन विषयोंमें है, वैभवमें हैं, धनमें है। आचार्य कहते—अरे क्यों श्रम करते हो ? जरा अपनेको तो टटोलो, तेरा सुख तेरेसे बाहर नहीं गया, किसीने छीना नहीं है। अपने स्वरूपको तो तको, और कदाचित् यह जीव अपने स्वरूपपर दृष्टिपात कर ले तो मान जायगा—अहो ! मैं सुखके लिए कहाँ-कहाँ बाहर दौड़ा भटका, किसके पीछे भागें, मेरा सुख तो यहीं रखा हुआ है। मैं स्वयं आनन्दस्वभावी हूं।

मनःसंयमनका प्रभाव—देखो भैया ! जिन बड़े मुनीश्वरोंकी कथा हम बड़ी भक्तिसे सुनते हैं तो बात क्या हुई उनमें ? उन्होंने अपना स्वरूप पहिचाना। ज्ञान और आनंदरूप मैं हूं ऐसा उन्होंने पहिचाना, जिसके फलमें बाहरमें उनको कुछ खोजनेकी चाह न रही, इसी कारण वे महान हुए हैं और हम उनकी बड़ी भक्तिसे चर्चा करते हैं। देखो—करनेको कोई कैसा ही पाप करे किन्तु १० आदमियोंमें वह पापकी बातका उपदेश करे तो वह किसीको न रुचेगा, झेलने वालेको भी न रुचेगा। तो पाप यदि अच्छी चीज होती तो उसे भी समारोहमें उपदेश में या भाषणमें खुले रूपसे उपदेश देते, पर उसका उपदेश कोई नहीं देता। वहाँ तो त्याग,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

व्रत, संयम, दान, परोपकार आदिककी ही बातें करनी होंगी। तो जिसकी बात भी करना पाप है वह कार्य इस जीवका हित कैसे कर सकता है ? तो विवेक करिये--बाह्यपदार्थोंमें दौड़ न लगाइयेगा, संसारके भ्रमणसे विरक्त होइये। थोड़ा मनको संयत करना है कि आनंद मिलेगा अपार। थोड़ा मनको ढीला किया, थोड़ा मार्गसे च्युत हुए कि करा कराया जो कुछ है वह समाप्त हो जाता है। विवेक करें और संसारके भ्रमणसे विरक्त हों, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकी शुद्धि प्राप्त करें, इतना आधार पाने वाला साधु फिर अत्यंत दुष्कर तपश्चरण को भी करे, धर्मध्यान, शुक्लध्यानको स्वयं करे तो वह समस्त कर्मोंका क्षय करके अविनाशी पद प्राप्त कर लेता है।

कल्याणपथिक होनेके लिये आत्मप्रयोगके बलकी आवश्यकता—कोई ऐसी शंका करे कि हमने तो बहुत विद्या नहीं पढ़ी, बहुत शास्त्र नहीं देखा, हम अपना कल्याण कैसे कर सकेंगे ? तो जरा उन बंदरोंसे, मेढकोंसे भी तो पूछ लो, जिनकी चर्चा पुराणोंमें है, कि तुमने किस पाठशालामें पढ़ा था और कैसे सम्यक्त्व उत्पन्न कर लिया था ? यद्यपि मनुष्यकी बात तिर्यञ्चोंसे कुछ निराली है भवके कारण, इन्हें विद्याध्ययन करना चाहिए, किन्तु कोई ऐसा निरुत्साह हो जाय कि हमने बचपनमें अध्ययन किया नहीं, तर्क छंद व्याकरण आदिक कलावों को सीखा नहीं, तो अब क्या होगा ? तो उन्हें निरुत्साह होनेकी जरूरत नहीं है। अरे उन्हें भी इतना ज्ञान तो है कि जगतके सभी पदार्थ भिन्न हैं और नष्ट हो जाने वाले हैं, जिसको आत्मकल्याणकी लगन है उसको इतना ज्ञान तो सही मायनेमें होता है कि विश्वके ये सारे समागम न्यारे हैं, विनाशीक हैं, इनसे मेरा पूरा नहीं पड़ सकता है, इतना ज्ञान तो चाहिए। फिर चूंकि उसने भिन्न जाना, अहित जाना, विनाशीक समझा सो समस्त परपदार्थोंसे ऐसी उपेक्षा कर ले, ऐसा अपना चित्त बनाये, ऐसी अपनी समझ बनाये कि दिलमें कोई भी पर-पदार्थ बस न सके, कोई भी पदार्थ ख्यालमें न आये, बस कह दे कि तुम मेरे ख्यालमें मत आवो, तुम हमसे अत्यंत भिन्न हो, विनाशीक हो, तुम्हारा ख्याल करनेसे मेरेको कुछ भी लाभ नहीं है, यह तो एक मोटीसी बात है, इसके लिए कोई पैनी बुद्धिकी जरूरत नहीं है। समझ लिया, पर एक ऐसा विशुद्ध आग्रह होना जरूरी है कि मैं किसीको भी अपने चित्तमें न बसाऊँगा। यों समस्त परको चित्तसे हटाकर और एक निर्भारसा बन जाय, कुछ नहीं सोचना है, ऐसी स्थिति इन जाय तो स्वयं आत्मदर्शन हो जायगा और उस दर्शनसे फिर इसका मार्ग सब स्पष्ट हो जायगा। प्रयोगकी आवश्यकता है। मोह बिल्कुल न तजा जाय तो कैसे यह आशा की जा सकती कि यह कल्याणपथ पा सकेगा ?

पुराण पुरुषोंकी चर्यासे शिक्षा—श्री रामचन्द्रजीका कितना प्रबल स्नेह था लक्ष्मणसे और लक्ष्मणका श्रीरामसे। स्नेहकी इससे अधिक अच्छी मिसाल अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकती।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

केवल नारायण और बलभद्रमें ही यह मिसाल मिलती है, ऐसा ही घनिष्ट स्नेह श्रीकृष्ण और बलदेवजीमें था, मगर श्रीरामका प्रताप इसलिए बड़ा समझिये कि बलभद्र होकर भी श्रीराम की सेवा लक्ष्मणने की। नारायणकी सेवा बलभद्र किया करते हैं, पर राम बलभद्रकी सेवा लक्ष्मण नारायणने की। उनमें परस्परमें कितना महान प्रेम था ? राम तो गए बनमें, लक्ष्मण से घर रहा न गया, वे भी वनको गए। यद्यपि उनको घरपर बड़ा आराम था, पर जंगल गए रामका साथ निभानेके लिए, और रामचन्द्र जीका स्नेह देखिये कि जब लक्ष्मणका वियोग हुआ तो ६ माह तक उनका चित्त विभ्रम रूप रहा, लक्ष्मणकी देहको नहीं छोड़ा। कितना महान स्नेह था उनका परस्परमें, पर आज इस भूलोकमें हमें वे कहाँ दिख रहे ? श्रीराम भगवान हुए, मोक्ष पधारे, लक्ष्मण भी थोड़े ही सममसमें मोक्ष जायेंगे, तो कहाँ रहा वह संयोग ? बड़ों बड़ोंकी जब ये स्थितियाँ रहीं तो इस थोड़ेसे वैभवको पाकर, साधारण जनोंको पाकर मोहमें इतरा रहे हैं, यह कौनसी बुद्धिमानी है ? विवेक करिये—उन बड़ोंने क्या किया ? बड़ा वैभव पहिले जोड़ा, खूब आरामके साधन बनाये, बड़ी व्यवस्थायें बनायीं, बड़ा प्रताप फैलाया, और जिन्दगी व्यतीत हुई। अंतमें क्या हुआ ? कोई कभी बिछुड़ा, कोई कहीं बिछुड़ा, कोई दीक्षित हो गया और फिर मैदान साफ। तो संसारकी यह स्थिति है। यथार्थ बात तो विचारिये, और उस भूल-भटकसे निकलकर अपने आत्माके शुद्ध प्रकाशमें आयें, शान्ति इस ही उपायसे प्राप्त होगी, अन्य उपायसे नहीं।

कल्पनाके पुलके टूटनेका क्लेश—शेखचिल्लीकी एक कथा है कि एक श्मश्रुनवनीत नामका कोई पुरुष था। देखो करतूतके अनुसार उसका नाम भी श्मश्रु नाम है। श्मश्रु नाम है मूंछका और नवनीत नाम है मक्खनका। तो श्मश्रुनवनीतका अर्थ हिन्दीमें हो गया मूंछ-मक्खन। सो एक दिन वह किसी श्रावकके घर छाछ पीने गया। पीनेके बादमें उसने ज्यों ही अपनी मूंछोंपर हाथ फेरा तो कुछ मक्खन हाथमें लग गया। सोचा कि यह तो बड़ा ही अच्छा रोजगार है। १०-२० घरोंमें रोज मट्ठा पी आया करेंगे और उसे पोंछकर इकट्ठा कर लिया करेंगे, फिर उसका घी बनाकर बेचेंगे। सो उसी दिनसे उसने वही काम शुरू कर दिया। एक दो सालमें ही उसने करीब १ सेर घी जोड़ लिया। एक दिन जाड़ेके दिनोंमें अपनी झोंपड़ी में वह हाथ ताप रहा था, घी एक मिट्टीके डबलेमें था, जो कि उसी झोंपड़ीमें ऊपर लटक रहा था। कुछ उसे निद्रासी आई सो लेट गया। लेटे हुएमें उसने विचार किया कि मैं कल बाजार में इस घीको बेच दूंगा। जो भी रुपये मिलेंगे उनका खोम्चा लगाऊँगा, जब १०-२० रु० हो जायेंगे तो एक बकरी खरीदूंगा, फिर उसके बच्चे होंगे, बच्चोंको बेचकर व दूध आदिको बेचकर जब ५०-६० रु० हो जायेंगे तो एक गाय खरीदूंगा, फिर उससे बैल व भैंस आदि खरीदूंगा, फिर कुछ जमीन खरीदूंगा, फिर शादी भी कर लूंगा। बच्चे होंगे। कोई बच्चा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बुलाने आयगा कि चलो दद्दा खाना खाने—माँजी ने बुलाया है तो मना कर दूंगा। फिर सोचने लगा कि लड़का फिर बुलाने आया है—कहता है दद्दा खाने चलो, मांजी ने बुलाया है। तो वह कहता है—अभी हम नहीं जाते। जब कई बार उस लड़केने कहा तो गुस्सेमें आकर पैर फटकारकर उस लड़केसे कहा—अबे कह दिया कि अभी हम नहीं जाते। लो उसका पैर लग गया उस घीके डबलेमें। वह घीका डबला आगपर गिर गया, आग खूब जल उठी, झोंपड़ी भी जलने लगी, तो वह झट बाहर निकलकर चिल्लाता है—अरे मेरी स्त्री मर गयी, मेरे बच्चे मर गए, मेरा घर जल गया, मेरे जानवर जल गए, मेरी सारी सम्पदा नष्ट हो गई। लोग जुड़े। सोचने लगे कि यह कल तक तो भीख मांगता था और आज यह इस तरहसे कह रहा है। देखें तो सही कि आखिर मामला क्या है ? सो एक सेठजी ने उससे पूछा तो उसने सारा हाल बताया। तो सेठ जी कहते हैं—अरे तू क्यों रोता है, तेरे पास कुछ था तो नहीं, केवल कल्पना ही तो कर लिया था। वह तो एक शेखचिल्लीपनेकी बात थी, तेरा कुछ जला तो नहीं, तेरा कुछ नष्ट तो नहीं हुआ ? तू क्यों रोता है ? तो कोई एक समझदार पुरुष थे। उसने सेठ जीसे कहा—अरे सेठ जी तुम्हारी भी तो यही हालत है। तुम्हारा यहाँ है कुछ नहीं, केवल कल्पनासे मान रखा है कि यह मेरी स्त्री है, ये मेरे पुत्र हैं, यह मेरा वैभव है। तुम क्यों इनके पीछे दुःखी होते हो ? ये तो तुम्हारे कुछ भी नहीं हैं, तुमसे अत्यन्त भिन्न हैं, तुम भी व्यर्थमें इनके पीछे दुःखी होते। तो इस दुनियामें इन तृष्णावोंको करके कुछ भी तत्त्व न पाया जा सकेगा। जो भी हो, पर यह यथार्थ भान होना चाहिए कि परवस्तुके ममत्वसे मेरा हित नहीं हो सकता।

जिस क्लेशसे दुःखी होना उसी क्लेशमें रमना—खेदकी बात तो यह है कि धक्के खाते जाते हैं फिर भी उन्हींमें मोह करते जाते हैं। जैसे किसी बूढ़ेके ५-६ पोता पोती थे, वे उस बूढ़ेको बहुत हैरान करते थे। कोई पोता सिरपर चढ़े, कोई मूंछ फटाये। वह बड़ा हैरान हो रहा था। एक संन्यासी जी वहाँसे निकले, पूछा—बाबा जी ! तुम क्यों रोते हो ? तो वह बूढ़ा बोला—संन्यासी जी, हमारे ये ५-६ पोता पोती हैं, ये हमको बहुत हैरान करते हैं। तो संन्यासी बोला—तुम दुःखी मत हो, हम तुम्हारा यह दुःख मेट देंगे। इस बातको सुनकर वह बूढ़ा बड़ा खुश हुआ। सोचा कि संन्यासी जी कोई ऐसा जादू डाल देंगे कि ये बच्चे फिर तो हमारे सामने हाथ जोड़े ही खड़े रहेंगे। सो कहा अच्छा संन्यासी जी हमारा यह दुःख मेट दो। तो संन्यासी जो कहते हैं—अच्छा तुम हमारे साथ चलो, हमारे ही पास रहना, फिर ये सारे दुःख मिट जायेंगे। तो वह बूढ़ा कहता है—अरे ये पोते आखिर हमारे पोते ही रहेंगे और हम इनके बाबा ही कहलायेंगे, तुम बीचमें कौन तीसरे बहकाने आये ? तो जिन बातोंसे धोखा ही मिलता है, कष्ट ही मिलता है उन ही बातोंमें ये मोही प्राणी पड़ते हैं। अब इसका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कौन इलाज करे ? परवस्तुविषयक मोहमें किसने शान्ति पायी ? एक भी दृष्टान्त ऐसा बता दो जिसमें मोह करके यह प्राणी सुखी रहा हो ? तो विवेकसे ही पूरा पड़ सकेगा और विवेक खो करके तो कुछ पूरा नहीं पड़ता। तो यों भेदविज्ञान करें, संसारसे विरक्त हों, रत्नत्रयकी आराधना करें, तपश्चरण करें और उत्तम ध्यानको स्वीकार करके आत्मस्थ हों। यही एक उपाय है कि सर्व कर्मोंका क्षय करके अविनाशी पद प्राप्त किया जा सकता है।

(शुक्लध्यान वर्णन प्रकरण ४२)

रागाद्युग्ररुजाकलापकलितं सन्देहलोलायितं,
विक्षिप्तसकलेन्द्रियार्थगहने कृत्वा मनो निश्चलम् ।
संसारव्यसनप्रबंधविलयं मुक्तेर्विनोदास्पदं,
धर्मध्यानमिदं विदन्तु निपुणा अत्यक्षसौख्यार्थिनः ॥२११७॥

अतीन्द्रिय आनन्दके अभिलाषी योगियोंका मनकी निश्चलताका उद्यम—जो अतीन्द्रिय सुखके अभिलाषी हैं, केवल आत्माके स्वरूपके ध्यानके प्रसादसे जो निराकुलताका अनुभवन होता है उस आनन्दके जो अभिलाषी हैं ऐसे मुनिजन मनको निश्चल करते हैं। मनकी निश्चलतामें वैराग्यका प्रबल सहयोग है। रागादिक होनेके कारण मन निश्चल नहीं रह पाता, तब वे योगी प्रथम ही रागादिक तीव्र रोगोंका अभाव करते हैं। मनकी चंचलता रागादिक भावोंके कारण ही है। अनेक सन्देशोंसे यह मन चलायमान रहता है। कोई आदमी बीमार है तो उसके प्रति यह ख्याल रखते हैं कि कहीं यह मर न जाय। यद्यपि उस स्थिति में दोनों बातें सम्भव हैं—मर भी सकता और अच्छा भी हो सकता, किन्तु रागभाव ज्यादा है तो इस ओर अधिक ध्यान रहता कि कहीं यह मर न जाय। ऐसे अनेक संदेह वहां ही होते हैं जहाँ रागादिक भाव विराजते हैं। जब तक यथार्थ निर्णय न हो तब तक यह चित्त स्थिर नहीं रहता है। विषयरूपी गहन वनमें यह मन यत्र तत्र खूब भटकता फिरता है। तो सर्वप्रथम अतीन्द्रिय आनंदके अभिलाषी साधु संतजन मनको निश्चल करते हैं। संसारके कष्ट अनेक व्यसन आदिक आयें तो भी निश्चल मन वाले उनसे विचलित नहीं होते। निश्चल मनमें जो ध्यान होता है उसे आदर्श धर्मध्यान कहते हैं। जब तक साधक रागसहित है तब तक धर्मध्यान चलता है और जहाँ राग अत्यन्त मंद हो जाते हैं अथवा रागादिक नहीं रहते हैं वहाँ शुक्लध्यान चलता है।

शुक्लध्यानमें प्रवेश होनेसे पूर्व धर्मध्यानकी प्रेरणा—शुक्लध्यानका प्रकरण शुरू होने को है उससे पहिले धर्मध्यानकी प्रेरणा दी है आचार्यने कि इस धर्मध्यानका अनुभव करो। आत्माका एक धर्म ही शरण है, यह आत्मा बाहरमें करता कुछ नहीं है। किससे स्नेह करना, किससे विरोध करना, किसका संग्रह करना, ये सब विपरीत बातें जो देखी जा रही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं वे आत्माके द्वारा नहीं की जा रही हैं।

यह आत्मा तो अपनेमें मात्र भाव बनता है। वह भाव या तो पुण्यरूप होगा या पापरूप होगा या विशुद्ध धर्मरूप होगा। भावोंके अतिरिक्त आत्मा कुछ करनेमें समर्थ नहीं है। जब भाव ही कर पाता है। यह जीव तो अपने विशुद्ध भाव बना ले तो इसका उद्धार हो जायगा। धर्मके बिना इस संसारमें नाना जन्ममरण और कष्ट भोगने पड़ते हैं। एक रानीने अपने (पति) राजाको समझाया कि तुम रोज धर्म किया करो। तो राजा कहे वाह—हम धर्म क्यों करें, हमारे पास किस चीजकी कमी है, धर्म तो गरीब लोग करें। तो मरण तो सबका होता ही है। राजा मरण करके बादशाहके यहाँ ऊँट बना और रानी मरकर बादशाहकी लड़की बनी। लड़कीका जब विवाह हुआ तो उस बादशाहने उस ऊँटको भी दहेज़में दे दिया। अब जब बरात जाने लगी तो बरात वाले सोचते हैं कि यह ऊँट क्यों खाली जाय, इसपर कुछ लाद दिया जाय। सो उस दुल्हिनके कपड़े उसके ऊपर लाद दिये। रास्तेमें ऊँटको हो गया जातिस्मरण। सोचा—अहो! ये तो मेरी स्त्रीके ही कपड़े मेरे ऊपर लदे हैं। पूर्वभवकी वह उसकी स्त्री ही तो थी। अब वह चले नहीं तो उसका चलाने वाला उसे खूब पीटे। उसी समय हो गया उस दुल्हिनको भी जातिस्मरण। सोचा—ओह! यह ऊँट तो मेरा पूर्वभवका पति है। सो उसके न चलनेका कारण उसने समझ लिया। सो उस ऊँट खेदने वालेसे कहा—भाई तुम लोग इसे मारो मत, हम इसे समझा लेंगे। सो उसने अकेलेमें उसे समझाया कि देखो मैं कहती थी कि कि तुम रोज धर्म किया करो, नहीं तो मरकर कुगतिमें जावोगे। तुमने धर्म नहीं किया उसका फल है कि तुमको ऊँट बनना पड़ा है। अब तो अच्छा यही है कि तुम चले चलो, नहीं तो डंडे पड़ेंगे ही। तो जितने भी जीव यहां नजर आ रहे हैं कीड़ा मकोड़ा पशु पक्षी आदिक यह सब धर्म न करनेका फल है। इन बैल, भैंसा, घोड़ा घोड़ी आदिककी हालत देखो—गर्दन सूझ गई है, खून भी बह रहा है फिर भी बहुत सा बोझा लादे चले जा रहे हैं, डंडे भी पड़ते जा रहे हैं। ये सब हालतें जो हो रही हैं वे धर्मध्यान न करनेका फल है।

मनुष्यभव पाकर जिम्मेदारीका निभाव—आज मनुष्यभव पाया है तो अपनी बड़ी जिम्मेदारी समझिये। सर्व गतियोंमें, सर्व पर्यायोंमें मनुष्यका जन्म हो सकता है। अब भी न चेते तो चार दिनोंका जो स्वप्न है, मोहमें कल्पना आ गई यह तो मिटेगा, किन्तु अधर्म पाप परम्परासे यह आगामी भविष्यमें भी बहुत समय तक क्लेश पायगा। एक धर्म ही शरण है। किसीसे मित्रता करें तो ऐसी करें कि हमसे उसे भी धर्मकी प्रेरणा मिले और उससे हमें भी धर्मकी प्रेरणा मिले। घर गृहस्थीमें, स्त्री पुत्रादिकमें भी ऐसा ही व्यवहार रखें कि हमारे द्वारा इन सबको धर्मकी प्रेरणा मिले और इनके द्वारा हमें धर्मकी प्रेरणा मिले। धर्मसे दूर रहकर जो परिणाम बनेगा वह दुःखका ही कारण होगा। मनको निश्चल करके ही धर्मध्यान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होता है और इस मनकी निश्चलतामें सांसारिक व्यवहारकी प्रवृत्ति नहीं जगती। ऐसा मन को स्थिर बनाकर किसे देखें---अपने आपमें जो अपने आपका सहज स्वरूप है उस स्वरूपदर्शन के उत्सुक बनें। ऐसी भावना भायें कि मैं मात्र ज्ञानस्वरूप हूं, जो जानन है, जो ज्ञानस्वरूप है, जो ज्ञानपुञ्ज है एतावन्मात्र मैं हूं। इस प्रकार ज्ञानस्वरूपकी भावना करनेसे यह उपयोग एक ज्ञानोपयोग बनेगा, निराकुल होगा और विशुद्ध आनंदका अनुभव होगा। इससे जो मुनि जन इस अतीन्द्रिय आनंदके अभिलाषी हैं। उन्हें सर्वप्रथम आवश्यक है कि अपने मनको निश्चल करें और धर्मध्यानमें कुशल होवें।

आत्मार्थं श्रयमुञ्च मोहगहनं मित्रं विवेकं कुरु,
वैराग्यं भज भावयस्व नियतं भेदं शरीरात्मनोः।
धर्म्मध्यानसुधासमुद्रकुहरे कृत्वावगाहं परं,
पश्यानन्तसुखस्वभावकलितं मुक्तेर्मुखाम्भोरुहम् ॥२११९॥

आत्मप्रयोजनके आश्रयणका अनुरोध---हे आत्मन्! तू आत्माके प्रयोजनका आश्रय कर। दुनिया स्वार्थी है। अच्छी बात है, स्वार्थी सबको होना ही चाहिए किन्तु वास्तविक स्वार्थी होना चाहिए अर्थात् स्व मायने आत्मा उसके अर्थी मायने अभिलाषी। आत्माका जो स्वरूप है उस स्वरूपके दर्शनका अभिलाषी आत्मस्वभावमें रमण करनेका इच्छुक वास्तवमें स्वार्थी है। हे आत्मन्! तू अपने आत्माके प्रयोजनका आश्रय कर। अन्यके आश्रयको छोड़ दे, इस मोहरूपी बनको छोड़ दे। इससे निकल, भेदविज्ञानको अपना मित्र बना। बाहरमें किसको मित्र बनाते हो, कौन पुरुष ऐसा निष्कष्ट अथवा आपका कल्याण कर सकने वाला मिलेगा? वस्तुस्वरूप ही ऐसा नहीं कि कोई किसीका साथ निभाये। लोग स्नेहमें कहते हैं अपने मित्रसे कि देखो मित्र हमारे तुम्हारे शरीर तो दो हैं पर आत्मा एक है। यह बात कभी हो सकती है क्या? और यह बात हो सकती है कि शरीर तो एक हो और आत्मा अनेक हों। एक निगोद शरीरमें अनंतानंत जीव होते हैं, मगर दो शरीरोंमें एक जीव रह सके ऐसा कहीं सम्भव है क्या? उसका अर्थ यह लगाना चाहिए कि हमारा किसीसे सम्बंध नहीं। एक बार चिरौंजाबाईजीको किसी रिश्तेदारने निमंत्रण दिया और कह दिया कि देखो तुम्हें जरूर आना पड़ेगा, तो चिरौंजाबाईजी बोलीं हाँ हम जरूर आयेंगी, सिरके बल आयेंगी। जब उस समय वह न पहुंच सकीं तो वह रिश्तेदार उलाहना देने आया, कहा कि तुमने तो कहा था कि हम जरूर आयेंगी, सिरके बल आयेंगी पर आयी क्यों नहीं? तो उन्होंने कहा कि हाँ कहा तो था, सिरके बल चलनेकी कोशिश भी की, पर चलते ही नहीं बना। (हँसी) तो जो ज्यादा बढ़ बढ़कर बातें होती हैं उनमें समझो कि वहाँ वास्तविक स्नेहका लगाव नहीं है। न वहाँ कोई विशुद्ध सम्बंध है। वह स्नेह एक मोहकी सीमाका उल्लंघन करके है। तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हे आत्मन् ! देख भेदविज्ञान कर और विवेकको अपना मित्र बना। वैराग्यकी सेवा कर।

अराग ज्ञानमात्र स्वरूपके निरीक्षणका अनुरोध---आत्मन् ! अपने आपको ऐसी स्थिति में निरख, इस स्वरूपमें देख कि यहाँ तो केवल एक ज्ञानकला है, राग नहीं है, राग आता है तो किसी पर-उपाधिका निमित्त पाकर आता है। यह मेरा स्वरूप नहीं। अपनेको रागरहित स्वरूपमें अनुभव कर तो तेरा रागसे छुटकारा हो जायगा। जो अपनेको ऐसा ही मानता है कि जैसा कि राग कर रहा है---मैं तो यही हूं, मैं तो लटोरा घसीटा हूं तो ऐसा ही घसीटना पड़ेगा। अपनेको रागरहित स्वरूपमें तो तको और जो राग लगे हैं वे सब राग इस जीवके लिए आपत्तियाँ हैं, ऐसा निर्णय रखकर वैराग्यकी सेवा करो। और शरीर तथा आत्मामें भेद की भावना रखो। यह शरीर रूप, रस, गंध, स्पर्शमय है, जड़ है, आत्मा चैतन्यस्वरूप है, इस उपायसे धर्मध्यानके शीतल समुद्रमें अवगाहन कर और व्यथावोंको दूर कर। जब कोई संताप होता है, गर्मीकी बाधा होती है तो लोग करते क्या हैं कि शीतल जलसे स्नान करते हैं। तो यह राग आग इस जीवको जला रही है। तो राग आगके संतापसे बचनेका उपाय क्या है ? ज्ञानध्यान रूपी शीतल जलनिधिमें प्रवेश करना, यह है राग आगको शान्त करनेका उपाय। सीधीसी बात झट ख्याल कर लें---मैं तो केवल ज्ञानप्रकाशमात्र हूं, रागद्वेष मोह विरोध ये कुछ भी ऐब मेरे स्वरूपमें नहीं हैं।

जीवपर महती विपदा--अहो, कितनी बड़ी विपत्ति है इस जीवलोकपर ? कुछ सम्बंध नहीं, कोई बाह्यपदार्थ अपने नहीं। जैसे किसी चौहट्टेपर यहाँ वहाँसे आये हुए मुसाफिर एक जगह दो सेकेण्डको मिल जाते हैं और अपना-अपना रास्ता नापकर चले जाते हैं, ऐसे ही इस घरमें हो क्या रहा है कि चौहट्टोंसे चारों गतियोंसे मुसाफिरी करते हुए जीव आये, थोड़े समय को ठहरे, फिर बिदा हो गए, कुछ भी सम्बंध नहीं किन्तु यह मोही प्राणी अपनी सुध बुध भूलकर इन समागमोंको ही सर्वस्व समझता है और इस ही पर यह इतराता है, घमंड करता है, और इस समागममें कोई बाधा करे तो यह खेद मानता है। यह ही मात्र एक आपदा है, और आपदा ही कुछ नहीं। कुछ भी स्थितियाँ बनें, धन कम हो जाय, किसी इष्टका वियोग हो जाय, बाह्यमें सब कुछ हो गया, वह कोई विपदा नहीं है, पर मोहभाव चल रहा है भीतर गहन अंधकार अज्ञानका चल रहा है विपदा तो वह है।

भ्रमकी महती विपदा---एक बार १० जुलाहे एक नगरमें कपड़ा बेचने गए, रास्तेमें एक नदी पड़ी। जब कपड़ा बेचकर वापिस आये, नदी पार कर ली तो एक जुलाहा बोला कि अपन गिन तो लें, १० जने थे सो १० के १० हैं या नहीं। जो वे गिनें तो सामने जो दिखें उन्हींको गिन लें और अपनेको गिनना छोड़ दें। उन सभी जुलाहोंने ९ मित्र गिने। अब एक मित्र कम पड़ा तो वे सभी दुःखी होकर रोने लगे। वे आपसमें यही कहें कि गये तो थे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अपन १० मित्र दो रुपयेके लाभके लिए, पर एक मित्र खो आये। पता नहीं नदीमें बह गया या क्या हो गया ? उनमें परस्परमें बड़ा अनुराग था। इतना उन सभीको दुःख हुआ कि वे अपना-अपना सिर फोड़ने लगे। वहाँसे निकला एक घुड़सवार, उसने उन सबके रोनेका कारण पूछा तो उन सभीने सारा वृत्तान्त बताया। घुड़सवारने एक निगाहमें ही देख लिया कि हैं तो ये १० के १०, और कहते हैं कि ९ हैं। समझ लिया कि ये सभी महामूर्ख हैं। तो उसने कहा—अच्छा भाई कहो तो हम तुम्हारा वह १०वां मित्र बता दें, तो उन्होंने कहा हम तुम्हारा बड़ा आभार मानेंगे। सो उसने क्या किया कि उन दसोंको एक लाइनमें खड़ा किया, हाथमें एक बेंत लिया, और एक तरफसे गिनता जाय—१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ और १०वें के जरा जोरसे मारकर कहे—तू है १०वां। इसी तरहसे सभीको बता दिया कि तू है १०वां। वे सब बड़े खुश हुए अपने १०वें मित्रको पाकर। वे खुश तो हो गए, उनका दुःख तो मिट गया, जो भूल पड़ी थी अन्दरमें वह तो दूर हो गई किन्तु उस भूलके कालमें जो ढेलोंसे अपना सिर फोड़ लिया था वह दर्द तो अभी नहीं दूर हुआ। हाँ वह दर्द तो नहीं दूर हुआ, पर उस भीतरमें पड़ी हुई भूलका जो दर्द था उसके मुकाबले तो यह न कुछसा दर्द है। तो इसी तरह समझिये कि इष्टका वियोग हुआ, अनिष्टका संयोग हुआ, शरीरमें वेदना हुई, धन कम हो जाय, और और भी उपद्रव उपसर्ग आ जायें इतनेपर भी ये कोई दुःख नहीं हैं और अन्तरङ्गमें जो भूलका दुःख है, यह सब कुछ मेरा है यह भूलका दर्द बहुत कठिन है।

व्यामोहका परिणाम—गुरुजी एक घटना सुनाते थे कि बम्बईमें कोई गणितका प्रोफेसर था, लखपति घरानेका था, उसे अपनी स्त्रीसे बड़ा मोह था। जब स्त्री कहीं घूमने जाये तो वह प्रोफेसर साहब उस स्त्रीपर छाता लगाकर जावे, इसलिए कि कहीं इसके धूप न लग जाय। तो वह स्त्री एक दिन कहती है कि तुमको हमसे इतना अधिक मोह न रखना चाहिए, नहीं तो तुमको बड़ा कष्ट भोगना पड़ेगा, पागल हो जावोगे। आखिर हुआ भी ऐसा ही। वह स्त्री तो गुजर गयी और वह प्रोफेसर पागल-सा ही हो गया। एक बार वह प्रोफेसर बनारसमें एक धर्मशालामें ठहरा था, पास ही के एक कमरेमें चिरौंजाबाई जी ठहरी थीं। तो चिरौंजाबाई जी को ये शब्द सुननेमें आये—देखो बाई जी ने तो रोटी बनाली, पंडित जी को खिला भी दिया, १० बज गये, अभी तक तुमने रोटी नहीं बनाई ? तो बाई जी उससे बोली कि तुम किससे वे सारी बातें कह रहे थे ? यहाँ तो कोई नहीं है। तुम्हीं अकेले हो। तो उसने अपनी सारी कथा सुनाई कि हमको अपनी स्त्रीमें बड़ा मोह था, उसके मर जाने पर इस फोटोको देखकर मुझे उसकी याद आ जाती है। और मुझे क्लेश होता है। तो बाई जी बोली कि तुम्हें क्या यह पता नहीं कि यह कागज है, फोटो है, यह रोटी नहीं बना सकता ? तो वह प्रोफेसर बोला—हाँ हम जानते हैं इस बातको, पर उसके मर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाने से मेरे हृदयमें एक बहुत बड़ा धक्का पहुंचा है, उसका वियोग हो जानेसे हमारा मन काबूमें नहीं है। तो यहाँ रहना कुछ नहीं है लेकिन उस मोहके कालमें जो मन गड़बड़ कर लिया जाता है उसका दु:ख उनको ही भोगना पड़ता है। इस कारण जितना सचेत बन सकते हों, बनें।

बाह्य अर्थमें शरणत्वका अनवकाश—खूब निरख लीजिये कि जितने भी समागम हैं उन सबका नियमसे वियोग होगा। ऐसी बात जान लेनेसे कितना फायदा है? एक तो उस समय भी यह अंधेरेमें न रहेगा, मोहमें व्याकुल न रहेगा और जब वियोग होगा तब इसको अधिक आकुलता न होगी, क्योंकि वह समझेगा कि यह बात तो मैं वर्षोंसे जानता था कि जो समागम मिला है उसका वियोग अवश्य होगा। तब इन समागमोंमें राग करने से लाभ कुछ नहीं है। वैराग्यकी सेवा करें और सबसे निराला जो अपना ज्ञानस्वरूप है उसकी भावना करें। निज कारणपरमात्मतत्त्वकी उपासनासे ही हम आपका कल्याण हो सकता है। जगतमें और कोई दूसरा नहीं है ऐसा कि जिसका आश्रय कर लेनेसे कल्याण हो सकेगा बाकी तो सब स्थल लात मारने वाले हैं। जैसे फुटबाल जिस बालकके पास पहुंचता है वह बालक उसे हृदयसे नहीं लगाता बल्कि लात मारकर उसे वहाँसे भगा देता है, फिर वह फुटबाल जहाँ जाता है वहाँ भी यही हाल होता है, इसी तरह यह जीव जहाँ जायगा, जिन जिन की शरणमें पहुंचेगा वहींसे धक्के खायगा, किसीके वशकी बात नहीं है। कैसा भी किसीसे प्रेम हो, धक्का न देना चाहे, लेकिन कोई न कोई बात ऐसी बन ही जाती है कि वहाँ धक्का ही लग जाता है। प्रत्येक जीव अपने-अपने ही स्वरूपमें परिपूर्ण हैं, उनकी परिणति न्यारी है, कैसे वे शरण बन सकते हैं? तो बाह्य पदार्थोंमें शरणत्वकी बुद्धि छोड़कर एक अपने आत्माका आश्रय लें।

मिथ्यात्रितपका क्लेश और उससे बचनेको त्रियत्नका अनुरोध—भैया! जैसा ही दु:ख रागसे होता है वैसा ही दु:ख द्वेषसे होता है और मोहसे भी दु:ख है। ये तीनों ही संसारके कारण हैं। एक ब्राह्मणी थी, उसके थे तीन लड़के। एक छोटा, एक मंझला और एक बड़ा, यों समझ लो। एक बनियाने सोचा कि हमें एक ब्राह्मण जिमाना है तो चले जायें कलके दिन को उस बुढ़िया ब्राह्मणीके घर, सबसे छोटे बच्चे को निमंत्रण दे दें। पहुंचा वह बनिया उस बुढ़ियाके पास और बोला कि बुढ़िया मां कलके दिनको तुम्हारे छोटे बच्चेको हमारे यहाँ भोजन करनेका निमंत्रण है, तो बुढ़िया कहती है कि हमारे तीन लड़के हैं, तुम चाहे छोटेको निमंत्रण दो, चाहे बड़ेको, चाहे मंझलेको। हमारे तो तीनों ही लड़के तिसेरिया हैं अर्थात् तीन सेर खाने वाले हैं। तो ऐसे ही भव-भवमें भटकाने वाले ये मिथ्या-दर्शन-ज्ञान-चारित्रका तिगड्डु अथवा मोह रागद्वेषकी त्रिपुटी ये सभी हमारी बरबादीके कारण हैं—हम उनमें क्या छांटें कि कौन कम

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है कौन ज्यादा है ? कभी ऐसा हो कि मोह कम रहा और रागद्वेष जिन्दा है तो वे बढ़कर फिर कभी बड़े पतनकी स्थिति बना सकते हैं। बुद्धिमान पुरुष ऐसा सावधान रहते हैं कि वे किसीमें रंच भी रागद्वेष नहीं करते, और जैसे धुनिया रुईको जर्रे जर्रे करके धुन देता है इसी तरह वे बुद्धिमान जन इन राग द्वेषोंको धुन डालते हैं। रंचमात्र भी राग कभी बहुत बड़ी महान विपदाका कारण बन जाता है। तो भेदविज्ञान करें, वैराग्यकी सेवा करें और आत्मस्वरूपकी भावना बनायें। यह इस एक धर्मध्यानका पूर्णरूप होगा। इस प्रकार धर्मध्यानमें अनुरोध करके अब आचार्यदेव शुक्लध्यानका वर्णन करेंगे।

अथ धर्म्यमतिक्रान्तः शुद्धिं चात्यन्तिकीं श्रितः।
ध्यातुमारभते वीरः शुक्लमत्यन्तनिर्मलम् ॥२१२०॥

योगीका शुक्लध्यानके लिये उपक्रम—अब यह योगी धर्मध्यानको अतिक्रान्त करके बहुत ऊँची आत्मसिद्धिको प्राप्त करता हुआ शुक्लध्यानका ध्यान करनेको उद्यत हो रहा है। धर्मध्यानका बहुत विस्तारपूर्वक वर्णन चला था, उन सब विशुद्धियोंमें रहकर जिसने आत्मशोधन किया अब ऐसा महापुरुष शुक्लध्यानका प्रारम्भ करने जा रहा है। धर्मध्यान ७वें गुणस्थान तक बताया है और ८वें गुणस्थानसे शुक्लध्यान। इस शुक्लध्यानमें बहुत पवित्रता है। रागकी वहाँ प्रेरणा नहीं है। धर्मध्यानमें तो अनुराग भी था, विकल्प भी था किन्तु शुक्लध्यानमें राग नहीं, रागकी प्रेरणा नहीं। प्रथम शुक्लध्यानमें क्वचित् जो कुछ राग परिणमन रहा आया तो रहा आये किन्तु न उसका उपयोग है और न उसकी प्रेरणा है। एक शुद्ध जाननकी स्थिति है, उसीमें उपयोग है, ऐसे शुक्लध्यानका प्रारम्भ करते हैं।

निष्क्रियं करणातीतं ध्यानधारणवर्जितम्।
अन्तर्मुखं च यच्चित्तं तच्छुक्लमिति पठ्यते ॥२१२१॥

शुक्लध्यानका साधक पुरुष ऐसे ध्यानमें आ गया है कि जहाँ निष्क्रिय अवस्था है, कुछ क्रिया नहीं करनी है। धर्मध्यानके समय तो आसनसे बैठना, कुछ उसका भी उपयोग, कुछ अपनी साधनाका उपयोग, प्रभुके गुणोंके अनुरागका उपयोग ये सब अनुरागवश चल रहे थे किन्तु शुक्लध्यानमें ऐसी विशुद्ध अवस्था होती है कि वहाँ क्रियाका कुछ उपयोग नहीं है। शुक्लध्यान प्रायः मिनट दो चार मिनटों जितने कालकी चीज है। यद्यपि बताया है कि अन्तर्मुहूर्त तक शुक्लध्यान रहता है किन्तु ४५-४८ मिनटकी बात नहीं है। कभी ऐसा अनुभव किया होगा कि जब यह उपयोग अपने आपमें बसे हुए शुद्ध स्वरूपकी ओर चलता है तो यहाँ वहाँसे दिल हटानेमें और तद्विषयक ज्ञानके करनेमें बहुत समय व्यतीत करना पड़ता है और जब उस शुद्ध स्वभावको ज्ञानमें लेते हैं तब वह समय बहुत थोड़ा रहता है, और कहो न भी शुद्ध स्वभावका अनुभव कर पाये उसको छूकर ही अथवा दृष्टिसे निरखकर ही लौट आता है,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बहुत कम समय आता है यह वर्तन जहाँ किसी प्रकारका विकल्प नहीं होता है और एक विशुद्ध ज्ञानस्वरूपका उपयोग रहता है। यह तो यहाँकी बात है जहाँ शुक्लध्यान नहीं, धर्मध्यान ही है और फिर श्रेणीमें चढ़ते हैं। ७वें गुणस्थानकी दो श्रेणी होती हैं—उपशम और क्षपक। जब ७वें के ऊपर ८वें गुण गुणस्थानमें पहुंचते हैं, तो वहाँ शुक्लध्यानका प्रारम्भ होता है, वह तो निष्किम्प अवस्था है। कुछ वहां करनेकी बात नहीं है, इन्द्रियातीत अवस्था है, इन्द्रियका वहां व्यापार नहीं है, इन्द्रियके द्वारा वह ध्यान या वह स्थिति बनती नहीं है, इन्द्रियके अगोचर है।

अन्तर्मुख चित्तस्थितिकी श्रेष्ठता—भैया! जिसकी चर्चा कर रहे हैं वह तत्त्व, वह स्थिति इतनी उच्च है कि जीवने प्राप्त नहीं की। यदि उस श्रेणीकी अवस्थाको, इस शुक्लध्यान को प्राप्त कर ले तो निकट कालमें ही निर्वाण होगा। जहां रागद्वेष नहीं, मात्र एक ज्ञाताद्रष्टा रहनेकी स्थिति होती है वह है ध्यानकी एक शुद्ध अवस्था। वहां ध्यान धारणा नहीं रहती। धर्मध्यानमें तो इस ध्यानकी धारणा रहती है पर शुक्लध्यानमें नहीं रहती है। इस शुक्लध्यान में चित्त अन्तर्मुख रहता है, चित्त भीतरमें ही कुछ निरखनेके लिए चलता है और इस प्रकार अभिमुख होकर चलता है और इस प्रकार अभिमुख होकर चलता है कि जहां यह भी कह सकते हैं कि चित्तका वहां नाश हो जाता है, विकल्पोंका वहां अभाव रहता है, इस प्रकारका अन्तर्मुख हो जाता है। यह चित्त तब पनपता है जब बहिर्मुख होता है। जैसे कोई बेल तब पनपती है जब उसे बाहर बढ़नेका अवकाश मिलता है। इसी प्रकार यह चित्तकी बेल तब बढ़ती है जब यह बहिर्मुख होता है, बाह्यमें बहुत-बहुत विकल्प करता है और जब यह चित्त अंतर्मुख होता है तो इसका पनपना समाप्त हो जाता है, और ज्ञानका विशुद्ध प्रकाश फैलने लगता है। इस ही स्थितिको शुक्लध्यान कहते हैं।

आदिसंहननोपेतः पूर्वज्ञः पुण्यचेष्टितः।
चतुर्विधमपि ध्यानं स शुक्लं ध्यातुमर्हति ॥२१२२॥

बज्रर्षभनाराचसंहननधारी पूर्वविद् योगीके ध्यानार्हता—शुक्लध्यानका धारक बज्रवृषभनाराचसंहननका धारी पुरुष होता है। शुक्लध्यानको उत्कृष्ट रूपसे निभा सके, ऐसी पात्रता उस पुरुषके होती है जिसका शरीर बज्रके समान पुष्ट है। जिसके हाथ, पैर, कीली आदिक सारे अंग बज्रवत् हैं, जो अत्यन्त कष्टसहिष्णु है, जो बधबन्धन आदिक अनेक उपद्रव उपसर्ग आनेपर भी रंच भी चलित न हो ऐसे बज्रवृषभनाराचसंहननका धारी पुरुष तथा ग्यारह अंग और चौदह पूर्वका ज्ञाता पुरुष शुक्लध्यानी बननेका पात्र होता है। यद्यपि आगममें यह भी बताया है कि अष्ट प्रवचन मातृकाका ज्ञान रखने वाले साधु भी उच्च होते हैं। उसका स्पष्ट निष्कर्ष यह है कि जिस योग्यतामें वर्षों समय गुजर जाता है उस योग्यतामें अष्ट प्रवचन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मातृकाका ज्ञान है—भेद ज्ञान, और उसके प्रसादसे जो कुछ निज शुद्धस्वरूपका भान है, आलम्बन है उसके आश्रयसे वह निर्वाण प्राप्त करता है। किन्तु यह बहुत सम्भव है कि ऐसा साधु जब श्रेणीमें चढ़ता है तो उस श्रेणीके समयमें इतनी विशुद्धि जगती है कि वहाँ श्रुतज्ञानावरणका क्षयोपशम हो जाता है। जब ज्ञानावरण मिटनेके लिए है तो मिटनेसे पहिले श्रुतज्ञानावरणका इतना क्षयोपशम हो जाय कि जहाँ द्वादशांगका ज्ञान हो जाय इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं। चूँकि वह श्रेणीका काल बहुत कम है और शीघ्र ही वह सयोग-केवली बन जाता है, अरहंत भगवान बन जाता है। सो उनका जो बहुत समय गुजरा वह अष्टप्रवचन मातृकाके बोधमें गुजरा और जो सद्व्यावहारिकताका समय था वह सब इसी योग्यतामें गुजरा, अतः यह कथन ठीक है और यह भी ठीक है कि द्वादशांगके जानने वाले साधु शुक्लध्यानको ध्यानेके योग्य होते हैं। इसके सम्बन्धमें सूत्र जी में भी कहा है—शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः।

पुण्यचेष्टित महापुरुषोंके शुक्लध्यानका अधिकार—ऐसे महापुरुष जो पुण्यमें स्थित हैं, जिनकी चेष्टा, जिनका दर्शन पवित्र है वे ४ प्रकारके शुक्लध्यानोंका ध्यान करनेके योग्य होते हैं। लौकिक दृष्टिसे देखिये—जो शरीरका व्यवहार है, नामवरी है, लगाव है, सम्पर्क है, ये सब समूल नष्ट हो जायें तो मिलेगा वह विशुद्ध ज्ञानविकास, जिस ज्ञानमें समस्त लोकालोक प्रतिभासित होता है। मोही लोग तो सुन कर हैरान होंगे कि जब मैं सबको जानना चाहता था तब तो हमको ज्ञान हुआ नहीं और जब वीतराग हो गए तो ज्ञान हो रहा है, तो उससे फायदा क्या पाया? मोही जन इस प्रकारसे सोच सकते हैं, पर जहाँ केवल ज्ञानकी स्थिति रहती है, ऐसा ज्ञान रहता है तो उसका स्वभाव है कि वह समस्त सत् पदार्थों का जाननहार होता है। तो समस्त सत्को जान लिया इससे प्रभुकी परिणतिकी उपादेयता न समझिये, किन्तु ऐसा जाननेके साथ अनंत आनंद रहता है, वीतरागतासे परम निराकुलता रहती है, उस निराकुलताका आदर्श है प्रभुके। ऐसे शुक्लध्यानको ध्यानेके लिए प्रथम संहनन वाला द्वादशांगका वेदी पुण्यमयी चेष्टा वाला योगीश्वर पात्र होता है।

शुचिगुणयोगाच्छुक्लं कषायरजसः क्षयादुपशमाद्वा।
वैदूर्यमणिशिखा इव सुनिर्मलं निष्प्रकम्पं च ॥२१२३॥

कषायके उपशम व क्षयसे ध्यानकी शुक्लता—आत्माके पवित्र गुणके सम्बंधसे इस ध्यानका नाम शुक्ल पड़ा है। शुक्ल मायने सफेद। इस शब्दमें अनेक मर्म भरे हैं। लाग लपेट रहित हैं भगवान। लाग तो हुआ विभाव और लपेट हुआ शरीर। प्रभुके अब शरीर भी नहीं रहा, ये विभाव भी नहीं रहे। तो जहाँ रागका अभाव होता है वहाँ आत्मामें पवित्रता उत्पन्न होती है और फिर जो कुछ उसके ज्ञानमें आता है वह उसका शुक्लध्यान होता है। यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शुक्लध्यान क्योंकि क्षय और उपशम दोनों प्रकारसे प्रकट होता है। जो चारित्र मोहनीयका उपशम प्रारम्भ करता है वह उपशम श्रेणीमें चढ़ता है और जो क्षय प्रारम्भ करता है वह क्षपक श्रेणीमें चढ़ता है। चारित्र मोहके उपशमसे भी व क्षयसे भी शुक्लध्यान होता है। किंतु उपशमसे पृथक्त्ववितर्क विचार नामका प्रथम शुक्लध्यान ही हो सकता है इससे आगे नहीं, और चारित्र मोहके क्षयकी श्रेणीसे चारों शुक्ल होते हैं। वह शुक्लध्यान निर्मल है और निष्कम्प है, वह समय धन्य है जिस समय आत्माका उपयोग अपने आत्मामें ही निश्चल होकर ठहर जाय। नीरंग निस्तरंग कोई प्रकारकी जहाँ बाधा नहीं, विकल्प नहीं। जो थोड़ी ही देर में संसारसे पार हो जायगा ऐसा समय, ऐसा सुयोग, ऐसी परिस्थिति जिन्हें प्राप्त हुई है वे वंदनीक हैं। जिसे कोई लोग असम्प्रज्ञातसमाधि कहते हैं। निर्विकल्प समाधि, जहाँ कोई कल्पना नहीं, जहां कोई वितर्क नहीं, विचार नहीं और अस्मिता रूपसे भी अनुभव नहीं, ऐसी उत्कृष्ट पवित्र प्रभुत्वकी स्थितिको असम्प्रज्ञातसमाधि कहते हैं। ये सब शुक्लध्यानकी स्थितियाँ हैं।

कषायमलविश्लेषात्प्रशमाद्वा प्रसूयते ।
यतः पुंसामतस्तज्ज्ञैः शुक्लमुक्तं निरुक्तिकम् ॥२१२४॥

कषायके विश्लेष अथवा उपशमसे उत्पन्न हुए ध्यानकी शुक्लताका औचित्य—यह शुक्लध्यान कषायमलके विनाशसे उत्पन्न होता है अथवा कषायोंके उपशमसे उत्पन्न होता है इस कारणसे जो तत्त्वके जानकार हैं ऐसे ऋषि संतोंने इसका शुक्लध्यान नाम बहुत ही ठीक रखा है। शुक्ल नाम है श्वेतका, जहाँ कोई दाग लाग नहीं, ऐसी केवल एक जाननहारकी स्थिति वह है शुक्लध्यान। इस शुक्लध्यानके ४ भेद हैं—जिनका वर्णन आचार्यदेव स्वयं इसी प्रकरणमें करेंगे। तो एक साधारण लक्षण जो सबमें घटित हो, जो अति शीघ्र विदित हो जाय उसके लिए यह शुक्ल शब्द बहुत उपयोगी है। श्रद्धाकी बहुत बड़ी महत्ता है शिव-पंथमें बढ़नेके लिए। जो इस शुक्लध्यानको प्राप्त करते हैं उनकी श्रद्धा आत्मतत्त्वके विषयमें निष्प्रकम्प रहती है तब यह ध्यान रहता है। यदि श्रद्धा डावांडोल है, कुछ लगे और जगह तो ऐसे पुरुषोंको ऐसे ध्यानकी स्थितियाँ प्राप्त नहीं हो सकतीं। मैं आत्मा ज्ञानमात्र हूं और केवल ज्ञानस्वरूपके रूपमें ही अपने आपको निरखना, परखना, अनुभवना यह अन्तःप्रयोग चलता है जिसके प्रतापसे ऐसा विशिष्ट ध्यान प्राप्त करते हैं।

उपसर्गविजयकी कुञ्जी—आश्चर्य होता होगा लौकिक जनोंको कि कैसे सुकुमालने उन विकट परीषहोंको सहा, तीन दिन तक स्यालिनी खून चाटती रही, पैर खाती रही लेकिन सुकुमाल फिर भी ध्यानसे विचलित नहीं हुए। सुकुमाल, सुकौशल, राजकुमार आदि अनेक मुनि ऐसे हुए जिनपर बड़े-बड़े उपसर्ग ढाये गए, फिर भी वे अपने ध्यानसे विचलित नहीं हुए।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अनेक मुनि तो ऐसे हुए जो कोल्हूमें पेल दिए गए अथवा उपलोंका घर बनाकर उनके अन्दर बंद कर जला दिए गए, फिर भी वे अपने आत्मध्यानसे रंच भी चलित नहीं हुए। तो उन्होंने अपने भीतरकी कोई ऐसी कुञ्जी पा ली थी कि जिससे वे ऐसे उपद्रवोंमें भी रंच भी विचलित नहीं हुए। कितना उत्कृष्ट भेदविज्ञान और कितना उत्कृष्ट स्वरूपका अनुभवन कि जिसके प्रतापसे यह भी स्थिति बनी जो उन्हें विदित भी नहीं रहा कि यहाँ कोई खा भी रहा है, आग भी जला रहा है, और कदाचित् विदित भी हो तो यों जानो जैसे कोई बाहर ही ईंधन में आग लग रही हो, यह शरीर भी बाह्य ईंधन है, आत्मा तो जलता नहीं, गलता नहीं। यह बात सहसा सुनकर तो यों लगता है कि यह तो कहनेकी बात है और शास्त्रोंमें लिखी बात है। चलो ऐसा ही सही, पर जिस बातको सुनते ही आनन्द उत्पन्न होता है वह बात किसीकी करनीमें आ जाय तो उसके आनंदका कौन ठिकाना ? मैं ज्ञानमात्र हूं, केवल ज्ञान-प्रकाश ज्ञानज्योतिमात्र मैं हूं ऐसा जिसके अनुभवन चलता है, वह अनुभव है उपसर्गविजयकी कुञ्जी। उपसर्ग क्या चीज है, हो रहा है बाहरमें। जहाँ जो परिणति होती है वह उसके अपने स्वरूपमें उस काल है।

परम निःसंगताके यत्नकी आवश्यकता—हम आप सब इस बातका यत्न करें कि ऐसा हम मनन करते रहें कि मैं सबसे निराला केवल ज्ञान प्रकाशमात्र हूं। बात सही है तब कही जा रही है, और जिसको कोई भी विवेकी पुरुष अपने अंतःप्रयोग द्वारा समझ सकता है और फिर जिसे यहाँके समागमोंमें राग न रहा हो, लोगोंका लगाव न लगा हो, नाम, यश, पोजीशन, ये सब जिसके कलंक दूर हो गए हों ऐसे पुरुषको मरनेका कुछ दुःख नहीं है। वह तो जानता है कि मेरा मरण कहाँ, मैं तो इस जगहको छोड़कर दूसरी जगह जा रहा हूं, मेरा जो वैभव हैं वह तो मैं साथ लिए जा रहा हूं, जो मेरा वैभव है वह मुझसे कभी छूट नहीं सकता। मेरा वैभव तो जहां मैं होऊँगा वहाँ ही रहेगा। कितना बलिदान है उसका कि जब परिचित दुनियाका उसने मोह छोड़ा, छूट गया सब, धनका, नामवरीका, परिजनका सबका मोह छूट गया, केवल एक ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वकी ही उसको धुनि है, मैं इतना ही हूं, और अन्य सर्व परपदार्थोंको तो मैं जानता ही नहीं, यहां कोई मुझे जानने वाला भी नहीं, मैं तो अपने अन्तःस्वरूपको ही समझ रहा हूं, उसे ही जान रहा हूं, यही मेरी दुनिया है, आनंद यहीं, मेरा निजी घर भी यहीं। मोही जन तो महलोंकी चिन्तायें करते हैं, ऐसा अच्छा मकान होना चाहिए, ऐसे ढंगसे रहना चाहिए, पर आत्माका निजी घर कितना है, जिसमें कोई पिण्ड नहीं, जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श नहीं, जिसको कोई छू नहीं सकता, छेड़ नहीं सकता, रंच भी बाधा नहीं पहुंचा सकता, ऐसे अमूर्त प्रदेशोंसे जिसकी रचना है ऐसा निज घर है, जिसमें मैं बस रहा हूं, और जब चलूंगा यहांसे तो पूरा अपना घर साथ लिए जाऊँगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वह मेरा घर कभी मेरेसे छूटता नहीं। दुःख किस बातका ? अपने आपके इस ज्ञानस्वरूपमें ऐसी दृष्टि खचित हो जाना, यह है इस जीवनकी सफलताका काम। यह जिन्होंने पाया उनका जीवन सफल है, और इस निज मर्मको जो नहीं पा सके वे कितना ही अपना यहां प्रचार प्रसार कर लें किन्तु उनको लाभ कुछ भी नहीं है। यों शुक्लध्यानके प्रकरणमें ऐसे विशुद्ध आत्माका वर्णन आ रहा है।

छद्मस्थयोगिनामाद्ये द्वे तु शुक्ले प्रकीर्त्तिते।
द्वे त्वन्त्ये क्षीणदोषाणां केवलज्ञानचक्षुषाम् ॥२१२५॥

आद्य दो शुक्लध्यान और उनके स्वामी—शुक्लध्यान ऐसी स्थितिका नाम है कि जहां मन चलायमान नहीं, मन अन्तर्मुख है, विकल्पोंका विलास नहीं, ऐसे विशुद्ध अत्यन्त एकाग्र उपयोगका नाम शुक्लध्यान है। यह शुक्लध्यान श्रेणीमें रहने वाले मुनीश्वरोंके होता है। शुक्लध्यानके चार भेद कहे हैं। जिनका नाम है—पृथक्त्ववितर्कवीचार एकत्ववितर्क अवीचार, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति, व्युपरतक्रियानिवृत्ति। इनमेंसे आदिके दो शुक्लध्यान छद्मस्थ योगियोंके होता है। केवलज्ञानसे पहिलेकी श्रेणियोंके दो शुक्लध्यान होते हैं। पृथक्त्ववितर्क वीचारमें क्या होता है इसको आगे स्पष्ट करेंगे, पर साधारणतया ऐसा भाव समझ लें कि जहां रागकी प्रेरणाके बिना तो ध्यान हो रहा है, पर जिस किसी भी पदार्थका ध्यान कर रहे हैं उस ही में नहीं ठहर पाते। बदल बदलकर पदार्थोंका ध्यान इसमें हुआ करता है, और एकत्ववितर्कअवीचारका अर्थ है कि जिस पदार्थमें ध्यान जमा उस ही का ध्यान स्थिरता से रहता है और उस ही स्थितिके बाद एकदम केवलज्ञान हो जाता है। पृथक्त्ववितर्कवीचार ८वें गुणस्थानसे ११वें गुणस्थान तक और थोड़े समयको १२वें गुणस्थानमें होता है। इसके बाद जब एक ही पदार्थको ज्ञेय रखकर ध्यानकी एकाग्रता होती है तब वह भी सकल प्रत्यक्ष के द्वारा ज्ञात रहेगा और सारे विश्वके एक पदार्थ भी ज्ञात हो जायेंगे, ऐसा केवलज्ञान प्रकट होता है।

अन्तिम दो शुक्लध्यानके स्वामी—छद्मस्थयोगियोंके आदिके दो शुक्लध्यान होते हैं, और जो पुरुष क्षीण दोष हैं, रागादिक जिनके दूर हो चुके हैं, केवल ज्ञाननेत्र प्रकट हो गया है उनमें अन्तिम दो शुक्लध्यान होते हैं। यद्यपि भगवानके ध्यानकी कोई आवश्यकता नहीं है तथापि ध्यानका फल है कर्मोंका निर्जरा होना, और यह काम वहां भी देखा जाता है, जो कुछ कर्म शेष रहे हैं उनको निर्जरा होती है अतएव ध्यान शब्दसे कह देते हैं—पर जो न संज्ञी हैं, न असंज्ञी हैं, केवलज्ञानके द्वारा समस्त विश्वको जानते हैं उनका मन भी कहां है ? मनको अब किस तरफ रोकनेका वे काम करें ? एक ओर चित्तके निरोधका नाम ध्यान कहा है। तो ध्यानका लक्षण घटित न होनेपर भी ध्यानका काम देखा जाता है, फल देखा जाता है,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इससे केवली भगवानके भी दो ध्यान कहे गए हैं।

श्रुतज्ञानार्थसम्बन्धाच्छ्रुतालम्बनपूर्वके।
पूर्वे परे जिनेन्द्रस्य निःशेषालम्बनच्युते ॥२१२६॥

शुक्लध्यानके पद—पहिलेके दो शुक्लध्यानोंका सम्बंध श्रुतज्ञानसे है क्योंकि १२वें गुणस्थान तक श्रुतज्ञान रहता है और वहां जो कुछ भी चिन्तन चलता है वह श्रुतज्ञानार्थके सम्बंधसे और श्रुतज्ञानके आलम्बनपूर्वक चलता है, परन्तु जिनेन्द्र देवके, अरहंत भगवानके जो शुक्लध्यान होता है वह समस्त आलम्बन सहित होता है अर्थात् वहां श्रुतज्ञानका आलम्बन नहीं है, जिस केवलज्ञानका अभ्युदय हुआ है उस ही के सम्बंधमें होता है। यह बात संसारके आखिरीकी चल रही है। जिनका संसार समाप्त हो जाने वाला है ऐसे योगीश्वरोंके किस प्रकारके परिणमन होते हैं, उनकी यह चर्चा है। इस शुक्लध्यानका संकेत अन्य दार्शनिक भी करते हैं अपने शब्दोंमें। जिसे वितर्कानुगतसमाधि, विचारानुगतसमाधि, अस्मिदानुगतसमाधि, आनंदानुगत समाधि व असंप्रज्ञातसमाधि कहते हैं। उन्होंने भी ध्यानके पांच पद तके हैं। जहां तर्क वितर्क का निर्णय रखते हुए ध्यान चले, समाधि बने, वह वितर्कानुगतसमाधि है। दूसरी समाधि है विचारानुगतसमाधि। जहां नाना तरहके तर्क वितर्क तो दूर हो गए पर एक विचार बन रहा है दृढ़. उसमें प्राप्त जो समाधि है वह विचारानुगतसमाधि है। तीसरी है अस्मिदानुगतसमाधि। जहां न वितर्क रहा, न विचार रहा, केवल एक अस्मिका अनुभव है—यह मैं हूं, इस प्रकार अहं प्रत्ययमें लगा हुआ जो ध्यान है वह अस्मिदानुगतसमाधि है। इसके बाद चौथे नंबरकी समाधि है—आनंदानुगतसमाधि जहां अस्मिका भी भाव छूट गया, केवल एक आनंदका ही अनुभव रहा, जहां लौकिक ज्ञान ही नहीं रहा ऐसी समाधिको आनंदानुगत समाधि कहते हैं। जहां किसी प्रकारका ज्ञानविकल्प न हो, उसे असम्प्रज्ञातसमाधि कहते हैं। यों उत्तरोत्तर प्रकर्षताके ये भेद हैं, किन्तु इसमें आप यह पायेंगे कि कई समाधि तो धर्मध्यानमें शामिल हैं। जहां तर्क वितर्कका, विचारका निर्णय हो वह तो धर्मध्यानकी दशा है, जहां निर्णयकी बात तो नहीं होती किन्तु एक पदार्थके ज्ञानकी ओर ध्यानकी ही बात होती है, जहां रागकी रंच प्रेरणा नहीं है उसे शुक्लध्यान कहते हैं। तो इसमें प्रथम दो शुक्लध्यान तो श्रुतज्ञानसे सम्बंध रखते हैं और अन्तिम दो शुक्लध्यान केवलज्ञानके साथ होते हैं, उनका श्रुतज्ञानसे सम्बंध नहीं।

सवितर्कं सवीचारं सपृथक्त्वं च कीर्त्तितम्।
शुक्लमाद्यं द्वितीयं तु विपर्यस्तमतोऽपरम् ॥२१२७॥

प्रथम शुक्लध्यानका स्वरूप—प्रथम दो शुक्लध्यानोंमें से पहिले शुक्लध्यानमें तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वितर्क है और वीचार है अर्थात् विषय बदलकर जो ज्ञानमें आ रहा है, ध्यानमें जो तत्त्व चल रहा है उसे बदल-बदलकर और अपने भोगोंसे भी बदलकर जो ज्ञानमें आ रहा है, ध्यानमें जो तत्त्व चल रहा है उसे भी अनेकशः बदल-बदलकर और अपने योगोंको भी बदलकर ध्यान किया जाता है। अभी पुद्गल तत्त्वका ध्यान किया जा रहा था, अब आकाश तत्त्वका ध्यान चल रहा है, यों अनेक परिवर्तन पृथक्त्ववितर्कवीचारमें होते हैं किन्तु एकत्ववितर्कअवीचारमें यह परिवर्तन नहीं है। यह परिवर्तन इस बातको सिद्ध करता है कि अभी रागांश है। रागांश के उपशम क्षयके बाद भी उपशान्त मोहमें प्रथम शुक्लध्यान रहता है वह पूर्व कर्मोका वेग है। यद्यपि उस रागका क्रियात्मक प्रयोग नहीं किया जा रहा है किन्तु पहिले संस्कार वासना से इस ज्ञप्तिमें भी निश्चिन्तता नहीं हो सकी है, अतएव नाना विषय इसमें बदलते रहते हैं। यह पृथक्त्ववितर्कवीचार ८वें गुणस्थानसे ११वें गुणस्थान तक कहा है और १२वें गुणस्थान के प्रारम्भमें भी थोड़े समयमात्र रह सकता है।

सवितर्कमवीचारमेकत्वपदलाञ्छितम् ।
कीर्तितं मुनिभिः शुक्लं द्वितीयमतिनिर्मलम् ॥२१२८॥

एकत्ववितर्क अवीचार शुक्लध्यानका स्वरूप—अब दूसरा शुक्लध्यान वितर्क सहित है, श्रुतज्ञानका तो आलम्बन है, परन्तु उसमें परिवर्तन नहीं है। जिस तत्त्वका ध्यान किया था उस ही तत्त्वके ध्यानमें रहता है तब तक भी यह शुक्लध्यान है अर्थात् केवलज्ञान न उत्पन्न हो जाय। उससे पहिले ध्यानकी बात इस दूसरे शुक्लध्यानमें नहीं होती, इसलिए इसका नाम मुनि जनोंने एकत्ववितर्क अवीचार रखा है। एक ही पदार्थमें श्रुतज्ञानको लगाये रहना उसमें वीचार न बने, परिवर्तन न बने, ऐसा ध्यान अत्यन्त निर्मल होता है। यहाँ वीचारका अर्थ परिवर्तन है, विचार करना नहीं कि एक वीचार सहित हैं और एक वीचार रहित है, किन्तु प्रथम शुक्लध्यानमें तो इतनी कमी है कि वहाँ परिवर्तन चलता रहता है। इस द्वितीय शुक्लध्यानमें अर्थात् एकत्ववितर्क अवीचारमें ऐसी दृढ़ता है कि ज्ञेय पदार्थको बदलनेका वहाँ काम नहीं, किन्तु ध्यान किया और उसके पश्चात् केवलज्ञान हो जाता है।

सूक्ष्मक्रियाप्रतीपाति तृतीयं सार्थनामकम् ।
समुच्छिन्नक्रियं ध्यानं तुर्यमार्यैर्निवेदितम् ॥२१२९॥

प्रभुका तृतीय और चतुर्थ शुक्लध्यान—तीसरे शुक्लध्यानका नाम है सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति। १२वें गुणस्थानमें अर्थात् अरहंत भगवानके पहिले तो बहुतसे योग रहते हैं, वे विहार करते हैं, उनकी दिव्यध्वनि खिरती है, तो बहुत लम्बे चौड़े योग चलते हैं। इसके बाद जैसा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि पुराणोंमें वर्णन आया कि अमुक तीर्थंकरने मुक्तिमें जानेसे एक माह पहिले योगनिरोध किया, उसका अर्थ योगनिरोधसे नहीं है किन्तु मोटे जो योग चलते थे—विहार करना, दिव्यध्वनि खिरना ये नहीं रहते हैं, किन्तु आत्मामें तो प्रदेशोंका कम्पन अब भी है, आखिरी अन्तर्मुहूर्तमें, वादरवचनयोग, वादरमनोयोग, वादरकाययोग, सूक्ष्म वचनयोग, सूक्ष्म मनोयोग का क्रमशः निरोध होता है, फिर केवल सूक्ष्म काययोग रहनेकी दशामें सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यान होता है। जो सूक्ष्मक्रिया योग सहित है किन्तु अप्रतिपाती है, जिसकी अब परमनिःसंग अवस्था होनी है, यह तृतीय शुक्लध्यान है। वह केवली भगवानके अन्तिम क्षणोंमें होता है। भगवान करोड़ों वर्षों तक भी अरहंत अवस्थामें रहते हैं। जितनी आयु शेष रह गयी केवलज्ञान उत्पन्न होनेके बाद वह उतने समय तक अरहंत अवस्थामें रहता है। पर यह तृतीय शुक्लध्यान इस समस्त जीवनमें न होगा, किन्तु सयोगकेवलीके अन्तिम अन्तर्मुहूर्तमें होगा। चौथा शुक्लध्यान है समुच्छिन्नक्रिय, जहाँ समस्त काययोग नष्ट हो गए हैं, कोई क्रिया नहीं रहती है, परमनिष्क्रिय दशा है, आत्मप्रदेशोंमें किसी भी प्रकारका हलन-चलन कम्पन नहीं है, ऐसी स्थितिमें कहलाती है व्युपरतक्रिय अर्थात् समुच्छन्नक्रिय। यह चौथा शुक्लध्यान है।

भगवत्स्वरूपके बाह्य चमत्कारकी भी यथार्थता—समुच्छिन्नक्रियके पश्चात् फिर भगवानके शरीरका वियोग होता है, शरीरके अणु कपूरकी तरह उड़ जाते हैं, देह नहीं पड़ा रहता है। जैसे मुनिराजका देह मरण होनेपर यहीं पड़ा रह जाता है, इस प्रकारसे भगवानका देह पड़ा हुआ न मिलेगा। देखिये—कितनी यथार्थतासे निरूपण है? परमवीतरागता जहाँ प्रकट हुई है, वे प्रभु आहार करें, कहीं तो कितना अटपटा सा लगे, और जब निर्वाण होता है, आयु समाप्त होती है उस समय यह शरीर मृतक पड़ा रहे तो यह भी एक भगवत्ताके कायदे से फिट नहीं बैठता है। प्रभुका शरीर कपूरवत् उड़ जाता है। केवल नख और केश रहते हैं, वे भी क्यों रहते हैं कि जितने नख इन अंगुलियोंसे बाहर निकले हुए हैं उन नखोंमें आत्मप्रदेश नहीं हैं और जो केशोंका ऊपरी भाग है वहाँ भी आत्मप्रदेश नहीं हैं, जहाँ आत्मप्रदेशों का सम्बंध नहीं है वह तो बाहरी जड़ पदार्थोंकी तरह है। उनसे जब आत्माका सम्बंध ही नहीं तो वे कैसे उड़ जायें? तब उन नख और केशोंको इन्द्र आकर उठा ले जाता है और भक्तिपूर्वक उन्हें क्षीरसागरमें सिरबा देता है, ऐसा वर्णन आया है। तो देखिये—यह मनुष्य शरीर ढाईद्वीपके बाहर नहीं जा सकता। लेकिन क्षीर समुद्र तो ५वें द्वीपके बादका समुद्र है, ढाई द्वीपसे कितनी ही दूर है, वहाँ नख और केश चले जा सकते हैं। कारण यह है कि नख और केश शरीरके अंग नहीं हैं, वे जड़ हैं और शरीरके मल हैं। तो समुच्छिन्नक्रिय निष्कम्प अवस्थाके बाद भगवानका निर्वाण होता है। यों अरहंत अवस्थामें ये दो शुक्लध्यान बताये

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गए हैं।

तत्र त्रियोगिनामाद्यं द्वितीयं त्वैकयोगिनाम् ।
तृतीयं तनुयोगानां स्यात्तुरीयमयोगिनाम् ॥२१३०॥

योगकी अपेक्षा शुक्लध्यानका निरूपण---अब योगकी अपेक्षा इन शुक्लध्यानोंका वर्णन करते हैं। योग तीन प्रकारके होते हैं---मनोयोग, वचनयोग और काययोग। मनके कारणसे आत्मप्रदेशोंके हिलनेका नाम है मनोयोग। वचन प्रवृत्तियोंके कारणसे आत्मप्रदेशोंके हिलनेका नाम है वचनयोग और कायकी प्रवृत्तियोंसे आत्मप्रदेशोंके हिलनेका नाम है काय-योग। प्रथम शुक्लध्यान इन तीनों योग वाले मुनियोंके होता है और उस प्रथम शुक्लध्यानके समयमें यह योग बदलता रहता है। अब मनोयोगमें रहते हुए ध्यान चल रहा है तो अब वचनयोग हो गया अथवा काययोग हो गया। इस तरह ये योग बदलते रहते हैं। यों प्रथम शुक्लध्यान त्रियोगी योगियोंके होता है। दूसरा शुक्लध्यान एक योग वालेके होता है। अब वह कोईसा भी योग हो, नियम नहीं है १२वें गुणस्थानमें जबकि एक ही किसी पदार्थके ध्यानमें एकाग्रता हुई है तो पदार्थ भी ध्यानमें एक है और जिस योगमें रहकर ध्यान बना है वही योग रहेगा उस द्वितीय शुक्लध्यान तक। तो दूसरा शुक्लध्यान जो कि परिवर्तन रहित है वह एक योग वाले योगीश्वरके होता है। तीसरा शुक्लध्यान सूक्ष्म काययोग वाले जीवोंके होता है। ऐसी है सयोगकेवलीकी अन्तिम अवस्था, जहाँ केवल सूक्ष्म काययोग रह जाता है उस ही समय सयोगकेवली भगवानमें सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाती ध्यान होता है, और चौथा ध्यान अयोगियोंके होता है। अयोगकेवली जिनके योग नहीं है ऐसे भगवानके सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यान होता है। एक परिणति बतायी गई है कि १४वें गुणस्थानमें कोई क्रिया नहीं है, समस्त योग नष्ट हो गए हैं, इसके प्रसादसे वहाँ कर्मोंकी निर्जरा चलती है अतएव ध्यान कह लिया गया है।

पृथक्त्वेन वितर्कस्य वीचारो यत्र विद्यते ।
सवितर्कं सवीचारं सपृथक्त्वं तदिष्यते ॥२१३१॥

पृथक्त्ववितर्कवीचारका शाब्दिक लक्षण---अब प्रथम शुक्लध्यानका स्वरूप कुछ स्पष्ट शब्दोंमें बतला रहे हैं कि जिस ध्यानमें पृथक्-पृथक् रूपसे वितर्क हो, श्रुतका परिवर्तन हो, जिसमें अलग-अलग श्रुतज्ञान बदलते रहें, जिस एक ध्यानमें नाना ज्ञान चलते रहें, ज्ञानके विषय भी बदलते रहें उस ध्यानको सवितर्कसवीचारसपृथक्त्व ध्यान कहते हैं। विषय अलग अलग, ज्ञान भी अनेक और योग भी अनेक चलते हैं। वे शब्द भी बदले जा रहे हैं, जिन अन्तर्जल्पोंसे अभी ध्यान किया जा रहा था, अब वे अन्तर्जल्प न रहकर दूसरे अन्तर्जल्पोंसे ध्यान चलता है। यों प्रथम शुक्लध्यानको पृथक्त्ववितर्कवीचार बताया गया है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अवीचारो वितर्कस्य तत्रैकत्वेन संस्थितः ।
सवितर्कमवीचारं तदेकत्वं विदुर्बुधाः ॥२१३२॥

एकत्ववितर्क अवीचारका शाब्दिक लक्षण—जिस ध्यानमें वीचार नहीं होता, जो एक रूपसे रहता है, जिस तत्त्वको ध्यानमें लिया है, जिस योगमें रहकर वह ध्यान जमाया है, न तो तत्त्व बदले, न योग बदले, इस प्रकार अर्थके न बदलनेसे, योगके न बदलनेसे तथा जिन अन्तर्जल्पोंसे जो कि अत्यन्त सूक्ष्म हैं, ध्यान किया जा रहा है, उन शब्दोंके भी न बदलनेसे ऐसे एक भावको लिए हुए ध्यान होनेको एकत्ववितर्कअवीचार शुक्लध्यान कहते हैं । इस ध्यानमें ऐसी सामर्थ्य है कि इसके बाद नियमसे केवलज्ञान उत्पन्न होता है । यों शुक्लध्यान के वर्णनमें दो शुक्लध्यानोंका स्वरूप कहा है, अब शेष आगे कहेंगे ।

पृथक्त्वं तत्र नानात्वं वितर्कः श्रुतमुच्यते ।
अर्थव्यञ्जनयोगानां वीचारः संक्रमः स्मृतः ॥२१३३॥

पृथक्त्ववितर्कवीचारका स्वरूप—जब योगी ध्यानी मुनिके विशिष्ट समाधिके बलसे रागप्रक्रिया रुक जाती है तब उस आत्मामें ज्ञान और ध्यानकी कैसी स्थिति चलती है, उस समयका यहाँ वर्णन है । जिस योगीने अपने जीवनका बहुभाग तत्त्वनिर्णयमें बताया है और तत्त्वनिर्णय करके जो उपादेय निज कारणसमयसार अथवा शुद्ध स्वभावकी उपासनामें बिताया है, धर्मध्यानमें बहुभाग समय बितानेपर जब रागप्रकृति रुक जाती है और सप्तम गुणस्थानको पार करके जब श्रेणीमें प्रवेश होता है उस समय उस ध्यानी मुनिके राग व्यवहारके बिना उसके ज्ञानकी किस किस प्रकारसे स्थिति बनती है, उसका वर्णन है । तो सर्वप्रथम ध्यान चल तो रहा है शुक्लध्यान अर्थात् रागद्वेषरहित, किन्तु पूर्वमें ऐसा संस्कार था जिससे ज्ञानविषयोंको बदल-बदलकर जानता रहता था । किसी एक पदार्थपर ध्यानमें चित्त जमा ही नहीं रहा करता था । उस संस्कारसे कहो अथवा कुछ अंशोंमें अभी रागांश है जिसका कि प्रक्रियारूपमें तो उदय नहीं है, काम नहीं है फिर भी कुछ उदय है, इस कारण ज्ञप्ति परिवर्तन होता रहता है । वहाँ नाना पदार्थोंका ज्ञान चलता है, श्रुतज्ञानके आलम्बनसे चलता है, ज्ञानमें पदार्थ बदलता रहता है और जिन शब्दोंसे ध्यान किया जा रहा है यद्यपि वे शब्द प्रकट रूपमें नहीं हैं, भीतर ही अन्तर्जल्पको लिए हुए हैं, तो जिन शब्दोंसे ध्यान जग रहा है वे शब्द भी बदलते जाते हैं और जिन योगोंमें रहकर ध्यान चलता रहा है वह योग भी बदल जाता है । मनका योग, वचनका योग, कायका योग ऐसी अस्थिरता तो है किन्तु राग भाव करे और किसी ओर हर्ष विषादका परिणाम आये, विकल्प आये, यह बात रंच मात्र भी नहीं होती । ऐसा विशिष्ट पृथक्त्ववितर्कवीचार नामक प्रथम शुक्लध्यान है ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अर्थादर्थान्तरापत्तिरर्थसंक्रान्तिरिष्यते ।
ज्ञेया व्यञ्जनसंक्रान्तिर्व्यञ्जनाद्व्यञ्जने स्थितिः ॥२१३४॥
स्यादियं योगसंक्रान्तिर्योगाद्योगान्तरे गतिः ।
विशुद्ध यानसामर्थ्यात्क्षीणमोहस्य योगिनः ॥२१३५॥

संक्रान्तियाँ और वर्तमानपदमें अपना कर्तव्य—जिन योगियोंने अपने ज्ञानध्यानका विषयमात्र परमपावन ज्ञानस्वभाव ही बनाया है उनका आत्मा कितना पवित्र है और उन पवित्र आत्मावोंकी जो उपासनामें रहते हैं वे भक्त जन भी पवित्र हो जाते हैं। ऐसे ये योगीश्वर पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यानमें चलते हैं, एक पदार्थसे बदलकर दूसरे पदार्थका ज्ञान करने लगते हैं। करें ज्ञान। अब ये इतने कुशल हैं इतने अपने ब्रह्मस्वरूपके निवासी हैं कि कितना भी ज्ञान बदलता रहे, पर परिणामोंमें विचलितता नहीं हो सकती। यह बात शुक्लध्यानकी है। हम आप लोगोंको तो यत्न कर करके बाह्य पदार्थोंसे हट-हटकर एक विशुद्ध ध्रुव निज ज्ञानस्वभावकी उपासनाका यत्न करना चाहिए, क्योंकि हम आपकी बुद्धि व्यभिचारिणी है यों कहो, अर्थात् यह बुद्धि कभी कहीं लगती, कभी कहीं। किसी एक पदार्थमें स्थिरतासे यह बुद्धि नहीं ठहरती। तो इस बुद्धिको संयत करनेका उपदेश दिया गया है कि तुम सर्व ओरसे बुद्धि हटाकर एक निजतत्त्वमें ही लगावो, लेकिन जो निजतत्त्वकी उपासनासे ब्रह्मस्वरूपका स्वसम्वेदन चिन्तन करता है ऐसे पुरुषके ज्ञानमें कुछ भी पदार्थ आयें, वे सब उनकी शुक्लताको ही रखते हैं। तो वहाँ एक पदार्थसे दूसरे पदार्थका बदलना होता है यह तो है अर्थसंक्रान्ति। किन्हीं शब्दोंसे ध्यान कर रहे थे, अब बदलकर किन्हीं शब्दोंसे ध्यान करने लगे हैं, यह है व्यञ्जनसंक्रान्ति, और मनोयोगी बनकर ध्यान कर रहे थे—यह वचनयोगी बन गया अथवा काययोगी बन गया, इस प्रकार योगोंका परिवर्तन होता है, यह है योगसंक्रान्ति। इस विशुद्ध ध्यानकी सामर्थ्यसे जब मोह क्षीण हो जाता है तब उस योगकी यह अदल-बदल भी समाप्त होती है और उसके बाद थोड़े ही समयमें केवलज्ञानका उदय हो जाता है।

अन्तर्जल्पकी गहराई—देखिये—हम कितना ही मौन रख लें तिसपर भी भीतरमें अनेक प्रकारकी गुत्थियाँ चलती रहती हैं, और वे जो कुछ भी विचार चलते हैं वे पूरे वाक्य बोल बोलकर चल रहे हैं, फिर थोड़ासा एक मनपर काबू होता है, अपने अंतर्वचनोंपर संयम होता है तो इतना बड़ा सेन्टेन्स तो चाहे न बोला जाय एक कल्पनामें जैसे कि किसी चीजके प्रोग्राम चलते हैं, फिर भी कुछ भी ज्ञान होता है तो उस ज्ञानके साथ वे शब्द बीधे बीधे फिरते हैं। जैसे आँखें खोलकर देखा कि यह भींत है तो भीतरमें यह भींत है—इन शब्दोंका उदय हो जाता है। तो इस प्रकार उस श्रेणीकी स्थितिमें भी, जिसकी हम अपने अंतर्जल्पोंसे तुलना तो

Version

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं दे सकते, इतना तो बहुत गड़बड़ अन्तर्जल्प है, एक विराटरूपको लिए हुए है, किन्तु उनका वह सूक्ष्म ज्ञान, सूक्ष्म ध्यान वह भी कुछ न कुछ अंतर्जल्प अथवा सूक्ष्म कुछ भी वचनों की परम्पराको लिए हुए चलता है। कुछ समय तक उस श्रेणीमें रहने वाले योगीश्वरोंका ध्यान भी वचनोंको बदल-बदलकर चलता रहता है। किन्तु वहां ध्यानकी संतति रहा करती है, अतएव वह ध्यान एक ध्यान है, क्योंकि एक ध्यानमें अनेक ज्ञान चलते रहते हैं।

अर्थादर्थं वचः शब्दं योगाद्योगं समाश्रयेत्।
पर्यायादपि पर्यायं द्रव्याणोश्चिन्तयेदणुम् ॥२१३६॥

संक्रान्तिमें अबुद्धिपूर्वक समाश्रयण—एक पदार्थसे दूसरे पदार्थपर ज्ञान पहुंचे। एक शब्दसे दूसरे शब्दमें ध्यान जमाना, एक योगसे दूसरे योगमें रहकर ध्यान बनाना, एक पर्याय से हटकर दूसरी पर्यायका ध्यान बनाना और किसी भी द्रव्यसे हटकर किसी भी अणुका ध्यान जमाना, इस प्रकार द्रव्यसे द्रव्यान्तर, पर्यायसे पर्यायान्तर, अर्थसे अर्थान्तर, वचनोंसे वचनान्तर, योगसे योगान्तर, इतने परिवर्तन उनके सहज होते रहते हैं। वे कुछ थक जानेके कारण उसे बदलते हों, यह बात नहीं है। जैसे यहां हम आप किसी चीजका ज्ञान करने लगें तो थक जाते हैं, कोई कठिन तत्त्वकी बात सुनने लगे दो एक जनोंसे तो वे थक करके कोई एक ऐसी बात पूछ देंगे कि वह विषय ही बदल जाय, और हमारे मनकी थकान मिट जाय, ऐसी थकान शुक्लध्यानीके नहीं होती है, जिस थकानके कारण वह तत्त्वचिन्तनमें पदार्थको बदले किन्तु वहां एक ज्ञप्तिकी अपूर्ण अवस्था होनेके कारण यह परिवर्तन चलता है।

अर्थादिषु यथा ध्यानी संक्रामत्यविलम्बितम्।
पुनर्व्यावर्त्तते तेन प्रकारेण स हि स्वयम् ॥२१३७॥

योगीका प्रथम शुक्लध्यानमें ज्ञेयादिव्यावर्तन—जो ध्यानी अर्थव्यञ्जन आदि योगोंमें जैसे शीघ्रतासे संक्रमण करता है वह ध्यानी अपने आप पुनः उसी प्रकारसे लौटता है। जैसे बहुत हल्के गर्म जलमें, जब कि उस जलके ऊपर कुछ बिंदु नहीं आ पाती, जब जल गर्म होता है, तो उसके ऊपर कुछ चनेसे, बताशे से झलक उठते हैं ना, तो जब जल अति साधारण गर्म हो कि उस जलके ऊपर कोई बिन्दु नहीं उठता, कोई बहान नहीं होता, फिर भी आप देखो—उस जलके अन्दर ही अन्दर कुछ बिन्दुवें चलने लगती हैं, उसके बाद फिर अधिक गर्म होनेपर उसका रूप कुछ बड़ा होता है और ऊपर कुछ सरसोंके दाने बराबर बिन्दुवें उत्पन्न होने लगती हैं। तो जैसे गुनगुने जलमें भीतर ही भीतर बिन्दुवोंका संचरण होता है, ऊपर भी चलता है, लौट भी आता है, बहुत गर्म जलमें तो जो बिन्दु ऊपर जाते हैं वे लौटते नहीं हैं, वे ऊपर मुंह बा करके अपना अस्तित्त्व खो देते है, किन्तु उस कुनकुने जलमें अन्दरकी बिन्दुवें कुछ उठती भी हैं, कुछ उठकर लौट भी आती हैं, उनका संचरण यथा तथा भी होता है, यों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ही समझ लीजिए कि वहां संताप नहीं है आगका, अतएव कुछ एक मंद आगमें जहां संज्वलन कषाय अत्यन्त मंद है, सप्तम गुणस्थानसे भी अधिक मंद है ऐसी स्थितिमें उनके अन्दर ही रागका मुख न बाकर स्वयं सहज अर्थ योग वखन आदिकके संचरण चलते रहते हैं और वे स्वयं होते हैं। स्वयं बदलना, स्वयं लौटना, यह सब उनके ज्ञानमें चलता है। यह एक उस ऊँची समाधिकी बात चल रही है जबकि योगी अब अपना व्यवहार और संसारके लागलपेट से निवृत्त होने वाला है और कुछ ही कालमें केवलज्ञान प्राप्त करने वाला है, ऐसे ही वहां पृथक्त्ववितर्कवीचार नामक शुक्लध्यानमें पदार्थोंके विज्ञानका परिवर्तन चलता है।

त्रियोगी पूर्वविद्यः स्यादिदं ध्यायत्यसौ मुनिः।
सवितर्कं सवीचारं सपृथक्त्वमतो मतम् ॥२१३८॥

सहजतत्त्वके दर्शनमें सहजभावकी सहजसिद्धि---जिसके तीनों योग होते हैं, जो पूर्व का जाननहार है ऐसे ज्ञानीके पहिले शुक्लध्यान होता है, तभीसे योग बदलेंगे। अगर एक एकत्वमें ही शुक्लध्यान हो तो उसके बदलनेका कोई कारण नहीं है, फिर तो द्वितीय शुक्लध्यानकी स्थिति होगी, जिसके बाद नियमसे केवलज्ञान होगा। आज कोई लोग सोचते होंगे कि विषय बड़ा कठिन है, क्या इतना कठिन विषय समझनेका परिश्रम हम न करेंगे तो मुक्ति का रास्ता ही न मिलेगा ? तो भाई यह सब कुछ जाननेमें तो कठिन चाहे लगे पर किए जाने में कठिन नहीं है। जो भी योगी हो, चाहे वह अष्टप्रवचनमातृकाका ज्ञानी है, एक अपने निज परमात्मतत्त्वका ज्ञान होना तो अनिवार्य है। उसके बिना तो आगे गति चल नहीं सकती। व्याकरण, छंद, ज्योतिष आदि अनेक पर्यायोंका ज्ञान, अनेक शास्त्रोंका ज्ञान ये चाहे न भी हो सकें, किन्तु प्रयोजनभूत जो एक निज शुद्ध आत्मतत्त्व है, सहज स्वभाव है, उसका परिचय होना तो अनिवार्य है, उसकी उपासनाके प्रतापसे ये सब बातें होती हैं, जिसकी समझ बिना कठिन लग रहा है, और जिसका आलम्बन करना भी कुछ कठिनसा मालूम होता है, ये सारी की सारी कठिन बातें उनके सहज हो जातीं हैं जो एक अपने विशुद्ध तत्त्वका निर्णय करके बस उसकी ही शरण गह लेते हैं।

आत्मनिधिकी श्रद्धामें निराकुलता---श्रद्धाकी बात है। जिसने अपने जीवनका कुछ लक्ष्य निर्णीत नहीं किया ऐसा पुरुष आकुलतावोंमें अपना जीवन व्यतीत करता है, और जिसका एक मात्र यही निर्णय है कि हम मनुष्य हुए हैं तो केवल इसलिए अपने सहजस्वरूप को जानें और उसके निकट अपना उपयोग बनाये रहें, क्योंकि जगतमें कहीं मेरा कोई शरण नहीं है, मैं किससे स्नेह करूँ, यहाँ कौन मेरा रक्षक बन सकेगा ? वस्तुस्वरूप ही ऐसा है। तब फिर जो कुछ भी करना है वह अपने आपको ही करना पड़ेगा ऐसा समझकर जो अपना एक इसी प्रकारका लक्ष्य बनाता है उस व्यक्तिका जीवन आकुलतारहित व्यतीत होता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बहुत बड़ी जिम्मेदारी है यह अपने आपपर। थोड़ा मानो सम्पदा काफी मिल गई, खाने पीने पहिनने ओढ़नेके अच्छे साधन मिल गए, घरके लोग भी बड़े प्रेमी मिल गए तो इतने मात्रमें सन्तुष्ट होकर जीवन गुजारनेमें कोई बुद्धिमानी नहीं है। बुद्धिमानी तो इसमें है कि अन्य बातों की परवाह न करें। कुछ भी आता है तो आये, जाता है तो जाये, उसमें क्या हर्ष विषाद करना? दशरथ महाराजके पुत्र श्री रामचन्द्र जी समस्त पब्लिकके आँखोंके तारे थे, जिन्हें राजगद्दी मिलनी थी, बड़े वैभव और ऐश्वर्यमें जिनका जीवन था, वे क्षणमात्रमें कहाँसे कहाँ गए, जंगलमें। उनके साथ क्या था? कुछ भी स्थितियाँ आयें—महत्ता तो इस बातमें है कि बाह्यमें कुछ भी होता हो उसकी परवाह न करें और अपने आपमें बसा हुआ जो विशुद्ध परमात्मतत्त्व है उसकी उपासना करें।

आत्मतत्त्वाश्रयके वैभवकी महत्ता—यह आत्मतत्त्व जब अपने निकट है तो परवाह करनेकी क्या जरूरत? जब अपना आत्मतत्त्व अपनी दृष्टिमें है, तो फिर बाहरका कोई भी उपद्रव क्या बिगाड़ कर सकेगा? उपद्रव तो मानते हैं ये संसारी अज्ञानी प्राणी। कुछ उदयवश सम्पदा ऐश्वर्य प्राप्त हो गयी तो उतनीसी ही बातपर ये अपने आत्महितके मार्गको खो देते हैं तो इसमें कौनसी बुद्धिमानी है? मिलता है तो ठीक है, चक्रवर्तीके भी तो पुण्यका उदय है, बड़ी बड़ी विभूतियां उनके समक्ष आती हैं। पर ज्ञानी चक्रवर्ती उन विभूतियोंसे भी उदास रहता है, ये भोग विषयके साधन तो दुःखके ही कारण हैं, इनमें क्या लुभाना? ऐसा वह ज्ञानी चक्रवर्ती समझता है। तो बहुत बड़ी जिम्मेदारी है अपने आपपर। अभीसे ही जिसकी जो आयु हो, इसी समयसे इस परमात्मतत्त्वके दर्शन करनेकी धुनि बनायें। उसकी ही उपासनासे ज्ञानी और विरक्त रहकर अपना जीवन सफल करें। अनेक जन्म पाये, बड़ी-बड़ी विभूतियाँ प्राप्त की होंगी, पर आज उनका क्या रहा? उन सभी समागमोंसे आज इस जीवको मिल क्या रहा है? यों ही समझिये कि इस वर्तमानमें भी हमें मिलना ही क्या है?

उदारताकी प्रकृतिसे आत्मशृङ्गार—यह वैभव ठीक है, रहो, कमाना भी जरूरी है गृहस्थपदमें, ठीक है कमावो, पर समय आये तो उससे विरक्त होनेमें देर न लगे। ऐसा ज्ञान तो बना रहे। एक जौहरीकी लड़की किसी बड़े घी बेचने वाले सेठके घर ब्याही गई। वह घी बेचने वाला भी धनी था और जौहरी भी धनी था। कुछ दिनोंके बाद बहूने एक दिन घी के कारखानेकी ओर निगाह डाली तो देखा कि सेठ जी एक मक्खी उस घी की कड़ाहीके ऊपर पकड़े हुए उसमें एक आध बूंद लगा हुआ घी गिरा रहे हैं, तो इस दृश्यको देखकर उस बहूका होश उड़ गया, हाय मैं कैसे कंजूसके घर आयी? कहते भी हैं लोग मक्खीचूस। उसका और अर्थ ही क्या है? सो उस बहूका सिर दर्द करने लगा। बीमार पड़ गई। सेठके पास खबर पहुंची। आये सेठ जी और पूछा कि क्या तकलीफ है? बहूने अपनी सिरदर्दकी तक-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लीफ बतायी। आखिर उस सेठने कई डाक्टरोंसे दवा करवायी, बड़ा खर्च किया, पर उसका सिरदर्द न मिटा। मिटे कैसे ? वह तो दूसरे ही प्रकारका दर्द था। आखिर सेठ पूछता है—कहो बहू—तुम्हारे यह दर्द कभी और भी हुआ या नहीं ? तो बहूने बताया कि हाँ कभी-कभी हो जाता था। तो वह मिटता कैसे था ?····मोतियोंको पीसकर उसका मस्तकपर लेप करनेसे। तो सेठने झट दस हजार रुपये देकर आध पाव मोतियाँ मंगायीं और ज्यों ही उनको खुद ही पीसने चला तो बहू बोली—बस पिताजी आप इन्हें पीसें नहीं, मेरा सिरदर्द ठीक हो गया।····अरे कैसे ठीक हो गया, जब इनका लेप लगावोगी तभी तो ठीक होगा।····नहीं, ठीक हो गया।···कैसे ठीक हो गया ?····पिताजी वह दर्द उस मक्खीचूसकी घटनाका था कि एक आध बूंद घी लगा होगा उस मक्खीमें और आप उसे पकड़े हुए उस घी को टपका रहे थे। उस घटनाको देखकर मैंने सोचा—ओह मैं कैसे कंजूसके घर ब्याही गई, उसका दर्द था, पर जब देखा कि आप मौका पड़नेपर हजारों रुपये खर्च करनेको तैयार हैं तो हमारा वह दर्द मिट गया। तो वह सेठ कहता है—अरी बहू तू अभी जानती नहीं है—हमारा यह सिद्धांत है कि कमायें तो इस तरह कमायें और खर्च करें तो इस तरह खर्च करे। तो बहूने कहा—हाँ पिताजी अब समझ गई। तो हम उस तरहसे मक्खीचूसी करके कमानेकी बात नहीं कह रहे हैं। ठीक है कमाते हो तो कमाइये, गृहस्थपदमें रहकर कमाना ही चाहिए, पर इतनी बात तो अवश्य होनी चाहिए कि मौका पड़नेपर उसे खूब खर्च करनेकी भावना रखें। उस कमानेके साथ ही यह तत्त्वज्ञान बनाये रहें कि ये सब चीजें हमसे अत्यन्त भिन्न हैं, कुछ आवश्यकताएँ हैं जिनके कारण हमें कमानेकी प्रवृत्ति करनी पड़ती है, ये व्यवहारके सहायक भी हैं, पर वास्तवमें ये सब मेरे आत्माके हितमें सहायक नहीं हैं। मेरा हित करने वाला तो मेरा आत्म-दर्शन है, अन्य किसी भी पदार्थसे मेरा हित नहीं है।

अस्याचिन्त्यप्रभावस्य सामर्थ्यात्स प्रशान्तधीः।
मोहमुन्मूलयत्येव शमयत्यथवा क्षणे ॥२१३६॥

पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यानसे सकल मोहविजय—शुक्लध्यानोंमें प्रथम शुक्लध्यान का ऐसा अचिन्त्य प्रभाव है कि उसके ध्यानकी सामर्थ्यसे चित्त शान्त हो जाता है, और ऐसे मुनि क्षणभरमें ही मोहनीय कर्मोंका मूलसे नाश कर देते हैं अथवा उनका उपशम कर देते हैं। जो उपशम श्रेणीमें हैं वे योगीश्वर इस पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यानके प्रसादसे चारित्र मोहका उपशम करते हैं और जो क्षपक श्रेणीपर हैं वे चारित्रमोहका क्षय करते हैं। कर्मोंमें प्रबल कर्म मोहनीय कर्म है। मोहनीय कर्मके ध्वस्त होते ही सर्व कर्म बिदा होने लगते हैं। सब कर्मोंकी जड़ कहो, सब कर्मोंका आधार मोहनीय कर्म है। मोह राजा है और कितनी-कितनी इच्छायें रागद्वेष ये सब उसकी फौजें हैं। जहाँ मोह राजा ही जीत लिया जाता है वहाँ फिर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ये रागद्वेष आदिककी फौजें काम नहीं देतीं।

इदमत्र तु तात्पर्यं श्रुतस्कंधमहार्णवात्।
अर्थमेकं समादाय ध्यायन्नर्थान्तरं व्रजेत् ॥२१४०॥

पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यानमें अर्थान्तरव्रजन—इस शुक्लध्यानके लक्षणमें तात्पर्य यह है कि इस ध्यानमें अर्थादिक पलटते हैं। महान श्रुतस्कंध अर्थात् द्वादशांग शास्त्ररूप महासमुद्र लेकर किसी पदार्थका अभी कोई ध्यान कर रहा था, अब थोड़े ही क्षण बाद दूसरे अर्थ का ध्यान करने लगता है। वीतराग ध्यानमें जो पदार्थोंके जाननेका परिवर्तन चला करता है वह केवलज्ञान अथवा समूल, चारित्र न होनेसे होता है। समूलचारित्र नष्ट होनेसे पहिले ऐसी ही आसक्ति रहती है कि ज्ञानका परिवर्तन चला करता है। इस ज्ञप्ति परिवर्तनकी दशामें यह पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यान होता है।

शब्दाच्छब्दान्तरं यायाद्योगं योगान्तरादपि।
सवीचारमिदं तस्मात्सवितर्कं च लक्ष्यते ॥२१४१॥

प्रथम शुक्लध्यानमें सवीचारता—इस ध्यानमें एक शब्दसे दूसरे शब्दका आलम्बन होता है, एक योगसे दूसरे योगका आलम्बन होता है, इसी कारण यह ध्यान सवीचारसवितर्क कहलाता है। ध्यानकी एक ऐसी स्थिति कि जहाँ रागकी प्रक्रिया नहीं चल रही है, किन्तु एक विशुद्ध परिणामसे ध्यान चल रहे हैं, ज्ञेय पदार्थ ज्ञानमें आ रहे हैं, ऐसी स्थितिमें भी वे ज्ञेय पदार्थ बदलते रहते हैं, ऐसी वीतराग दशामें अर्थात् जहाँ राग तो सत्तामें है, पर जिनका व्यवहार नहीं, ऐसी स्थितिमें इस ज्ञानका परिवर्तन स्वतः चलता रहता है। यह एक निर्विकल्प समाधिके सम्बंधकी बात है। जहाँ राग द्वेषका विकल्प तो कुछ नहीं, फिर भी वह ज्ञान बदलता रहता है। तो वह ज्ञान श्रुतज्ञानका आलम्बन लेता है। शास्त्रोंमें जो तत्त्व निरूपण किया है उसमेंसे किसी एक पदार्थके ज्ञानका आलम्बन लेता है और कुछ ही समय बाद फिर दूसरे पदार्थ जाननेमें आने लगते हैं, यों चूंकि इसमें परिवर्तन है, अतएव यह सवीचार और सवितर्क है।

श्रुतस्कन्धमहासिन्धुमवगाह्य महामुनिः।
ध्यायेत्पृथक्त्ववितर्कवीचारं ध्यानमग्रिमम् ॥२१४२॥

महामुनिका प्रथम शुक्लध्यान—महामुनि द्वादशांग शास्त्ररूप महासमुद्रको अवगाहन करके इस पृथक्त्ववितर्कवीचार नामक पहिले शुक्लध्यानका ध्यान करता है, जिसमें बहुत शास्त्रोंका रहस्य बसा है, बहुश्रुतका विज्ञान है तो उन तत्त्वोंमें किसी भी तत्त्वका आश्रय लेकर ध्यान किया, फिर दूसरे तत्त्वका ध्यान किया, इस प्रकार पृथक्त्ववितर्कवीचार ध्यानके अधिकारी उन्हें बताया है जो योगीश्वर शास्त्रोंमें पारंगत हैं। इसमें जो भी कमी है वह सत्तामें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

राग पड़ा है उसकी वजहसे कमी है, और चूंकि मोहका उपशम कर दिया अथवा क्षय कर दिया दर्शनमोहका, इस कारण वहाँ किसी प्रकारका कोई खोटा विकल्प नहीं उत्पन्न होता है। ऐसी स्थितिमें भी यह प्रथम शुक्लध्यान होता है वहां पूर्वप्रयोगसे वीचार होता है। कुछ ही समय बाद मोह नष्ट होगा और उत्कृष्ट शुक्लध्यानकी दशा प्रकट होगी। जैसे किसी राजा के मर जानेपर सेना निरुत्साह हो जाती है और मैदानको छोड़ देती है इसी प्रकार मोह राजा के नष्ट होनेपर यह रागादिककी सेना अपना मैदान छोड़ देती है और शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। यों पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यानमें उस मोहके उपशम और क्षयकी ही प्रक्रिया चलती है।

एवं शान्तकषायस्या कर्मकक्षा शुशुक्षरिणः।
एकत्वध्यानयोग्यः स्यात्पृथक्त्वेन जिताशयः ॥२१४३॥

कषायविश्लेषसे एकत्ववितर्कावीचारकी योग्यता—यहां पहिले शुक्लध्यानकी चर्चा चल रही थी कि नाना प्रकारके तत्त्वोंके ज्ञान करते रहनेसे जो आत्मामें एक बल प्रकट हुआ है अब उसके कारण इसकी कषायें शान्त होती हैं, कर्मोंके समूह दूर होते हैं और एकत्ववितर्क अवीचार शुक्लध्यानके योग्य हो जाता है। देखिये जब सारे रागद्वेष समाप्त होते हैं तब परमार्थ शुक्लध्यान होता है। यह शुक्लध्यान १२वें गुणस्थानमें है और १०वें गुणस्थानके अंत में समस्त कषायें नष्ट हो जाती हैं। तो इस पृथक्त्ववितर्कवीचार ध्यानके प्रतापसे चारित्र मोहकी २१ प्रकृतियोंका विनाश होता है। इनके विनाश होनेपर ये योगीश्वर एकत्ववितर्क-अवीचार शुक्लध्यानके पात्र होते हैं।

पृथक्त्वे तु यदा ध्यानी भवत्यमलमानसः।
तदैकत्वस्य योग्यः स्यादाविर्भूतात्मविक्रमः ॥२१४४॥

द्वितीय शुक्लध्यानीका आत्मविक्रम—जिस समय ध्यानीका चित्त इस पृथक्त्ववितर्क-वीचार शुक्लध्यानके द्वारा कषायोंसे रहित होता है तब उस योगीमें अद्भुत पराक्रम प्रकट होता है और वह द्वितीय शुक्लध्यानके योग्य होता है। अभी तो ज्ञानमें बहुत अदल-बदल चल रहे हैं किन्तु एकत्ववितर्कअवीचारध्यानमें ये सब अदल-बदल समाप्त होते हैं। जिस पदार्थसे जाना है, जो ज्ञेय है उस ज्ञेयसे बदलेगा नहीं और वह ज्ञान उत्पन्न हो जायगा, ऐसा यह शुक्लध्यानका दूसरा चरण है।

ज्ञेयं प्रक्षीणमोहस्य पूर्वज्ञस्यामितद्युतेः।
सवितर्कमिदं ध्यानमेकत्वमतिनिश्चलम् ॥२१४५॥

एकत्ववितर्क अवीचार शुक्लध्यानका प्रताप—जिसका मोहकर्म सब दूर हो गया है, नष्ट हो गया है, क्षयको प्राप्त हो गया है उसी पुरुषके दूसरा शुक्लध्यान होता है। यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शुक्लध्यान क्षपक श्रेणीसे चढ़ने वाले जीव ही पा सकते हैं। १२वें गुणस्थानमें जिसके प्रथम समयमें समस्त कषायें नहीं रहीं वहाँ यह ध्यान उत्पन्न होता है। यह भी पूर्व द्वादशांग जानने वालेके होता है और इसकी ज्ञप्ति अपरिवर्तित है। इस ध्यानके प्रतापसे अब केवलज्ञानका असीम प्रकाश उत्पन्न होगा, जिसमें पदार्थके जाननेका परिवर्तन नहीं है। यह ध्यान छद्मस्थ जीवोंमें सर्वोत्कृष्ट योगीश्वरोंके ही होता है। इसके बाद कोई उत्कृष्ट पद नहीं है। फिर तो इसके बाद भगवानका पद है। जो योगी द्वितीय शुध्लध्यानको ध्या रहे हैं उस पदके बाद यदि अन्य कोई पद है तो अरहंतका पद है। इस एकत्ववितर्कअवीचार ध्यानके प्रतापसे केवलज्ञान प्रकट होता है।

अपृथक्त्वमवीचारं सवितर्कं च योगिनः।
एकत्वमेकयोगस्य जायतेऽत्यन्तनिर्मलम् ॥२१४६॥

द्वितीय शुक्लध्यानमें सर्वतः एकत्व—एक योग वाले मुनिके यह दूसरा शुक्लध्यान होता है, अर्थात् द्वितीय शुक्लध्यानके अधिकारीके योग परिवर्तन भी नहीं होता, जिस योगसे ध्यान कर रहे थे—मनोयोग लगाकर वचनयोगमें अथवा काययोगमें, उसी योगमें १२वां गुणस्थान पूर्ण व्यतीत होता है और जिस शब्दसे ध्यान कर रहे उसी शब्दसे ही ध्यान चलता है। जिस ज्ञेयको जाना है उस ही ज्ञेयको जानते रहते है इस प्रकारसे यह सब ओरसे एकत्व भावको लिए हुए हैं। सो यह द्वितीय शुक्लध्यान अत्यन्त निर्मल होता है।

द्रव्यं चैकमणुं चैकं पर्यायं चैकमश्रमः।
चिन्तयत्येकयोगेन यत्रैकत्वं तदुच्यते ॥२१४७॥

द्वितीय शुक्लध्यानके एकत्वका विवरण—इस ध्यानमें श्रम तो कोई करना नहीं पड़ता। जैसे किसी चीजको समझनेके लिए लौकिक जनोंको दिमाग लगाना होता है, किसी चीजमें ध्यान जमानेके लिए कुछ अन्तरमें परिवर्तन करना होता है, वैसे कुछ इस ध्यानमें कोई श्रम नहीं करना होता। स्वतः ही इतनी सामर्थ्य है कि बिना श्रम किए, बिना उपयोग लगाये स्वयं ही किसी एक द्रव्यका ध्यान चल रहा है, एक परमाणुका ध्यान चल रहा है। एक पर्यायको जान रहा है बस उसीको ही जानता रहता है और जिस योगसे वह जान रहा है उस ही योगसे जानता रहता है। इस कारण इस शुक्लध्यानमें ऐसा एकत्व बसा हुआ है, श्रुतज्ञानका तो आलम्बन है, इसमें एकत्वका वितर्क है और एक ही योगसे एक पदार्थको जान रहे हैं अतएव एकत्व है और उसमें परिवर्तन नहीं है इस कारण अवीचार है, ऐसी यहाँ द्वितीय शुक्लध्यानी योगियोंकी प्रकृति होती है। अब इसके बाद एकत्ववितर्क अवीचार शुक्लध्यानके प्रतापसे योगियोंके कैसा वैभव प्रकट होता है, इसका वर्णन चलेगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

एकं द्रव्यमथाणुं वा पर्यायं चिन्तयेद्यदि ।
योगैकेन यदक्षीणं तदेकत्वमुदीरितम् ॥२१४८॥
अस्मिन् सुनिर्मलध्यानहुताशे प्रविजृम्भिते ।
विलीयन्ते क्षणादेव घातिकर्माणि योगिनः ॥२१४९॥

एकत्ववितर्क अवीचार शुक्लध्यानके प्रतापसे शेष घातिया कर्मोंका विनाश—इस एकत्ववितर्क अवीचार नामक द्वितीय शुक्लध्यानके प्रतापसे इसमें अपनी निर्मल ध्यानरूपी अग्निके बढ़ जानेपर योगीके क्षणमात्रमें घातिया कर्म नष्ट हो जाते हैं। १२वें गुणस्थानमें मोहनीय कर्म नहीं है। १०वें के अन्तमें समस्त मोहनीय कर्मोंका नाश होता है, पर तीन घातिया कर्म अभी शेष हैं—ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय। ज्ञानावरणके कारण अनन्त ज्ञान प्रकट नहीं होता। दर्शनावरणके निमित्तसे अनंत दर्शन नहीं होता और अन्तराय कर्मके निमित्तसे आत्माकी अनंत शक्तियां प्रकट नहीं होतीं। ये तीन घातिया कर्म अब इस द्वितीयशुक्लध्यानके प्रतापसे क्षणभरमें नष्ट हो जाते हैं और घातिया कर्मोंके नाश होते ही अरहंत अवस्था प्रकट होती है।

आधारके नष्ट होते ही आधेयका लोप—बच्चे लोग एक कहानी बोला करते हैं—एक जंगलमें स्याल और स्यालिनी थे। स्यालिनीके गर्भ था, स्यालिनीने पूछा कि बच्चे कहाँ पैदा करें ? तो एक शेरका घर (चूल) था, उस समय वह खाली था। स्यालने कहा कि यहाँ पैदा करो। उसीमें बच्चे पैदा हुए। अब दूरसे देखा कि एक शेर आ रहा है—तो स्यालिनी बोली कि अब तो खैर नहीं है, स्याल बोला—घबड़ावो मत, हम इसका इलाज करेंगे। देखो—जब शेर आये तो तुम बच्चोंको रुला देना। हम पूछेंगे कि बच्चे क्यों रो रहे हैं ? तो तुम यों जवाब दे देना। आखिर जब शेर निकट आ गया तो वह स्याल ऊपरकी चोटीपर चढ़ गया। शेर आया बच्चे रोने लगे। स्यालने पूछा कि बच्चे क्यों रोते हैं ? तो स्यालिनी बोली—ये बच्चे शेरका मांस खानेको मांगते हैं। तो इस बातको सुनकर वह शेर डरकर भाग गया। सोचा कि यहाँ तो हमारा भी मांस खाने वाला कोई है। इसी तरहसे दसों शेर आये और डरकर भाग गए। एक दिन बहुतसे शेरोंने सलाह किया कि चलो उस जगह चलकर देखो तो सही कि हम सब शेरोंका मांस खाने वाला कौन है ? गए वहाँ। ऊपर बैठे हुए स्यालको देखकर बोले—बस इस स्यालकी सारी करतूत है, चलो इसको पकड़कर मार दें। परन्तु वहाँ चढ़ें कैसे ? सलाह किया कि एक पर एक शेर चढ़ जाय और ऊपर वाला शेर उसे पकड़कर मार दे। तो सबसे नीचे कौन शेर खड़ा हो ? सलाह हुई कि यह लंगड़ा शेर नीचे खड़ा हो क्योंकि यह ऊपर चढ़ नहीं सकता। नीचे लंगड़ा शेर खड़ा हुआ, उसके ऊपर एक पर एक करके सभी खड़े हुए। स्यालिनीने बच्चोंको रुला दिया, स्यालने पूछा कि ये

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बच्चे क्यों रोते हैं ? स्यालिनी बोली—ये बच्चे लंगड़े शेरका मांस खानेको मांगते हैं । वह लंगड़ा शेर डरकर भागा, और एक पर एक भद्भद् करके गिरकर भागे । तो ऐसे ही सर्व विकारोंका मूल दर्शन मोहके नष्ट होते ही चारित्र मोह तो सब यों ही नष्ट हो जाते हैं, इस पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यानके प्रतापसे चारित्रघातक कर्म शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, और फिर चारित्रमोहके नष्ट होनेके बाद एकत्ववितर्कअवीचार शुक्लध्यानके प्रतापसे शीघ्र शेष तीन घातिया कर्म भी नष्ट हो जाते हैं ।

दृग्बोधरोधकद्वन्द्वं मोहविघ्नस्य वा परम् ।
स क्षिणोति क्षणादेव शुक्लधूमध्वजार्चिषाः ॥२१५०॥

एकत्ववितर्क अवीचार शुक्लध्यानके द्वारा शेष घातित्रयका विनाश—एकत्ववितर्क-अवीचार नामक शुक्लध्यानकी अग्निकी ज्वालासे दर्शनावरण और ज्ञानावरण एवं अंतराय कर्मको क्षणमात्रमें वह नष्ट कर देता है और मोहनीय कर्मका तो १०वें गुणस्थानमें पृथक्त्व-वितर्कवीचार शुक्लध्यानके बलसे ही विनाश कर देते हैं । यों १२वें गुणस्थानके अन्तमें चार घातिया कर्मोंका अभाव होता है । जीवके साथ ८ प्रकारके कर्म लगे हैं जिनमें चार घातिया कर्म हैं और चार अघातिया । घातिया उन्हें कहते हैं जो आत्माके गुणोंको घातें । और अघातिया उन्हें कहते हैं जो घातियाको किसी प्रकार सहयोग पहुंचायें, किन्तु गुणको साक्षात् नहीं घात सके । इन आठ कर्मोंमें से ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अन्तराय कर्मका तो निषेधरूपसे क्षय हो चुका और शेष नामकर्मकी प्रकृतियोंका भी क्षय हो गया । यों ६३ प्रकृतियोंका नाश होते ही ये अरहंत भगवान हो जाते हैं । जब १३वां गुणस्थान सयोगकेवली हो जाता है वहाँ क्या स्थिति होती है ? अब उसके सम्बंधमें वर्णन चलेगा ।

आत्मलाभमथासाद्य शुद्धिं चात्यन्तिकीं पराम् ।
प्राप्नोति केवलज्ञानं तथा केवलदर्शनम् ॥२१५१॥

उत्कृष्ट शुद्धिके कारण प्रभुमें केवलज्ञान व केवलदर्शनकी निरन्तर उपलब्धि—घातिया कर्मोंका नाश होनेके अनन्तर आत्मलाभको प्राप्त हुआ यह उत्तम पुरुष अत्यन्त उत्कृष्ट शुद्धताको पाकर केवलज्ञान और केवलदर्शनको प्राप्त करता है, केवलज्ञानके द्वारा समस्त लोकालोकको एक साथ स्पष्ट जानता है और केवलदर्शनके द्वारा यह ऐसे ज्ञाता आत्माको अपने दर्शनमें लेता है । तो इस प्रकार भगवानके केवलज्ञान और केवलदर्शन उद्भूत होते हैं । उपयोग क्रमशः १२वें गुणस्थान तक चलता है । यद्यपि आत्मामें जितने गुण हैं उन सब गुणोंका निरन्तर परिणमन होता है, ज्ञानगुण भी निरन्तर परिणमता रहता है और दर्शन गुण भी निरन्तर परिणमता है किन्तु उपयोग छद्मस्थ अवस्थामें क्रमशः होता है । ज्ञान और दर्शन तो निरन्तर परिणमते ही चले जाते हैं, किन्तु उनका उपयोग १२वें गुणस्थान तक क्रमसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होता है, और चूँकि उपयोग लगानेकी बात नहीं रही ऐसे इस १३वें गुणस्थानमें, जहां समस्त ज्ञानावरण व दर्शनावरणका क्षय है अतएव केवलज्ञान और केवलदर्शन एक साथ उपयोगमें होते हैं।

अलब्धपूर्वमासाद्य तदासौ ज्ञानदर्शने।
वेत्ति पश्यति निःशेषं लोकालोकं यथास्थितम् ॥२१५२॥

प्रभुके समस्त लोकालोकका ज्ञातृत्व द्रष्टृत्व—जीवने केवलज्ञान और केवलदर्शन कभी नहीं प्राप्त किया था। उनकी प्राप्ति होनेके बाद फिर इनका कभी वियोग नहीं होता। अनंत काल तक केवलज्ञान और केवलदर्शनरूप परिणमन चलता ही रहेगा। वह प्रभु ऐसी अलब्ध पूर्ण विशुद्धिको पाकर ज्ञान दर्शनकी प्राप्ति करके अब समस्त लोकको जानता और देखता है। यद्यपि निश्चयनयसे प्रत्येक जीव अपने आपको ही देखता है और जानता है। ये प्रभु तो अत्यन्त निर्मल हो चुके हैं। जो मलिन जीव हैं वे भी निश्चयसे अपनेको जानते हैं और अपनेको देखते हैं। वे अपने विभावोंरूप परिणमते और उस ही रूप अपना उपयोग बनाये रहते हैं। किन्तु किसी भी वस्तुमें यह सामर्थ्य नहीं है कि अपने गुण अथवा पर्याय अपने प्रदेशोंको कहीं बाहर रख दे। परिणमनको मीमांसक सिद्धान्तमें कर्म शब्दसे कहा गया है। जीवके जितने भी परिणमन होते हैं वे सब जीवके अपने ही प्रदेशोंमें होते हैं। किन्तु ज्ञानमें जो विषय बना है उस विषयकी अपेक्षासे व्यवहारसे यह कहा जाता है कि भगवान लोकालोकको जानते हैं। जैसे यहाँ भी व्यवहारसे यह कहा जायगा कि हम चौकी आदिक अनेक पदार्थोंको जानते हैं। निश्चयसे तो चौकी आदिक पदार्थोंको ग्रहण करने वाला जो भीतरमें परिणमन है, ज्ञेयाकार हुआ है उसको जानते हैं। तो ऐसा कहनेसे कहीं यह अर्थ नहीं होता कि भगवान लोकालोकको जानते ही नहीं हैं। वे तो व्यवहारसे जानते हैं, वह मिथ्या है ऐसी बात नहीं है किन्तु नय पद्धतिसे मर्म समझना चाहिए। बातें दोनों यथार्थ हैं, प्रभु अपनेको जानते हैं और समस्त लोकालोकको जानते हैं। जैसे यह बात यथार्थ है कि हम अपनेको जानते हैं और जितने सामने खम्भा चौकी आदिक जो कुछ हैं उन्हें भी जानते हैं, ये अयथार्थ कुछ नहीं हैं, किन्तु नयपद्धतिसे विवेचना करनेपर यह कहना ही होगा कि निश्चयनय एकत्वको विषय करके प्रकाश डालता है और व्यवहारनय अनेक पदार्थ अथवा औदयिक भावोंका विषय करके बताता है। तो इस दृष्टिसे निश्चयसे तो अपनेको जानते हैं और व्यवहारसे अन्य पदार्थोंको जानते हैं। प्रभु भी समस्त लोकालोकके जाननहार हैं और इस प्रकारके जाननहार अपने आपके आत्माका दर्शन करते हैं, इससे यह भी कह सकते कि लोकालोकको जैसे केवलज्ञानने जाना इसी प्रकार दर्शनमें लोकालोकको देखा। ज्ञान और दर्शनमें फिर भी आन्तरिकका अंतर है। व्यवहारमें भी अन्तर है। समस्त लोकालोकको जानने वाले आत्माको दर्शनमें देखा तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अब एक परम्परया कहा जायगा कि दर्शनमें प्रभु समस्त लोकालोकको भी देख डालते हैं।

तदा स भगवान् देवः सर्वज्ञः सर्वदोदितः।
अनंतसुखवीर्यादिभूतेः स्यादग्रिमं पदम् ॥२१५३॥

अनन्त आनन्द और शक्तिका अग्रिम स्थान—जब केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है उस समय भगवान देव हैं, सर्वज्ञ हैं व सर्व कालमें उदित हैं। वे नित्य उदित रहते हैं। सूर्य चन्द्र तो रात दिनमें अपने समयपर उदित होते हैं पर केवल ज्ञानरूप सूर्य प्रकाश पुञ्ज प्रकट हो तो सदाके लिए उदित रहता है। प्रभु अनंत सुख वीर्य आदिक विभूतियोंके प्रथम स्थान हैं। यह उनकी भावमुक्तिका व द्रव्यमुक्तिका स्वरूप है। भगवान क्या है, उसको हम ज्ञान दर्शन आनंद शक्ति इन चार गुणोंके विकासरूपमें निरखा करें। तो हम भगवानके स्वरूपको जान सकते हैं। रूप रंग आकार मुद्रा ये भगवानके स्वरूप नहीं हैं। जिस देहमें विराजमान हैं प्रभु उस देहका यह वर्णन है। प्रभुको तो अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत आनंद और अनंत शक्तिमें समझा जाता है। ज्ञान और दर्शनकी बात तो प्रसिद्ध ही है, अनंत आनंदमें यह महात्म्य है, वहाँ रंच भी आकुलता नहीं है। आकुलताके न होनेको आनंद कहते हैं। और इस ही कारण जो एक सहज परम गम्भीर आल्हाद रहता है वह आनंदका परिणमन है। अनंतशक्तिसे वह अपने अनंत गुणोंके विकासको बराबर बनाये रहता है। कोई गुण कभी थकता नहीं है विशुद्ध परिणमनसे। ऐसे अनंत चतुष्टय सम्पन्न भगवान सयोगकेवली हो जाते हैं, तब क्या परिस्थितियाँ होती हैं ?

इन्द्रचन्द्रार्कभोगीन्द्रनरामरनतक्रमः।
विहरत्यवनीपृष्ठं स शीलैश्वर्यलाञ्छितः ॥२१५४॥

विश्ववन्द्य अरहंतदेवका पवित्र विहार—इन्द्र चन्द्र सूर्य धरणेन्द्र मनुष्य और देवोंसे नमस्कृत हुए हैं चरण जिनके अर्थात् जिनके चरणोंमें ये देवेन्द्र नरेन्द्र सब वंदना करते हैं ऐसे भगवान शील और ऐश्वर्य आदिक समस्त उत्तम गुणोंसे युक्त होकर पृथ्वीतल पर बिहार करते हैं। ८ वर्षका बालक साधु होकर श्रेणीमें आकर चार घातिया कर्मोंका क्षय करके अरहंत भगवान बन जाय और आयु हो उसकी अरबों खरबों वर्षकी तो समझ लीजिए कि वह अरबों खरबों वर्ष तक अरहंत रहकर इस लोकमें बिहार करता है और जो सब जीवोंके परिचयी हैं, जिनकी दिव्य ध्वनिसे, जिनके दर्शन स्मरणसे लोग अपने पापोंको धो डालते हैं। क्यों जी कितना अच्छा लगता होगा वह ८–९ वर्षका भगवान, लेकिन अरहंत दशा प्राप्त होने पर बालपनेका, वृद्धपनेका रोगका, जिस किसी भी प्रकारका वहाँ दर्शन नहीं होता। परमौदारिक युवावस्थासम्पन्न दिव्य ज्योतिर्मय शरीरके धारी होते हैं सब अरहन्त देव। जिनको सम्यग्दर्शन नहीं हुआ, ऐसे बालक ८ वर्षकी उमरमें भी इतना विशिष्ट क्षयोप-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शम प्राप्त कर सकते हैं कि वे सम्यक्त्व पैदा करें। लेकिन लोगोंने तो अपने बच्चोंको ही बिनतियाँ रटा रखी हैं, वे पढ़ लें, राजा राणा क्षत्रपति हाथिनके असवार आदि....। उन्हें बता दिया जाता है कि ये बारह भावनायें हैं, इन भावनाओंको भानेसे यह फल प्राप्त होता है। यों उन बच्चोंको तो वह पाठ लोग रटा देंगे, पर जिन्होंने स्वयं इस संसारका कुछ अनुभव किया है कि यहाँ वास्तवमें कोई शरण नहीं है, यहाँकी सब असार बातें हैं आदि, उन्हें स्वयं अपने प्रति यह सोचना चाहिए कि हम इन बच्चोंके जिम्मेदार नहीं, हम तो अपने आपके जिम्मेदार बनें, हम अगर इस प्रकारकी भावनायें भायें तो हम स्वयं इस प्रकारका फल पायेंगे। यह मनुष्यभव यों ही नहीं मिल जाता है। बहुत कालमें बहुत सुयोगसे मनुष्यभव प्राप्त हुआ है, तो इसे यों ही व्यर्थके कामोंमें खो देना कोई बुद्धिमानी नहीं है। हमें तो अपने आत्माका ध्यान करके, आत्मस्वभावका आलम्बन करके कुछ विविक्तता, विशुद्धता उत्पन्न करनी चाहिए। ये प्रभु त्रिलोकवन्दित होकर इस पृथ्वी तलपर विहार करते हैं।

उन्मूलयति मिथ्यात्वं द्रव्यभावमलं विभुः।
बोधयत्यपि निःशेषं भव्यराजीवमण्डलम् ॥२१५५॥

प्रभुके निमित्तसे भव्य जीवोंका उद्बोधन—सर्वज्ञ भगवान इस पृथ्वी तलपर विहार करके जीवके द्रव्यमल और भावमल मिथ्यात्वको जड़से नष्ट करते हैं। नाश तो करेगा जीव स्वयं, पर उसे देशना मिलती है, उपदेश मिलता है, इस निमित्तसे इस भाषामें बताया है कि वे प्रभु सर्व जीवोंके मल मिथ्यात्वको नाश करते हैं और समस्त भव्य जीव रूपी कमलोंकी मण्डलीको प्रफुल्लित करते हैं। देखिये—घरमें, परिजनमें वैभवमें रम करके भी खुशी होती है और साधु संतोंके निकट रहने में, उनकी उपासना करनेमें उनके गुणोंकी ओर अपना उपयोग रखनेमें भी प्रसन्नता होती है। लेकिन इन दोनों प्रसन्नतावोंमें भारी अन्तर है। यह धर्म सम्बन्धी प्रसन्नता निष्कपट होती है और सांसारिक मौजोंकी प्रसन्नता चिन्ता और क्षोभ से भरी हुई होती है। आगे पीछे जिसके चिन्ता और क्षोभ भरे हुए हैं ऐसी सांसारिक मौजों की प्रसन्नता है। तो प्रभुका दर्शन भव्यजीव रूपी कमलोंको प्रफुल्लित कर देता है, वह एक अद्भुत चमत्कार है।

ज्ञानलक्ष्मीं तपोलक्ष्मीं लक्ष्मीं त्रिदशयोजिताम्।
आत्यन्तिकीं च सम्प्राप्य धर्मचक्राधिपो भवेत् ॥२१५६॥

धर्मचक्री लक्ष्मीपति—ये प्रभु ज्ञानलक्ष्मी, तपोलक्ष्मी और देवोंके द्वारा नियोजित समवशरण आदिक लक्ष्मी, तथा मोक्ष लक्ष्मीको प्राप्त करके धर्मके चक्रवर्ती होते हैं। प्रभु अरहंतदेवके है ज्ञानलक्ष्मी। वास्तविक लक्ष्मी तो ज्ञानलक्ष्मीको ही कहते हैं। लक्ष्मीका अर्थ है चिन्ह। आत्माकी लक्ष्मी अर्थात् आत्माका चिह्न है ज्ञान। यह ज्ञानलक्ष्मी उपादेय है। यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञानलक्ष्मी सर्व जगतके प्राणियोंका हित करने वाली है। कुछ समय तक तो इस ज्ञानलक्ष्मी को उपादेय माना जाता रहा, उसीकी पूजा होती रही। पर कुछ समय बादमें ज्ञानकी बात तो छूट गयी और संसारी जीवोंने अपने विषयसाधनोंसे ही अपना सब कुछ हित माना। तो इन विषयसाधनोंमें साधनभूत जो कल्पित लक्ष्मी मानी गई है उसकी उपासनामें लग गये, पर यह विदित नहीं किया कि यह लक्ष्मी तो, यह धन वैभव तो पुण्यका उदय आनेपर स्वतः आता है और पुण्यका उदय विलीन होनेपर यह विलीन हो जाता है। उपासनासे, पूजासे वैभव नहीं आता है। यह तो अपने षट्कर्मोंसे, दया दान परोपकारके भावसे विशिष्ट पुण्य-संचय होता है, इसके उदयमें ये सब प्राप्त होते हैं। प्राप्त हों, किन्तु उससे आत्माका उत्कर्ष नहीं है।

बाह्य लक्ष्मीकी क्लेशरूपता—एक सेठ करोड़पति था, पापका उदय आनपर उसे अपनी सारी सम्पदासे हाथ धोना पड़ा। गुजारा चलानेके लिए उसे अरजीनवीसीका काम करना पड़ा। कुछ दिनों बाद वह सेठ अंटारीसे जीनेकी सीढ़ियोंपरसे उतर रहा था तो उसे कुछ शब्द सुनाई पड़े। वे शब्द थे—क्या मैं आऊँ? सेठने—आकर वह वृत्तान्त सेठानीको बताया। तो सेठानीने कहा कि इस बार कहे तो उससे कह देना कि मत आवो। आखिर दुबारा जब कहा—क्या मैं आऊँ, तो उस सेठने कहा मत आवो। वह आवाज थी लक्ष्मीकी। यों जब कई बार उस लक्ष्मीने कहा—क्या मैं आऊँ तो एक बार सेठको कहा सेठानीने कि अच्छा इस बार कह देना कि आवो तो सही पर आकर जाना नहीं। तो वह लक्ष्मी कहती है आऊँगी तो सही पर जब चाहे चली जाऊँगी। सेठने फिर सेठानीसे सलाह ली, तो सेठानीने कहा कि कुछ अनुरोध और करना, और मंजूर कर लेना। फिर अगले दिन बात हुई तो लक्ष्मी कहती है कि मैं सदा तो नहीं रह सकती, पर यह वचन देती हूं कि जब जाऊँगी तो कहकर जाऊँगी। अब देखिये क्या होता है? अगले दिन उस सेठने जो कि गरीबी आ जानेके कारण अरजी-नवीसीका काम कर रहा था, रानीकी ओरसे उसके कहीं बाहर गए हुए राजाको एक पत्र लिख दिया। राजा उस पत्रको लेकर आया और उस पत्रपर इतना खुश हुआ कि उस सेठको अपना मंत्री बना लिया। अब क्या था? लक्ष्मी आनेके उसके पास अनेक उपाय थे। यों कुछ ही दिनोंमें वह फिर बड़ा धनिक बन गया। एक दिन सोचा कि वह लक्ष्मी तो कहती थी कि आऊँगी तो सही, पर चली जाऊँगी, सो अब मैं देखूंगा कैसे वह लक्ष्मी जाती है? सो उसने अपना बहुतसा धन हंडोंमें भरकर ऊपरसे तवा जड़ाकर जमीनमें गड़वा दिया था। सोचा कि अब तो हमारे पाससे यह लक्ष्मी किसी तरह भी नहीं जा सकती। पर हुआ क्या कि एक दिन वह राजा अपने मंत्री इसी सेठको लेकर जंगल गया क्रीड़ा करनेके लिए। राजा की थकान मेटनेके लिए उस मंत्रीने अपनी जाँघपर सिर धरकर लिटा दिया। राजाके कमर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

में तलवार लटक रही थी। जब राजाको कुछ निद्रासी आने लगी तभी वह लक्ष्मी आयी और बोली कि अब तो मैं जाती हूं, तो वह मंत्री कहता है कि मैं तुझे न जाने दूंगा, आखिर दुबारा कहा कि मैं जाती हूं तो उस मंत्रीने तलवार निकालकर लक्ष्मीको मारनेके लिए हाथ उठाया इतनेमें ही कुछ झटकासा लगनेसे वह राजा जग गया। देखा--ओह ! मंत्रीके हाथमें तलवार। सोचा कि इसने मुझे मारनेकी सोची होगी। खैर, वहाँ तो कुछ न बोला वह राजा, पर अपने दरबार आनेपर पहरेदारोंसे कहा कि ऐ पहरेदारों इस मंत्रीको सपरिवार हमारे राज्यसे बाहर निकाल दो। वह मंत्री सपरिवार राज्यसे बाहर निकाल दिया गया। अब देखो उसका सारा धन उसके पाससे जाता रहा। तो यह लक्ष्मी उसकी पूजा करनेसे, उसकी उपासना करनेसे नहीं प्राप्त होती है। अपने परिणाम अगर ठीक होंगे तो उससे पुण्यका बंध होगा और यह लक्ष्मी प्राप्त होगी और यदि अपने परिणाम खोटे हैं तो उससे पापका बंध होगा और उसे नरकमें जाना पड़ेगा। तो वास्तवमें लक्ष्मी तो ज्ञानलक्ष्मी कहलाती है। ये प्रभु इस ज्ञानलक्ष्मी को पाये हुए हैं। उनका आन्तरिक तपश्चरण सदा आत्मामें रहता है। ये प्रभु अब अत्यन्त विशुद्ध हो गए। देवताओंने जो समवशरण लक्ष्मीकी रचना की उसमें वे शोभित हो रहे हैं। ऐसे ये प्रभु सर्वप्रकारकी लक्ष्मीको पाकर धर्मचक्रके अधिपति होते हैं। ऐसी आदर्श अवस्था प्राप्त होती है, यह सब शुक्लध्यानका प्रसाद है।

कल्याणविभवं श्रीमान सर्वाभ्युदयसूचकम्।
समासाद्य जगद्वन्द्यं त्रैलोक्याधिपतिर्भवेत् ॥२१५७॥

जगद्वन्द्य त्रैलोक्याधिपति----अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग लक्ष्मी करके सहित केवली भगवान तीन लोकोंसे वंदनीय हैं और कल्याणरूपी वैभवको पाकर तीनों लोकके अधिपति हैं। लोकमें सबसे बडा कौन है ? दृष्टि पसारकर निरखो तो जिसे संसारमें मोहीजन बड़ा मानते हैं वे भी किसी अन्यको बड़ा समझते हैं और इस तरह एक दूसरे बड़ेकी शरणमें रहते हैं पर वे प्रभु केवली भगवान तो इतने महान हैं कि जिनकी शरणमें देव देवेन्द्र योगीश्वर आदि वन्दना करनेके लिए पहुंचते हैं, वे प्रभु परमकल्याणरूपी वैभवके अधिपति हैं।

तन्नामग्रहणादेव निःशेषा जन्मजा रुजः।
अप्यनादिसमुद्भूता भव्यानां यान्ति लाघवम् ॥२१५८॥

प्रभु नाम स्मरणकी महिमा—जिन भगवानके नाम लेने मात्रसे ही जीवोंके अनादि कालसे उत्पन्न हुए जन्ममरण रूपी रोग भी क्षीण हो जाते हैं ऐसे वे भगवान प्रभु शुक्लध्यान के प्रसादसे हुए। हे प्रभो, आपके स्तवनकी बात तो दूर रही, आपका नाम लेने मात्रसे भी लोगोंके पाप क्षणभरमें नष्ट हो जाते हैं। सूर्यका प्रकाश तो तब आयगा जब सूर्य उदित हो चुके। पर सूर्यका प्रताप तो देखो कि पहिले ही याने जब सूर्यका उदय काल आता है तो

Version 1

इससे दो घड़ी पहिले अंधकार विलीन हो जाता है, तो प्रभु नाम स्मरण, आत्मगुण स्मरण इसके सिवाय हम और आप कौनसा वैभव पायेंगे ? लोकमें वैभव है वह तो असार है, रहा तो क्या, न रहा तो क्या ? उससे तो ज्यादासे ज्यादा ऐसा मौज मान लिया कि हजार लाख व्यक्तियोंके बीच कुछ महिमा बढ़ गई। लोग ऊँचा आसन देंगे, समारोहोंमें अध्यक्ष बना देंगे, लोग तारीफ करेंगे, पर यह सब है क्या ? एक स्वप्नकी जैसी बात है।

मोहनिद्रा अस्त करनेका स्मरण—भैया ! अपनी जिन्दगीसे ही विचार लो, कितने ही पुरुष यहाँ ऐसे बैठे हैं जिनके दादा, पिता, माँ आदि नहीं रहे, बहुतसे इष्ट जनोंका वियोग हो गया। ये सभी गोदमें लेकर बड़े प्रेमसे खिलाते रहे, कभी जमीनपर पैर न रखने देते थे, सभीके सभी इसे बड़े लाड़-प्यारसे रखते थे, पर आज वे सब समागम कहाँ गए ? आज तो लगता होगा कि वे सब स्वप्न जैसी बातें थीं। स्वप्नमें तो चेत रहना सम्भव है, पर मोहकी नींदमें चेत रहना सम्भव नहीं है। यह मोहका स्वप्न नींदके स्वप्नसे भी बदतर है। कभी स्वप्न ऐसा आया होगा कि कोई खोटा प्रसंग आनेको हो और बड़ा विवाद हो जाय स्वप्नमें ही, कहीं कोई जबरदस्ती करे, किसी रागी देवके पास ले जाय कि तुम इसे नमस्कार करो, ऐसा स्वप्न दीखा और आप वहाँसे हट जायें, तकलीफ पसंद करें, ऐसी भी दृढ़ता स्वप्नमें हो सकती है, पर मोहकी नींदमें तो जहाँ इष्ट राग है, अनिष्ट द्वेष है, वहाँ आत्माका चेत नहीं रहता। तो इस स्वप्नमयी दुनियामें अपना सारा जीवन न्यौछावर कर देना यह कहाँका विवेक है ? तो ऐसा सोचना चाहिए कि जब हम सर्वज्ञदेवकी शरणमें आये हैं तो उनके बताये हुए मार्गको अपनायें और उस ही प्रकारकी अपनी दृष्टि रखें।

मायाके गर्वकी व्यर्थता—एक कोई सेठ था, उसकी दूकानके सामनेसे रोज-रोज एक साधु निकला करता था। साधु कहे राम-राम तो वह सेठ कुछ बोलता ही न था। वह सेठ अपने रोजिगारमें इतना फंसा रहता था कि उसे रामराम कहनेकी भी फुरसत न थी। तो साधुने सोचा कि इस सेठको कुछ मजा चखाना चाहिए। सो वह सेठ रोज-रोज एक नदीमें नहाने जाता था, एक घंटेमें नहाकर आता था। तो उस साधुने क्या किया कि उस सेठका ही जैसा रूप बनाकर सेटसे पहिले ही उसके द्वारपर आ गया, फिर घरके भीतर बैठ गया। अब बादमें सेठ आया, तो पहरेदार उसे हटाने लगे कि तू यहाँ कौन बहुरूपिया बनकर आ गया, यहाँसे चल। तो वह सेठ बोला—अरे यह हमारा ही तो घर है, तुम हमारे ही तो पहरेदार हो। आखिर बाहर ही पड़ा रहा सेठ। सेठने उस साधुपर मुकदमा दायर कर दिया। वह सेठ वहीं द्वारपर ५–७ दिन तक पड़ा रहा। साधु उसे थोड़ा बहुत खानेको भी दे दे इसलिए कि कहीं यह मर न जाय। आखिर अदालतमें जब बयान हुए तो जजने पूछा सेठसे कि इस मकानके बनवानेमें तुमने कितना खर्च किया था ? सो शायद कोई ठीक-ठीक रुपया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आना पाईमें हिसाब नहीं दे सकता। वह सेठ कोई उस समय उत्तर न दे सका और साधुने अपने ज्ञानबलसे सोचकर बता दिया कि इतने रुपये इतने आने और इतने पाई खर्च हुए थे इस मकानके बनवानेमें। आखिर निर्णय यही हुआ कि यह मकान इसका (साधुका) है। अब क्या था? उस सेठको मजा चखा ही दिया उस साधुने। एक दिन सेठ बाहर ही बैठा था, साधु निकला, पूछा—कहो सेठ जी तबियत दुरुस्त है ना, उसने कुछ उत्तर न दिया। वह साधु स्वयं कहने लगा—देखो सेठ मैं रोज-रोज तुम्हारी दूकानके सामनेसे निकलता था, राम राम करता था पर तुम कुछ न बोलते थे, उसीसे हमने तुम्हें मजा चखाया था। तो इस धन वैभवकी कमाईमें ही लोग जुटे हुए हैं, अपने आपके कल्याण करनेकी कुछ फुरसत ही नहीं है। लोग तो इस धन वैभवके कमाने व उसके जोड़नेमें ही अपनी चतुराई समझते हैं, पर यह उनकी भूल है। अरे यह वैभव न तो वर्तमानमें ही शान्तिका कारण हो सकेगा और न भविष्य सम्बंधी कोई लाभ हो सकेगा। एक अपने आत्मस्वरूपका ज्ञान कर लिया जाय तो यह ज्ञानसंस्कार आगे भी काम देगा और वर्तमानमें भी वह शान्तिपूर्वक रह सकेगा। तो जिस किसी भी प्रकार हो सके हमें शीघ्र ही इन संसारके संकटोंसे सदाके लिए छूटनेका उद्यम कर लेना चाहिए। अपने कुटुम्ब जनोंको, अन्य रिश्तेदारोंको सभीको इस ही मार्गमें लगना चाहिए तभी आपका कुटुम्बमें रहना सार्थक है। अन्यथा सम्बंध तो पशु पक्षियोंमें भी होता है, उनके भी झुण्ड होते हैं, बच्चे होते हैं, और वे पशु भी अपने बच्चोंसे बड़ा प्यार करते हैं। तो सच्चा प्यार वही है परिजनोंमें, कुटुम्बमें कि सभीको धर्ममार्गमें लगायें, सभीको ज्ञानप्रकाशमें पहुंचायें, यह है सच्चा प्रेम। और शेष तो सब स्वप्न जैसी बातें हैं। तो ये प्रभु ऐसे कल्याणरूपी विभवके अधिपति होते हैं। जिसके नामके लेने मात्रसे जन्मरूपी क्लेश दूर होते हैं।

तदार्हत्त्वं परिप्राप्य स देवः सर्वगः शिवः।
जायतेऽखिलकर्मौघजरामरणवर्जितः ॥२१५९॥

प्रभुकी अर्हंता—तब वे सर्वगत और शिव ऐसे भगवान अरहंत अवस्थाको प्राप्त करके सम्पूर्ण कर्मोंके समूह और जन्म जरा मरणसे रहित हो जाते हैं। अरहंतपना पाकर ये सिद्ध परमेष्ठी हो जाते हैं। गुणस्थानमें क्या है? गुणोंका विकास है। चौथे गुणस्थानमें सम्यक्त्व का विकास हुआ है और यहाँसे समझिये कि उसका मोक्षमार्ग शुरू हो गया। सच्चा ज्ञान हो जाय तो फिर घबड़ाहट नहीं रहती। चाहे घर गृहस्थीमें रहकर किस ही प्रकारकी परिस्थितियाँ आयें पर ज्ञानबलके प्रसादसे उसे रंच भी आकुलता नहीं होती। सारी बातें सहनी तो खुदको ही पड़ेंगी, दूसरे लोग तो दूसरोंके दुःखको देखकर हँसेंगे, कोई किसी दूसरेके दुःखको मिटा न देगा। आये कोई घटना दुःखकी तो उसको अपने ही दिलमें ही रखकर सहन कर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लीजिए। उस समय यह ख्याल रखिये कि आया है यह दुःखका अवसर तो इस समय हमारी कोई मदद न कर देगा, इस प्रकारका विवेक रहेगा तो एक समय वह आयगा कि वे सारे दुःख मिट जायेंगे। यदि दुःखके समयमें भी विवेक सही बनाये रहे तो वे सारे दुःख भी हँस-खेलकर समतापूर्वक सहन कर लिए जाते हैं। तो सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई चतुर्थ गुणस्थानमें, उसके बाद फिर कषायोंपर विजय होती है, चारित्रमें विकास होता है, समस्त कषायें नष्ट हो जाती हैं। १२वें गुणस्थानमें पहुंचनेपर अरहंत भगवान हो जाते हैं, सो वे रहते हैं जब तक उनकी आयु है। आयु समाप्त होनेपर सब कर्म एक साथ नष्ट होते हैं, शरीर रहित सिद्ध पर-मेष्ठी हो जाते हैं।

तस्यैव परमैश्वर्यं चरणज्ञानवैभवम्।
ज्ञातुं वक्तुमहं मन्ये योगिनामप्यगोचरम् ॥२१६०॥

प्रभुका वचनागोचर परम ऐश्वर्य—सर्वज्ञ भगवानका ऐश्वर्य उनके चारित्र और ज्ञान वैभवकी महिमा बड़े-बड़े योगी भी नहीं बखान सकते हैं। प्रभुमें क्या वैभव है, क्या प्रभुता है, इस बातको जो समझ ले वही सम्यग्दृष्टि है, वह नियमसे निर्वाण प्राप्त करेगा। प्रभु ज्ञान और आनंदका एक पिण्ड है। अब उसे क्या रहा दुःख, क्या क्लेश रहा? जितने क्लेश हैं वे सब मुझे यह करना है, मुझे यह करना है, बस यह बुद्धि ही क्लेश है, और यह देख लीजिये—क्लेशमें सभी हैं, उसका मूल कारण यह है कि सभीके चित्तमें यह बात बसी है कि मेरेको यह काम करनेको पड़ा हुआ है। सम्यक्त्वका प्रकाश होनेपर ही यह श्रद्धा होती है कि मेरेको पर-पदार्थोंमें कुछ भी काम करनेको नहीं पड़ा है। करना पड़ रहा हो, तिसपर भी यह बुद्धि रहती है कि मेरे करनेको तो अब कुछ नहीं है। तो वे प्रभु कृतार्थ हैं, निर्विकल्प हैं, परम निराकुलताका अनुभवन करते हैं, ज्ञानबलमें सदा रत करते हैं, उनके आशा रंच भी नहीं है, इच्छा विकार कुछ भी नहीं है। ऐसे विशुद्ध ज्ञानके पिण्ड हैं प्रभु। उसकी महिमाको योगीश्वर भी न जान सकते हैं और न मुखसे कह सकते हैं। तो इस प्रभुकी प्रभुताको जानकर हम उसपर ही न्यौ-छावर रहें, उस ही अवस्थाको प्राप्त करनेके लिए अपना तन, मन, धन, वचन सर्वस्व समर्पित करें। यहाँ कौन है ऐसा पवित्र आत्मा, कौन है मेरा सहाय, ये सब बातें निरखकर जरा भीतरमें चित्तको प्रकाशमय बनायें, तभी भगवानके उस परम ऐश्वर्यका अनुभवन किया जा सकता है।

मोहेन सह दुर्द्धर्षे हते घातिचतुष्टये।
देवस्य व्यक्तिरूपेण शेषमास्ते चतुष्टयम् ॥२१६१॥

मोहक्षयके पश्चात् अवशिष्ट समस्त कर्मोंका विनाश—जब केवली भगवानके चार घातिया कर्म नष्ट हो जाते हैं तब अघातिया कर्म ही तो शेष रहे। घातिया कर्म—ज्ञानावरण,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय—इन सबमें मुखिया है मोहनीय। जैसे आजकल संसदों में विधायकोंके नेता भी बना दिये जाते हैं। न रही सरकार खुदकी तो जितने मेम्बर रह गए हैं उनका एक नेता बना दिया। तो इन घातिया कर्मोंका नेता कौन है ? घातिया कर्मोंका नेता है यह मोहनीय कर्म। सो सम्यक्त्व जब उत्पन्न होता तब चार अनंतानुबंधी और मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति इन ७ प्रकृतियोंका जब विनाश हुआ तब समझ लीजिये कि कर्मोंका बंटाधार तो तभी हो गया। अब कब तक रहेंगे कर्म ? फिर शेष चारित्र मोहकी २० प्रकृतियाँ ९वें गुणस्थानमें समाप्त हुईं, संज्वलन लोभ १०वें गुणस्थानमें समाप्त हुआ। तो मोहनीय कर्म की सेना सब खतम हो गई। जैसे कोई हरा वृक्ष है उसकी जड़ें काट दी जायें तो वृक्षके गिर जानेपर भी दो चार दिन उसकी पत्तियाँ हरी रहती हैं तो रहें हरी, पर वे प्रति समय मुर्झाने के सम्मुख हैं, अब उनमें वह हरापन नहीं आनेका है, इसी प्रकार इन कर्मोंकी जड़ मोहनीय कर्म जब कट गई तो फिर सारे कर्म मुर्झानेके सम्मुख हैं, अब शेष ३ घातिया कर्म १२वें गुणस्थानमें नष्ट होते हैं। अब अघातिया रह गए। इनका काम क्या ? जिनके कारण अभी शरीर बना है, शरीरमें जीव बना है आदि। अकिञ्चित्कर ये बातें रह गयीं हैं अभी, तो उनके अब शेष घातिया कर्म मात्र रह गये। तो वे घातिया कर्म कैसे दूर होते हैं ?

सर्वज्ञः क्षीणकर्मासौ केवलज्ञानभास्करः।
अन्तर्मुहूर्तशेषायुस्तृतीयं ध्यानमर्हति ॥२१६२॥

प्रभुमें तृतीय शुक्लध्यानकी योग्यताका काल—कर्मोंसे रहित केवलज्ञानरूपी सूर्यसे पदार्थोंको प्रकाश करने वाले वे सर्वज्ञदेव जब उनके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयु शेष रह जाती है तब सूक्ष्मक्रियाअप्रतिपाति शुक्लध्यानके योग्य होते हैं। अरहंत भगवानका जीवन करोड़ों वर्षों का भी हो, १३वें गुणस्थानमें करोड़ों वर्ष भी कवलाहार बिना परम पवित्र योग्य शरीर वर्गणावोंके आहार लेते रहनेसे उनका शरीर दिव्य और दीप्त रहा करता है। जब आखिरी अंतर्मुहूर्त शेष रह जाय, मानो दो एक मिनट रह जाय उस समय तृतीय शुक्लध्यान होता है। यहाँ एक शंका यह हो सकती है कि किसी भगवानकी आयु तो रह गयी अत्यल्प और शेष कर्मोंकी स्थिति हो अभी हजारों वर्ष तो ये सब कर्म एक साथ कैसे समाप्त होंगे ? आयु शीघ्र ही खतम हो जायगी, तो फिर ये कर्म कहाँ रहेंगे ? तो उसके उत्तरमें कहते हैं—

षण्मासायुषि शेषे संवृत्ता ये जिनाः प्रकर्षेण।
ते यान्ति समुद्घातं शेषा भाज्याः समुद्घाते ॥२१६३॥

समुद्घातके अधिकारी प्रभु—जो भगवान उत्कृष्ट ६ महीनेकी आयु शेष रहनेपर केवली हुए हैं वे अवश्य ही समुद्घात करते हैं और ६ महीनेसे अधिक आयु रहनेपर जो केवली हुए हैं उनमें से कोई समुद्घात करते हैं और कोई नहीं भी करते हैं। समुद्घातका क्या अर्थ है ?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इसमें तीन शब्द हैं--सम् उत् और घात । सम् मायने अच्छे प्रकारसे उत् मायने उत्कृष्ट, घात मायने कर्मप्रकृतिका विनाश भली प्रकार उत्कृष्ट रूपसे समस्त कर्मप्रकृतियोंके नाश होनेका नाम है समुद्घात । समुद्घातसे कर्मोंका प्रक्षय होता है, तो क्या होता है समुद्घातमें ? सो निरखिये ।

यदायुरधिकानि स्युः कर्माणि परमेष्ठिनः ।
समुद्घातविधिं साक्षात्प्रागेवारभते तदा ॥२१६४॥

शेष तीन अघातिया कर्मोंको आयुसम करनेके लिये समुद्घातका आरम्भ—जब अरहंत परमेष्ठीके आयुकर्म अन्तमुहूर्तका अवशेष रहता है और शेष कर्मोंकी स्थिति अधिक होती है तब समुद्घातकी विधि प्रारम्भ होती है । देखिये–अन्तर्मुहूर्तमें अनेक अन्तर्मुहुर्त समाये हुए रहते हैं । तो आखिरी अन्तर्मुहूर्तमें अनेक जो अन्तर्मुहूर्त पड़े हैं उनमें पहिले समुद्घात किया, फिर योग निरोध किया, फिर जब सब योगोंका निरोध होने पर केवल एक सूक्ष्म काययोग रह जाता है उस समयमें तृतीय शुक्लध्यान होता है । शेष समस्त जीवनमें यह शुक्लध्यान नहीं है । उन अरहंत भगवानको ध्यानकी जरूरत तो न तब थी, न अब है । चित्त तो उनका नष्ट हो गया, यों कहो कि अब वे संज्ञी तो रहे नहीं अनुभय हैं । १३ वें गुणस्थान वाले न संज्ञी हैं, न असंज्ञी हैं, ध्यानकी कहाँ बात हो ? ध्यानका फल है कर्मोंकी निर्जरा होना । वह निर्जरा अंतिम अन्तर्मुहूर्तमें विशेष होती है, सो उस फलको देखकर बताया गया है कि वह भगवान सूक्ष्मक्रिय है, उनके सूक्ष्म काययोग रह गया है और अप्रतिपातीपना है । बहुत उत्कृष्ट परिवर्तनमें आने वाले हैं तो उस समय इनका समुद्घात होता है । देखिये समुद्घातका अर्थ तो उत्तम है, पर समुद्घात ७ प्रकारके होते हैं—इसका नाम है केवली समुद्घात । समुद्घातमें क्या हुआ कि केवल भगवानका आत्मा अपने शरीरमें रहता हुआ भी प्रदेश फैलने लगते हैं, उसके शरीरसे बाहर भी प्रदेश फैलते हैं और फैलते-फैलते आखिर वे लोकमें सर्वत्र फैल जाते हैं । उस समय जहाँ ये सब जीव हैं वहाँ ही भगवानके प्रदेश भी हो गए और भगवानके प्रदेशोंके बीच सब लोग बैठे हैं, यदि इस समय अरहंत भगवानका समुद्घात हो रहा हो, विदेह क्षेत्रमें तो अरहंत सदा होते रहते हैं तो उनके प्रदेश सारे लोकमें फैले हुए हैं, पर उनसे भी अपना सहारा कुछ नहीं, जो दुःख है सो है ही । उनके यहाँ की तो बात क्या कहें ? जो सिद्ध लोक है, जहाँ सिद्ध भगवान विराजे हैं वहाँ भी अनंत निगोदिया जीव बस रहे हैं, पर वे सिद्ध तो अपने अनंत सुखको, अनंत आनंदको भोग रहे हैं और वे निगोदिया जीव इतने दुःख भोग रहे हैं कि एक श्वासमें १८ बार जन्ममरण कर रहे हैं । जो बात यहांके निगोदिया जीवोंमें होती है वही बात वहांके निगोदिया जीवोंमें है । तो समुद्घातका सही अर्थ वाला काम केवली भगवानमें ही बनता है और में नहीं । हाँ प्रदेश फैलनेसे वे समुद्घात कहे गये हैं । जैसे गीली धोती है उसे फैला दिया जाय तो जल्दी सूख जाती

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है, इसी प्रकार ये आत्मप्रदेश जब फैल जाते हैं लोकभरमें तो कर्मप्रदेश फैलकर बिखरकर शीघ्र ही सूख जाते हैं। उस समय भगवानकी आयुके बराबर शेष तीन घातिया कर्म होते हैं तो जब वे मुक्त जायेंगे तो एक साथ सब कर्म नष्ट होंगे और उनका निर्वाण हो जायगा।

अनंतवीर्यप्रथित प्रभावो दण्डं कपाटं प्रतरं विधाय।
स लोकमेनं समयैश्चतुर्भिर्निश्शेषमापूरयति क्रमेण ॥२१६५॥

अघातिया कर्मोंकी स्थिति समान होनेके लिये समुद्घात—योगीश्वर पृथक्त्ववितर्कवीचार और एकत्ववितर्कअवीचार नामक दोनों शुक्लध्यानोंके प्रसादसे क्रमशः मोहनीय व शेष घातिया कर्मोंका नाश कर देते हैं। तब सयोगसेवली गुणस्थानवर्ती होते हैं। वे अरहंत हैं, प्रभु हैं, उनके अब चार अघातिया कर्म शेष रह गये हैं, उनमें यदि आयुकर्मकी स्थिति विशेष अधिक है तो उन विशेष स्थिति वाले अघातिया कर्मोंको आयुके बराबर करनेके लिए समुद्घात होता है। इस समुद्घातका नाम केवलिसमुद्घात है। केवलिसमुद्घातमें आत्माके प्रदेश पहिले नीचे और फिर ऊपर जाते हैं। जैसे कि पद्मासनसे विराजे हों तो शरीरकी मोटाईसे तीन गुना फैलकर जाते हैं और यदि खड्गासनसे विराजे हों तो शरीर परिमाणकी मोटाई लेकर नीचेसे ऊपर तक भगवान आत्माके प्रदेश फैल जाते हैं। यह हुआ उनका दंडसमुद्घात। इसके पश्चात् अगल-बगल फैल जाते हैं तब होता है कपाटसमुद्घात। दंडसमुद्घातमें भगवानके प्रदेशोंका आकार डंडेकी तरह लम्बा रहा और कपाटसमुद्घातमें किवाड़की तरह उनके प्रदेश फैलते हैं। इसके पश्चात् तीसरे समयमें आगे पीछे फैलते हैं, अब यहाँ तक उनके प्रदेश लोकालोकमें सर्वत्र फैल गए, केवल वातवलय बचे इस लोकके चारों तरफ। जिन वातवलयों पर यह सर्व लोक सधा हुआ है उन वातवलयोंमें अभी अरहंत भगवानके प्रदेश नहीं फैले प्रतरसमुद्घातमें। लोकपूरण समुद्घातमें प्रदेश वातवलयोंमें भी ठहर जाते हैं। उस समय लोक के एक-एक प्रदेशपर आत्माका एक एक प्रदेश रह जाता है, इसे कहते हैं एकत्ववर्गणा होना। लोकपूरण समुद्घातमें आत्माके प्रदेश पूर्ण लोकाकाशमें फैल गये, कहीं किसी भी जगह दो प्रदेश न रहे, सर्वत्र एक प्रदेश रहकर वह आत्मा फैल जाता है। इसके पश्चात् ५वें समयमें प्रतर जैसी स्थिति हो जाती है। फिर छठे समयमें कपाट जैसी स्थिति, ७वें समयमें दंड जैसी स्थिति रह जाती है और ८ वें समयमें शरीरमें प्रवेश हो जाता है। इन ८ समयोंकी प्रक्रिया से शेष बढ़े हुए तीन कर्म आयुकर्मके बराबर हो जाते हैं।

पिण्डलोकका आधार वातवलय—इस लोकका आधार क्या है, यह लोक किसपर टिका हुआ है ? इस सम्बंधमें कोई लोग कुछ कहते हैं, कोई कुछ। कोई लोग तो एक बाराह अवतार हुआ उसपर टिका बताते हैं, कोई लोग कहते कि कीलीपर दुनिया टिकी, कोई कहता कि शेषनागके फनपर दुनिया टिकी, कोई लोग कहते कि इस लोकके चारों तरफ तीन प्रकार

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

की विशिष्ट हवायें हैं और लोकके नीचे गहराईमें और अधिक मोटाईमें वह हवा है जिसपर यह लोक सधा हुआ है। यों अनेक मान्यतायें हैं। शेषनागकी बात तो बहुत प्रसिद्ध है, पर उसका सही अर्थ देखें। पहिले नाग शब्दमें देखो तीन शब्द हैं—न, अ और ग। गच्छति इति गः। जो चले सो ग, न गच्छति इति अगः, जो न चले सो अग, न अगः इति नागः, जो न चलने वाला नहीं है उसे नाग कहते हैं अर्थात् हवा। और शेषनागका अर्थ है जो शेष रही हवा है वह। तो लोकमें सर्वत्र वायु भरी है, सो भीतरकी समस्त वायुसे बची हुई जो हवा है, विशिष्ट वातवलय है उसका नाम है शेषनाग। यों यह सब लोक उन वातवलयोंके आधारपर है। प्रभु भगवान आत्माके प्रदेश लोकपूरण अवस्थामें, लोकके वातवलयोंमें भी फैल जाते हैं, और उस प्रक्रियामें क्या होता है कि जो अधिक स्थितिके अघातिया कर्म थे वे आयुकर्मके समान हो जाते हैं।

तदा स सर्वज्ञः सार्वः सर्वज्ञः सर्वतोमुखः।
विश्वव्यापी विभुर्भर्त्ता विश्वमूर्तिमहेश्वरः ॥२१६६॥

लोकपूरणसमुद्घातमें प्रभुकी व्यापकता—जब केवली भगवान लोकपूरण समुद्घातमें होते हैं अर्थात् लोकके समस्त प्रदेशोंमें पूर्ण रूपसे फैल जाते हैं तो उस समय ये चार बातें—धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, भगवानके प्रदेश और लोकालोकके प्रदेश, ये बराबर हो जाते हैं, तीन तो पहिलेसे ही उतने थे, अब आत्मा भी उतना हो गया। अब न कोई कम, न कोई ज्यादा रहा। इस लोकपूरण अवस्थामें भगवानको इन शब्दोंसे कहा जाय तो वह अत्युक्ति है। वह प्रभु उस समय सर्वज्ञ हैं, सर्वत्र व्यापे हुए हैं। लोकका कोई प्रदेश ऐसा नहीं बचा जहाँ प्रभु न विराजे हों। उस समय वे सार्व हैं। सर्वके हितरूप हैं, सर्वके निकट मौजूद हैं, सर्वके जाननहार हैं, सर्वत्र उनकी गति है, सब ओर उनका सुख है। जो लोग प्रभुकी ऐसी स्तुति करते हैं कि वे प्रभु सर्व ओर देखने वाले हैं, सर्व ओर उनकी आँखें हैं, सर्व ओर उनकी भुजायें हैं। वह अवस्था यही तो है प्रभुकी। वे प्रभु उस समय विश्वव्यापी कहे जाते हैं, सर्वत्र व्यापक हैं। देखिये—प्रदेशोंसे तो वे लोकव्यापक हैं लेकिन ज्ञानसे अब भी वे लोका-लोकव्यापी हैं अर्थात् उनका ज्ञान लोक और अलोक सबका जाननहार है। उनके ज्ञानमें लोकालोक समाया है। प्रदेशदृष्टिसे अरहंत भगवान विश्वव्यापी हैं, विभु हैं, विश्वमूर्ति हैं, महेश्वर हैं। ऐसी फैलनेकी स्थिति केवल एक समयको होती है। एक समय कितना होता है ? पलक शीघ्रतासे जितने समयमें गिरे और उठे उतने समयमें अनगिनते समय हुआ करते हैं, उनमें से एक समयके लिए यह स्थिति हुई है प्रभुकी। और उस फैलावके कारण कर्म भी फैल गए। क्योंकि कर्मवर्गणाओंका और आत्माका अभी एक क्षेत्रावगाह सम्बंध है। कर्म के फैलानेके लिए तो समुद्घात बना है। आत्माको फैलानेकी क्या जरूरत थी ? होते हैं सब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

काम अपने आप सहज। कर्म फैल जायेंगे तो जैसे धोतीको फैला दिया जाय तो शीघ्र ही सूख जाती है इसी प्रकार ये कर्म सारे विश्व भरमें फैल गए तो ये सब कर्म सूख जाते हैं।

लोकपूरणमासाद्य करोति ध्यानवीर्यतः।
आयुः समानि कर्माणि भुक्तिमानीय तत्क्षणे ॥२१६७॥

केवलिसमुद्घातसे तीन अघातिया कर्मोंकी आयुकी स्थितिके समान स्थिति—केवली भगवान लोकपूरणमें अपने प्रदेशोंको सारे लोकमें व्याप देते हैं। वे प्रभु न तो अब संज्ञी हैं, न असंज्ञी। उनके तो अब मनोबल भी नहीं है, अनंत ज्ञानबल है। मनसे भी वे अब कुछ विचार नहीं करते हैं। उनके तो एक विशुद्ध आत्मशक्ति प्रकट हुई है जिस विकाससे ही सीधा समस्त त्रिलोक और त्रिकालवर्ती पदार्थोंको स्पष्ट जानते हैं। उस समय उस ध्यानके प्रतापसे उदयमें लाकर, भोगमें लाकर अथवा यों ही एक समयमें लाकर आयुके बराबर उन कर्मोंको कर दिया जाता है। अब यहाँ इस प्रभुके चार अघातिया कर्म एक समान स्थितिके हो गए।

ततः क्रमेण स पश्चाद्विनिवर्त्तते।
लोकपूरणतः श्रीमान चतुर्भिः समयैः पुनः ॥२१६८॥

लोकपूरण समुद्घातके पश्चात् चार समयोंमें प्रदेशोंकी देहसमता—श्रीमान केवली भगवान। अहो, भगवानको ही श्रीमान कहना चाहिए वस्तुतः। लोकव्यवहारकी पद्धति तो सबके साथ श्रीमान लगानेकी है—श्रीमान घसोंटेमल जी, श्रीमान लटोरेमल जी आदि। पर श्रीमान शब्दका प्रयोग वस्तुतः प्रभुमें ही लगेगा। श्री कहते हैं—श्रयते इति श्रीः। जो आत्मा का आश्रय करे उसका नाम है श्री। उस श्रीको कहाँ ढूंढ़ रहे हो ? वह श्री उस आत्मामें है, आत्माका आश्रय करना है। आत्मामें पूर्ण विकास हुआ है, उसका नाम है श्री। वह श्री है ज्ञानलक्ष्मी, परिपूर्ण केवलज्ञानसे युक्तको कहते हैं श्रीमान् तो इस अंतरंगकी श्रीसे शोभायमान वे केवली भगवान लोकपूरण समुद्घात करके अब वापसी संकोच प्रदेश करते हुए वे अपने आपके देहमें समा जाते हैं जिसमें चार समय लगते हैं।

काययोगे स्थितिं कृत्वा वादरेऽचिन्त्यचेष्टितः।
सूक्ष्मीकरोति वाक्चित्तयोगयुग्मं स वादरम् ॥२१६९॥

अचिन्त्यचेष्टित प्रभुके योगोंका सूक्ष्मीकरण—देखिये—प्रभुके विहारका समय बहुत वर्षों तक भी चलता है, सो किसी प्रभुका विहारमें बहुत समय व्यतीत हो गया। भगवानके दिव्य उपदेशसे भी इन तीनों लोकके प्राणियोंने लाभ प्राप्त किया। अब सयोगकेवलीके अंतिम अन्तर्मुहूर्तकी स्थिति बतायी जा रही है। समुद्घात किया और समुद्घात करनेके बाद अब उनके लिए काम और कुछ नहीं पड़ा। काम तो पहिले भी न था, पर जैसे विहार होना,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दिव्य उपदेश होना, ये कार्य होते थे, अब इनका भी समय न रहा। अब तो सयोगकेवली होकर शीघ्र ही निर्वाण प्राप्त करेंगे। भगवान अरहंतको १३वें गुणस्थानमें सयोगकेवली शब्द से पुकारा गया है। केवली तो हैं किन्तु सयोगी हैं, योग सहित हैं। मनोयोग, वचनयोग, काययोग ये तीन प्रकारके योग अभी उनके चल रहे हैं, पर इस समय अब क्या होना चाहिए जिससे भगवानका उत्कर्ष बढ़े ? तो योग मिटना चाहिए। अयोगकेवली बनना है तो भगवान के योग किस तरह दूर होते हैं, उसका अब यह वर्णन है। वह प्रभु अपने आपके अंतरङ्गमें क्या किया करते हैं और बाहरमें उनकी क्या प्रवृत्ति हो रही है, यह बता रहे हैं। उन भगवानके योगनिरोधकी बात कही जा रही है।

वादरवचनयोग व वादरमनोयोगका सूक्ष्मीकरण—वे प्रभु उस समय वादरकाययोग में स्थित होकर वचनयोगका निरोध करते हैं। इससे पहिले श्वासोच्छ्वासका निरोध होता है। प्रभुके वचनयोग, काययोग वचनबल कायबल आयु और श्वासोच्छ्वास—ये चार प्राण माने गए हैं। आयुका निरोध नहीं किया जाता। यहाँ मनोयोगकी बात निरोधमें आयगी सो निरोधकी चीजें चार हैं—श्वासोच्छ्वास, वचनयोग, मनोयोग, काययोग। उनमें सबसे पहिले श्वासोच्छ्वास समाप्त हो जाता है। जब श्वासोच्छ्वास पूर्णरूपसे रुद्ध हो जाता है तब योगोंमें से सबसे पहिले वादरवचनयोगको वे सूक्ष्म कर देते अर्थात् वादरवचनयोग नहीं रहता। अब सूक्ष्मवचनयोग रहा। इसके पश्चात् वादरमनोयोगको भी सूक्ष्म करते हैं। वादरमनोयोग भी नहीं रहा। शरीरके जो द्रव्य मनकी रचना है उस मनके स्थानपर मनोवर्गणायें आती रहती हैं। अब इस समय मनोवर्गणाका रुकाव हो गया, वादरमनोयोग नहीं रहा, अब सूक्ष्म मनोयोग रहा। इस प्रकार वादरवचनयोग और वादरमनोयोगोंको भगवानने सूक्ष्म कर दिया अर्थात् वादरमनोयोग नहीं रहा। सूक्ष्मवचनयोग और काययोग अभी बने हैं।

काययोगं ततस्त्यक्त्वा स्थितिमासाद्य तद्वये।
स सूक्ष्मीकुरुते पश्चात् काययोगं च वादरम् ॥२१७०॥

वादरकाययोगका सूक्ष्मीकरण—यह योग क्या चीज है ? आत्माके प्रदेशोंके कम्पन का नाम, हलनका नाम योग है। जैसे आप जब गुस्सा कर रहे हैं, शरीरसे अनेक प्रकारके कार्य कर रहे हैं तो उस समय आत्माके प्रदेश ज्यादह हिलते हैं। यह बात तो झट मान ली जाती है, और जब कभी आप एक पद्मासनसे निश्चल आसनसे बैठे हुए हैं जहाँ रंच भी देह का हलन नहीं हो रहा तो उस समय भी आपके आत्माके प्रदेश भीतर कम्पन कर रहे हैं। जैसे किसी बटलोहीमें पानी भरकर उसे गर्म किया जा रहा है तो उसमें अन्दर ही अन्दर बिन्दुवें उठकर यत्र तत्र भ्रमण करती रहती हैं, इसी प्रकार आत्माके प्रदेशोंमें भी एक कम्पन सा होता है। उस कम्पनका नाम है योग। ये योग हम आप सबके चल रहे हैं। अब सयोग-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

केवली भगवान अयोगकेवली होनेको हैं जहाँ योग नहीं रहेंगे, निष्कम्प अवस्था रह गयी। उस अवस्था रहनेके पहिले योग किस तरह समाप्त होते हैं उसकी विधि बतायी जा रही है। अब वे भगवान काययोगको छोड़कर वचनयोग और मनोयोगमें ठहरकर वादरकाययोगको सूक्ष्म करते हैं। एक समयमें एक जीवके एक योग रहा करता है। जैसे किसी एक सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुणस्थान वाले जीवके योग पाये जायेंगे कितने ? आहारकाययोग, आहारक मिश्रकाययोग और योगरहितके बिना ग्यारह योग तो चतुर्थ गुणस्थानमें होते हैं, किन्तु औदारिकद्वय व वैक्रियकद्वय एक सम्यग्दृष्टिके नहीं पाये जाते। एक सम्यग्दृष्टिका अर्थ है चाहे वह देव हो, चाहे नारकी नारकी हो या मनुष्य हो, या संज्ञी तिर्यंच हो, कोई एक ले लो। तो अगर मनुष्य सम्यग्दृष्टि है तो वैक्रियक काययोग, वैक्रियक मिश्रकाययोग न हो सकेंगे। तब ग्यारह योग होंगे। उन ग्यारह योगोंमें एक साथ उनकी वृत्ति नहीं है। कार्माणकाययोग तो विग्रह गतिमें था, औदारिक मिश्रकाययोग जन्मस्थानपर पहुंचनेपर था अब नहीं रहा। अब तो ६ योग चल रहे। उनमें भी एक समयमें एक योग रहेगा, शेष ८ न रहेंगे। यहाँ सयोगकेवली की बात चल रही है, सो ये किसी एक योगमें रहकर अन्य योगका निरोध करते हैं। काय-योगसे सूक्ष्म काययोगका नम्बर आया तो वे अरहंत भगवान या तो वचनयोगमें आ जायेंगे या सूक्ष्म मनोयोगमें आयेंगे। उस समय वादरकाययोगको कृश कर दिया जायगा। तो अब वादरकाययोग भी उनके नहीं रहा। तब क्या रहा ? सूक्ष्मवचनयोग, सूक्ष्ममनोयोग और सूक्ष्मकाययोग। अब इन तीनों योगोंका निरोध कैसे होता है ? उसे बताते हैं।

काययोगे ततः सूक्ष्मे स्थितिं कृत्वा पुनः क्षणात्।
योगद्वयं निगृह्णाति सद्यो वाक्चित्तसंज्ञकम् ॥२१७१॥

सूक्ष्मकाययोगमें स्थित प्रभुके समस्त वचनयोग व मनोयोगका विनाश—अब वे भगवान सूक्ष्मकाययोगमें स्थिति करके सूक्ष्मवचनयोग और सूक्ष्ममनोयोगको नष्ट कर देते हैं, इस समय वे भगवान केवल सूक्ष्म काययोगमें रह गये। और वादरकाययोग सभी मनोयोग और सभी वचनयोग, ये दूर हो गये। इस समय प्रभुमें सूक्ष्मकाययोग रह गया। यह स्थिति बतायी जा रही है उन अरहंत भगवानके अन्तिम समयकी, जिसके बाद उनको अयोगकेवली भगवान की स्थिति प्राप्त होनी है। जिस समय समस्त योगोंको नष्ट करके सूक्ष्मयोगमें आ गए तो क्या होता है, उसका वर्णन करते हैं।

सूक्ष्मक्रियं ततो ध्यानं स साक्षात् ध्यातुमर्हति।
सूक्ष्मैककाययोगस्थस्तृतीयं यद्धि पठ्यते ॥२१७२॥

सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपाति शुक्लध्यानके अधिकारी—तदनंतर उनके सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपाती नामका तृतीय शुक्लध्यान प्रकट होता है। अब आपने जाना होगा कि यह तीसरा शुक्लध्यान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

न तो मनोयोगके समय रहा। सिर्फ औदारिक काययोगके समय जब कि सूक्ष्म काययोग रहा तब यह सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपाति शुक्लध्यान हुआ। जहाँ सूक्ष्म काययोग रहा वह है सूक्ष्मक्रिय, अब ये अयोगकेवली अवस्थामें पहुंचनेके सम्मुख हैं उस समय यह सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपाती नाम का शुक्लध्यान प्रकट होता है। यह इस समय सूक्ष्मकाययोगमें विराजे हैं। यहाँ उनका तृतीय शुक्लध्यान है। यह प्रकरण शुक्लध्यानका चल रहा है। पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यान ८वें गुणस्थानसे लेकर ११वें गुणस्थान तक अविरल रूपसे रहा और क्षपक श्रेणीसे चलने वाले साधुवोंके १०वें गुणस्थानके बाद सीधा १२वां गुणस्थान होता है। तो उसके प्रारम्भमें थोड़े समय पहिले शुक्लध्यान रहता है, बादमें यह द्वितीय शुक्लध्यान होता है। देखिये सब शुक्लध्यानोंका प्रताप वर्तमान शुक्लध्यानके बलसे तो मोहनीय कर्मका नाश हुआ था और द्वितीय शुक्लध्यानके बलसे शेष तीन घातिया कर्मोंका नाश हुआ। अब इस सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपाति नामक शुक्लध्यानके बलसे बहुत कर्मोंकी स्थितियाँ अनुभाग ये सब जीर्ण शीर्ण हो जाते हैं। उस समय केवल ८५ प्रकृतियाँ शेष रहती हैं, उनकी कैसे निर्जरा होती है, इसकी बात आगे कहेंगे।

द्वासप्ततिर्विलीयन्ते कर्मप्रकृतयो द्रुतम्।
उपान्त्ये देवदेवस्य मुक्तिश्रीप्रतिबन्धकाः ॥२१७३॥

आत्मशोधनके अतिरिक्त अन्य कार्यकी अकार्यता––लोकमें सार मात्र इतना है कि यह जीव अपने आपके आत्माकी शुद्धि प्राप्त कर ले। ये बाहरी उपाधि, पर बंधन आदि जो कुछ हैं वे सारे दूर हो जायें तब आत्माका शुद्ध विकास हो, आत्मामें निराकुलता जगे। इससे बढ़कर लोकमें कोई और कार्य भी कहा जा सकता है क्या? एकका भाई गुजर गया तो लोग उसके पास आये सहानुभूति प्रकट करनेके लिए और कोई यह भी पूछ बैठा कि तुम्हारा भाई अपने जीवनमें क्या कर गया? तो वह उत्तर देता है––क्या बतायें यार क्या कारोनुमाया कर गए। बी. ए. किया, नौकर हुए, पेन्सन किया और मर गए। सबकी हालत यही है––व्यापार करने वाले भी क्या कर जाते हैं? कुछ सीखा, कुछ उसमें प्रवेश किया, व्यापार किया, धनी बने और मर गए। यों सबकी यही हालत है, चाहे धनी हो, चाहे विद्यावान हो। ये धनिक लोग, ये विद्वान् लोग कल्पना करते हैं कि इस देशमें हम नाम कमायेंगे, इतिहासमें हमारा नाम चलेगा। अरे यहाँके मरे इस ३४३ घनराजू लोक प्रमाणमें न जाने कहाँ के कहाँ पैदा होंगे? और इतने बड़े लोकके आगे यह थोड़ीसो परिचित दुनिया कुछ गिनती भी रखती है क्या? तो इस लोकमें सारभूत काम मात्र यही है कि जिस प्रकार भी बने आत्मशुद्धि प्राप्त कर लें। मिथ्यात्वमें सारे संकट हैं। कषायोंमें किसीको चैन नहीं मिलती। ऐसी वाञ्छाको ही तो निदान कहते हैं और निदान आर्तध्यानमें शामिल हैं। लोकमें सार अन्य कुछ कार्य नहीं है। केवल आत्मशुद्धि प्राप्त हो, यही एक उत्कृष्ट कार्य है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शुक्लध्यानोंका प्रताप—जो पुरुष वस्तुस्वरूप जानकर यथार्थ तत्त्ववेदी बने, संसार शरीर भोगोंसे विरक्त हुए, आत्मशुद्धिके मार्गमें जिन्होंने कदम बढ़ाया, अंतस्तत्त्वकी धुनि बनी ऐसे पुरुष सर्वका परिहार करके, मूर्छा दूर करके निर्ग्रन्थ आत्मसाधन किया, और उस साधना के फलमें श्रेणीपर चढ़े, क्षपकश्रेणीसे चढ़कर प्रथम शुक्लध्यानके प्रतापसे चारित्र मोहनीयकी शेष २१ प्रकृतियोंका क्षय किया और क्षीणमोह गुणस्थानवर्ती बनकर शेष तीन घातिया कर्मों का विनाश किया और अब चार घातिया कर्मोंके नष्ट होनेपर वे अरहंत प्रभु हुए, सयोगकेवली बने, तब उनके योग भी समाप्त हो जाते हैं, सूक्ष्मकाययोग भी नष्ट हो जाता है सूक्ष्मक्रियाप्रति-पाति ध्यानके प्रतापसे, तब वे अयोगकेवली होते हैं। अयोगकेवली भगवानके उपान्त्य समयमें ७२ प्रकृतियोंका विलय हो जाता है। कर्मोंकी कुल १४८ प्रकृतियां होती हैं, जिनमेंसे ६३ प्रकृतियोंका अभाव होनेपर अरहंत अवस्था बनती है। शेष रहती हैं ८५ प्रकृतियां, जिनमें ७२ प्रकृतियोंका कर्मोंके प्रकारोंका उपान्त्य समयमें विनाश होता है। जिस आत्माके यह बात हो रही है आदर्श तो वही है, संसारके संकटोंसे सदाके लिए छूट जाने वाला आत्मा है। इतना दृढ़ निर्णय बनायें कि मनुष्यजीवन पाया है तो सम्यक्त्व प्राप्त करें और चारित्रमें अपना कदम बढ़ायें, जिससे स्वानुभूतिमें हमारी स्थिरता रहे। संसार संकटोंको नष्ट करनेका अमोघ उपाय रच डालें, यही जगतमें सारभूत काम हैं।

तस्मिन्नेव क्षणे साक्षादाविर्भवति निर्मलम्।
समुच्छिन्नक्रियं ध्यानमयोगिपरमेष्ठिनः ॥२१७४॥

अयोगकेवली भगवानके समुच्छिन्नक्रिय शुक्लध्यानका आविर्भाव—भगवान अयोग-केवली परमेष्ठीके साक्षात् निर्मल समुच्छिन्नक्रिय नामका चतुर्थ शुक्लध्यान उत्पन्न होता है। उस शुक्लध्यानके प्रतापसे ७२ प्रकृतियोंका नाश किया था। अब शीघ्र ही शेष तेरह प्रकृतियों का विनाश करके गतिरहित हो जायेंगे। जीवोंमें जो खोज की जाती है वह एक सपर्यायताके रूपसे की जाती है। जैसे जीव ५ प्रकारके हैं—नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव और गतिरहित। लेकिन यह पहिचानिये कि जिसपर ये ५ अवस्थायें बीतती हैं, वह स्वरूपतः है क्या? जो इन ५ अवस्थावोंमें एक ध्रुव तत्त्व है वह स्वरूप, उसकी पहिचान करनेके लिए, उसका परिचय और अनुभव करनेके लिए ये समस्त ज्ञान बताये गए हैं। उसे कारणपरमात्मतत्त्व कहो, कारणसमयसार कहो, शुद्ध स्वरूप, चैतन्यभाव किन्हीं भी शब्दोंसे कहो—उसका ध्यान जिसने पाया, उसकी ज्योति जिसके प्रकट हुई है वह ही धन्य है, वह ही संसारसंकटोंसे छूट-कर सदाके लिए अनंत आनंदस्वरूप बना है। यहाँ चरम साधक अयोगकेवली भगवानके समु-च्छिन्नक्रिय नामक शुक्लध्यान होना बताया जा रहा है। ध्यान तो क्या है, चित्त तो है नहीं, न वे संज्ञी हैं, न असंज्ञी हैं, जिस स्थितिमें कर्म झड़ते हैं वह स्थिति इस ध्यानमें पाई जाती

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। विशुद्ध ध्यान बने तो कर्म झड़ते हैं। तो कर्म झड़नेकी बात सुनकर वहाँकी स्थितिका किसी विशेषणसे नाम तो लिया जायगा। वह है समुच्छिन्नक्रिया। इसके बाद क्या होता है अयोगकेवली भगवानके सो सुनो।

विलयं वीतरागस्य पुनर्यान्ति त्रयोदश।
चरमे समये सद्यः पर्यन्ते या व्यवस्थिताः ॥२१७५॥

अयोगकेवलीके अन्तसमयमें अवशिष्ट समस्त प्रकृतियोंका विनाश—फिर उस अयोगकेवली भगवानके अन्तिम समयमें शेष बची हुई तेरह प्रकृतियोंका विलय हो जाता है। देखिये सब ही अरहंतोंके तेरह प्रकृतियां अन्तमें नहीं रहतीं। किसीके बारह शेष होती हैं, किसीके तेरह। तीर्थंकर प्रकृतिके उदय वाले जो तीर्थंकर हैं उनके तीर्थ प्रकृति होनेसे तेरह प्रकृतियां कही जाती हैं, जो तीर्थंकर तो नहीं हैं किन्तु उत्कृष्ट मुनिराज होकर जिन्होंने कर्मोंका विनाश किया है उनके बारह प्रकृतियोंकी सत्ता होती है। जिनके बारह प्रकृतियां हैं उनके बारहका विनाश होता है, जिनके तेरह प्रकृतियां हैं उनके तेरहका विनाश होता है। इस प्रकार वे समस्त कर्मोंसे रहित हो जाते हैं और उस ही क्षण उनका शरीर कपूरकी तरह उड़ जाता है और वे इस संसारसे अनंतकालके लिए विदा हो जाते हैं। उस समय विदाई देनेके लिए देव देवेन्द्र आते हैं मोक्षकल्याणक मनानेके लिए। यहाँ भी कोई किसी अच्छे देश जा रहा हो, जहाँ कि सुख साधन और उत्कर्ष बहुत हो सकते हों तो ऐसे देशमें भेजनेके लिए विदाईके समय यहाँ कितने लोग उपस्थित होते हैं और कितना ठाठसे भेजते हैं। फिर भला बतावो—जो पुरुष इन सांसारिक विपदाओंसे सदाके लिए हटकर आनंदमय मोक्ष अवस्थामें जा रहा हो और वह हम आपके बीच बहुत बड़े परिचयमें था गृहस्थावस्थामें, मुनि अवस्थामें, अरहंत अवस्थामें, जिनके चरण रजको मस्तकपर चढ़ाकर हम अपना अहोभाग्य समझते थे, भला ऐसे प्रभुका मोक्षकल्याणक मनानेके लिए कितने ठाठ और उत्साह मनाये जाते होंगे ?

तदासौ निर्मलः शान्तो निष्कलङ्को निरामयः।
जन्मजानेकदुर्वारबन्धव्यसनविच्युतः ॥२१७६॥

निर्मल शान्त निष्कलङ्क परमेष्ठित्व—उस समय ये भगवान निर्मल हो जाते हैं, निर्मल तो ये अरहंत अवस्थामें हो गए थे। कोई विकार नहीं रहा, विशुद्ध ज्ञान, परम वीतराग दशा, अनंत आनंद। सिद्ध परमेष्ठीसे अरहंत भगवानके कोई कमी नहीं रही अनुभवनमें, परिणमनमें, सर्वज्ञतामें, आनंदमें, लेकिन ऊपरी पिटारा जो पहिलेसे लदा आया है और कुछ अघातिया कर्म जो कि गुणका घात करनेमें तो समर्थ न थे, पर पहिलेसे ये जुटे आये हैं, इनका अब वियोग होता है, तो उस मलसे भी दूर हो जाते हैं। वे प्रभु शान्त हैं, निष्कलङ्क हैं, कल ही नहीं है तो कलङ्क कहांसे आये ? जितनी भी आपदायें हैं वे सब कलसे उत्पन्न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होती हैं, कल मायने शरीर। जैसे लोग कहते न कि हमें कल-कल नहीं सुहाता तो वह कल-कल क्या है? वहाँ शरीर ही शरीर हैं, वे शरीर एक दूसरेसे भिड़ रहे हैं, होहल्ला कर रहे हैं, वह ही कल-कल है। तो वे प्रभु कलसे भी रहित हैं, कलंकसे भी रहित हैं।

निरामय निरापद सिद्ध परमेष्ठित्व—प्रभु रोगरहित भी हैं। जब शरीर ही नहीं है तो रोग कहाँ ठहरें, दर्द कहाँ हो? जन्मजरामरण आदिक सभी रोग उनसे विनिर्मुक्त हो गए हैं, जन्मसे ही उत्पन्न होने वाली अनेक दुर्गन्धियोंके पदसे वे मुक्त हो गए हैं। मोही जन तो अपना थोड़ासा यश फैल जानेपर अपनी चतुराई समझते हैं, कदाचित् देव दर्शनके लिए भी जायें तो उनके चित्तमें उस देवकी महत्ता नहीं ज्ञात होती किन्तु देव दर्शन करनेके ढंगसे उन्होंने अपना ही बड़प्पन बना लिया। देव तो होगा कोई, बुद्धिमान तो हम हैं, लोकमें हमारा कैसा यश है, लोकसे हम कैसी अपनी कला दिखाते हैं, लेकिन ये सब कलायें, ये सब वैभव, ये सब स्वप्नकी बातें ये क्या काम देंगे, ये ही बन्धन हैं, विपदा हैं मुझमें। सीधा सादा समझना हो तो इतने शब्दोंमें समझा जा सकता है कि हमें जो कुछ मिला है जो समागम मिला है, जिसके बीच हम हैं, ये सब व्यसन हैं, बन्धन हैं, उपाधियां हैं, इनमें रमनेसे हमें कल्याण न मिल सकेगा। निरखते रहिए अपने आपमें बसे हुए शुद्ध सनातन स्वरूपको। ऐसी धुनिमें रहकर यदि कुछ वैभव कम हो जाय, व्यापार कम हो जाय, कैसी ही परिस्थितियां आ जायें वे कोई भी मेरे बाधक नहीं हैं। वे समस्त परिणतियां बाह्य पपार्थोंकी हैं, मैं तो अपने आपके आनन्दपुञ्ज प्रभुसे मिल रहा हूँ, फिर मेरे लिए क्या बाधा है? तो जन्मसे उत्पन्न होने वाले समस्त बंध व्यसनोंसे अब ये प्रभु रहित हो गए हैं।

सिद्धात्मा सुप्रसिद्धात्मा निष्पन्नात्मा निरञ्जनः।
निष्क्रियो निष्कलः शुद्धो निर्विकल्पोऽतिनिर्मलः ॥२१७७॥

प्रभुका सिद्धात्मत्व—ये प्रभु अब सिद्धात्मा हो गए। जिनका आत्मा सिद्ध हो गया, पक गया, विकसित हो गया, परिपूर्ण अवस्थाको प्राप्त हो गया, अथवा समस्त दुर्गतियोंसे निकलकर उत्तम स्थानमें पहुंच जानेको सिद्ध होना कहते हैं। ये प्रभु योगी जनोंके उपयोगमें सुप्रसिद्ध हैं, निष्पन्न आत्मा हैं, जो यथार्थतया होना चाहिए वह निष्पत्ति अब हुई है, जो था वैसा हो गया। मोहीजन ऐसा कह सकते हैं कि हे प्रभो! तुम्हारी क्या बढ़ाई? तुम क्या हो, जो थे सो ही रह गए। तुम तो उतने ही हो ना, और देखो हम लोगोंमें कैसी शक्ति है कि चौरासी लाख योनियोंमें घूमते फिरते हैं, एकेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय तकके नाना शरीरोंमें रहते हैं, अनेक प्रकारकी लीलाएँ करते हैं, पर भाई यह तो सारा दुःखजाल है, एक अपने आपके उस निरपेक्ष सहजस्वरूपको जाने बिना ये सारी विडम्बनायें बन गईं। निष्पन्न आत्मा तो वह प्रभु है जिसको अब कुछ भी नहीं बनना है। जो उच्चसे उच्च बात आत्मा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

की हो सकती है वह वहाँ प्रकट हुई है।

प्रभुका निरञ्जनत्व—वे प्रभु निरञ्जन हैं, अञ्जनरहित हैं। अब न उनमें कोई कर्म है, न कोई रागद्वेषादिक भाव हैं, न शरीर है। सब अञ्जनोंसे रहित निरञ्जन हो गए। लोग अपना नाम रखते हैं तो प्रायः भगवानके नामपर या आत्मविकासके नामपर रखते हैं। लोक में उसका महत्त्व कूतते तो हैं पर अपने आपमें अच्छा नाम कहलवा लेना यहाँ तक ही वे उस महत्त्वको समाप्त कर देते हैं। जिन नामोंमें इतनी रुचि हुई है उन नामोंके अनुरूप जिनका विकास हुआ है उनका आदर्श समझना चाहिए, जिसके अनुसार हम अपना उत्कर्ष कर सकें। ये प्रभु निष्क्रिय हैं। अब उनको कुछ करनेको नहीं रहा, कृतार्थ हैं, वास्तविक सुख भी वास्तवमें तभी है जब यह भाव बना हो कि मेरे करनेको तो अब कुछ भी नहीं रहा। इच्छा हुई कि चलो मंदिर चलें तो इस इच्छाके साथ ही है ना कुछ क्लेश ? मंदिर जाना है, मंदिर जानेका काम पड़ा है ऐसा भाव बना है जिससे वहाँ क्लेश है। यह बात एक ऊँचे दृष्टान्तके रूपमें कही। बात यह है कि शान्ति अथवा सुखकी प्राप्ति तभी होती है जब यह भाव बने कि मेरे करनेको अब यह काम नहीं रहा। जिन लोगोंको भी इन रात दिनके चौबीस घंटोंके अन्दर जो कुछ शान्ति व सुखकी प्राप्ति हो रही है वह इसी भावसे कि अब मेरे करने को कुछ रहा नहीं, पर इसपर दृष्टि नहीं है किसीकी, दृष्टि तो इस बातपर जाती है कि मुझे ये ये चीजें प्राप्त हुईं, इससे सुख मिला। तो वे प्रभु कृतार्थ हैं, निष्क्रिय हैं।

प्रभुकी परम शुद्धता—प्रभु शरीररहित हैं, शुद्ध हैं, निर्विकल्प हैं और अत्यन्त निर्मल हैं। जो बात जिस विधिसे होती है वह उस ही विधिसे प्राप्त की जा सकती है—चाहें तो किसी अभीष्ट पदार्थको, पर उसमें अपना पुरुषार्थ न लगायें तो प्राप्ति नहीं होती। एक बालक बोला—माँ मुझे तैरना सिखा दो।····अच्छा बेटा सिखा देंगी।····माँ तैराना सिखा तो देना पर मुझे पानीमें पैर न रखना पड़े और मुझे तैरना आ जाये।···अरे भाई यह बात तो हो ही नहीं सकती। तैरना सीखनेके लिए पानीमें पैर धरनेकी तो बात क्या, पानीमें एक दो बार डूबने जैसी भी स्थिति आयगी, तब तैरना सीख पायेगा। ऐसे ही लोग सोचते हैं कि काम तो हमारा अच्छा बन जाय, धर्मका पालन हो जाय, कर्म कट जायें, सद्गति मिले, मुक्ति हो जाय, पर उसकी जो विधि है, जो कार्य करने आवश्यक हैं इस परमपदकी प्राप्तिके लिए उन कार्यों के करनेके क्या समाचार हैं उन्हें भी तो जानें। बहुत अधिक न जानो तो एक बात पकड़ लीजिए कि मैं क्या हूं ? जगह-जगह पूछ करके, चर्चा करके, विचार करके, ध्यान करके यह निर्णय बना लीजिए कि मैं क्या हूं ?

स्वपरिचय बिना कल्पित दुःसह क्लेशका अनुभवन—उस मैंको ही तो भूल गए लौकिक प्राणी, इसलिए दुःखी हो रहे हैं, रो रहे हैं। एक कोई लड़का था उसका नाम था

Report any errors at ukasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रुलिया। उसकी माँ ने एक दिन साग भाजी लेनेके लिए बाजार जानेको कहा। वह लड़का बोला—माँ मुझे न भेजो बाजार, कहीं मैं रुल न जाऊँ। तो उस माँने क्या किया कि उसके हाथमें एक धागा बाँध दिया और कहा—जावो बेटा, अब तुम न रुलोगे। आखिर हुआ क्या, कि वह धागा बाजारमें भीड़भाड़में टूट गया, वह रोने लगा। रोते रोते घर लौट आया और कहने लगा—देखो माँ मैं कहता था ना, कि मुझे बाजार न भेजो साग भाजी लेने, कहीं मैं रुल न जाऊँ। तो वही हुआ ना। तो उस मांने कहा—बेटा तू हैरान मत हो, कुछ देरके लिए सो जा, तेरा रुलना मिल जायगा। जब वह सो गया तो उसके हाथमें एक धागा बाँध दिया। जब वह सोकर जगा तो मांने पूछा—देख बेटा अब तू मिल गया ना?···हाँ मिल गया। तो ऐसे ही समझो, ये सब खुद खुदको भूले हैं, बस इसीसे दुःख है। दुःखकी यहाँ और कोई बात नहीं। अपना लक्षण पहिचानो—मैं क्या हूं, यह निर्णय करो और इसपर ही डट जावो—कि मैं यह हूं। उसको ही निरखते रहो चावसे, और कुछ भी नहीं देखना है। यहाँ किसे देखना, किसको क्या दिखाना, कौन क्या करेगा, यों धुनसे आत्मदर्शन करें तो यह सब मोक्षपथ मिलेगा।

आविर्भूतयथाख्यातचरणोऽनंतवीर्यवान्।
पराशुद्धि परिप्राप्तो द्रष्टेर्बोधस्य चात्मनः ॥२१७८॥

आत्माके यथार्थ परिज्ञानसे उत्कर्षताकी प्राप्ति—कर्मोंका यथायोग्य क्षयोपशम पाकर ज्ञानी संतोंके उपदेशसे अपने चित्तको धर्मकी ओर अग्रसर करके विशुद्ध परिणामोंके उत्तरोत्तर निर्मलताके बलसे उच्च परिणामोंके द्वारा जब मिथ्यात्व कर्मका विश्लेष कर दिया जाता है, सम्यक्त्व उत्पन्न होता है तब इस जीवको विदित होता है कि अहो, मैं तो यह स्वयं आनन्द की निधि हूं। यहाँके तो सभी पदार्थ परिपूर्ण हैं, मेरेमें भी कुछ अधूरापन नहीं है। मुझे क्या बनना है, जो हूं सो सब बना हुआ हूं। इस तत्त्वज्ञानके बलसे जिसने सहज आनंद प्राप्त किया है, निज प्रभुताके दर्शन किए हैं ऐसा महाभाग महात्मा चारित्रके बलसे परम निर्ग्रंथ आत्मस्वरूपका अनुभव करके श्रेणियोंमें चढ़कर प्रथम शुक्लध्यानके अनुभवसे मोहनीय कर्मका क्षय करता है और द्वितीय शुक्लध्यानके बलसे शेष अघातिया कर्मोंका विनाश करता है और फिर योगोंका निरोध करके अयोगकेवली होकर एक साथ चार घातिया कर्मोंका विनाश करके सिद्ध होता है।

जीवकी चिरन्तन अवस्थायें—इस जीवकी चिरकाल तक रहने वाली दो अवस्थायें हैं—एक तो निगोदकी दशा और १ सिद्ध अवस्था। इस जीवको निगोद अवस्थामें अनंतकाल तक रहना पड़ा था। अब सिद्ध अवस्था पायेंगे तो वह अनंतकाल तक रहेंगे। वे अयोगकेवली प्रभु अब हिलते-डुलते नहीं, योगी नहीं। सिद्ध भगवान भी योगरहित होते हैं उन्हीं जैसी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निष्कम्पता पाई है देखिये--कैसा तो ज्ञानपुञ्ज स्वरूप आत्मा, उसका क्या सम्बंध कि वह हिले डुले। ज्ञानपुञ्ज अपने आपके अन्दर ही रहकर जलबिन्दुवोंकी तरह चक्कर लगाया करे इसका क्या अवकाश था, कैसा विकार हुआ, कैसा विभाव हुआ कि संसार अवस्थामें इस आत्माके, चाहे शरीर निश्चल भी बैठा हो तब भी भीतर ही भीतर प्रदेश परिस्पंद रूप हुआ करते हैं, किन्तु अब आधार शरीरसे विविक्तता हो रही, अतएव उनके प्रदेश परम निष्क्रिय हो गए। सिद्ध भगवान शरीररहित हैं। परमात्मा दो प्रकारके कहे गए हैं—एक सकलपरमात्मा, दूसरा निकलपरमात्मा। कल मायने शरीर। शरीरसहित परमात्माको सकलपरमात्मा कहते हैं। यह अवस्था तेरहवें और १४वें गुणस्थानमें है। शरीर है और वीतराग भगवान भी हैं। अब अयोगकेवलीके अन्त समयमें शरीरका व अवशिष्ट कर्मोंका एक साथ वियोग होता है। तो अब ये सिद्ध भगवान कायरहित हो गए। ये प्रभु शुद्ध हैं, सर्वथा शुद्ध हैं। न द्रव्यकर्मका सम्बंध है न भावकर्मका, न रागादिक विकारोंका, न शरीरका। इन सबका अब त्रिकाल भी सम्बंध न होगा। ऐसे ये प्रभु निष्कल हैं।

विकल्प हटते ही प्रभुताकी स्वयंभुता—अंतरंगमें निरखते जाइये—जो सिद्ध प्रभुमें बात है वह सब अपने स्वरूपमें बात है, उनका विकास है और यहाँ शक्तिरूपमें है, अन्तर यही हो गया कि उनके समस्त गुणोंका विशुद्ध स्वाभाविक विकास है और यहाँ आवरण पड़ा हुआ है, यहाँ विषय कषायोंके विकार चल रहे हैं और अविकसितता हैं, पर होता क्या है वहाँ, जो है यहाँ, वही केवल रह जाता है। केवल हटने ही हटनेका काम है, जुड़नेका कोई काम नहीं। प्रभुता पानेके लिए केवल हटाने हटानेकी बात है, जो लगा हुआ रहेगा वह तो लगा ही है। कर्म विभाव विकार ये सब हटें तो जो तत्त्व है, जो परमार्थ है वह प्रकट हो जाता है। इसीके मायने हैं प्रभु हो गए, सिद्ध हो गए। वे प्रभु शुद्ध हैं, निर्विकल्प हैं, किसी भी प्रकारका विकल्प नहीं है। विकल्प तो बड़े-बड़े योगीश्वरोंकी साधनाको रोक देते हैं। पाँचों पाण्डव जब तपश्चरण कर रहे थे और उनके दुश्मनोंने बहुत गर्म लोहेके आभूषण उनके शरीरके अंगोंमें पहिनये थे। उस भयानक उपद्रवको देखकर नकुल और सहदेव दो भाइयोंको यह विकल्प हुआ कि देखो ये पवित्र निर्दोष धर्मात्मा तीन बन्धु किस तरहसे दुःसह उपसर्ग सह रहे हैं, लो इतनेसे विकल्पके कारण उन दोनोंका मोक्ष रुक गया।

प्रभुताकी प्राप्तिमें विकल्पकी बाधकता—बाहुबलि स्वामी निराहार एक वर्ष तक एक आसनसे तपश्चरण करते रहे, उनके बलकी महिमा क्या बतायी जाय, पर उन्हें तब तक केवलज्ञान नहीं हुआ, तब तक प्रभुता नहीं मिली जब तक उनको यह विकल्प रहा कि अरे मेरे कारण मेरे भाईका अपमान हो गया। जब उनको यह विकल्प था तब भरतेश्वर वहाँ गए और नमस्कार किया, उनकी सानुराग प्रसन्नताको देखकर उनका विकल्प हटा और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

केवलज्ञान प्राप्त हुआ। तो यह थोड़ासा भी विकल्प एक बहुत बुरी चीज है। यदि कोई तौलने की चीज होती विकल्प नो आपसे जब हम यह पूछते कि कितने विकल्प हैं आपमें, तो शायद आप क्विन्टलसे नीचे न कहते। पर वह विकल्प कोई तौलनेकी चीज नहीं। ऐसे विकल्पोंमें रहकर हम आप कैसे सुगति प्राप्त कर सकेंगे ? अरे इतना तो सोच लें कि जब कुछ रहना ही नहीं है अपने पास, आखिर वियोग होगा ही, हम सब कुछ छोड़कर जायेंगे, चाहे यहाँ रहते हुएमें छूट जायें, चाहे मरण होनेपर छूट जायें, पर छूटना तो है ही। तो जो बात छूटनी है उसकी हम आसक्ति न रखें और जो कल्याणकी बात है तत्त्वज्ञान, कुछ ध्यानका आश्रय चारित्रमें अपनेको बढ़ाना—इन सब बातोंकी ओर कुछ ध्यान दें तो भला भी हो जाय।

अयोगकेवली भगवानकी परम यथाख्यातरूपता—ये अयोगकेवली भगवान निर्विकल्प शान्त निर्मल हैं, जन्ममरण दूर हो गए। जिनके यथाख्यात चारित्र प्रकट हुआ, हुआ था, अब वे ऐसे परम यथाख्यात हैं, ऐला विशुद्ध स्वाभाविक उनका परिणमन है कि यथाख्यात चारित्र में उनकी उत्कृष्ट स्वाभाविक परिणति है जहाँ योग भी नहीं है। यद्यपि क्या बता सकें कि यथाख्यात चारित्रमें विशेष अधिक शुद्धता क्या है, किन्तु जहाँ चारित्रका व्यवहार है, जहाँ तक उसका कथन चलता है चरणानुयोगकी ही चरणविधिसे तो वह अतीत है। अब वे प्रभु असंयम, संयम, संयमासंयम—इन तीनोंसे रहित होने वाले हैं। शब्दोंसे यों लगावो कि जैसा आत्माका स्वरूप है वैसा ही प्रसिद्ध हो गया, ख्यात हो गया, ऐसा चारित्र, ऐसा चरण, ऐसी स्थिति उन प्रभुकी है। वे अनन्त वीर्यवान हैं। प्रभुमें क्या अनंत शक्ति है ? प्रभुमें जो अनंत गुण प्रकट हुए हैं वे अनंत गुण बराबर आत्मामें अनंतकाल तक बने रहें ऐसी बात उनमें चल रही है। वह उनकी उस अनंत शक्तिका ही प्रताप है। यों वे प्रभु अनंत शक्तिमान हैं।

अयोगी त्यक्तयोगत्वात्केवलोत्पादनिर्वृतः ।
साधितात्मस्वभावश्च परमेष्ठी परं प्रभुः ॥२१७६॥

अयोगी योगेश्वरकी परमेष्ठिता—यह ज्ञानार्णव ग्रन्थ ध्यानकी मुख्यतासे प्रतिपादन करता है। इस ग्रन्थकी रचना शुभचन्द्राचार्यने भर्तृहरिभाईको सम्बोधनेके लिए की। तो उस ध्यान विधिमें चूंकि बारह भावनाओंका भाना अधिक ध्यानका साधक होता है, सो भावनाओं के वर्णनसे इस ग्रन्थकी शुरुवात की, और दिव्य उपदेशसे अन्तमें ध्यानका वर्णन किया। यहाँ व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यानसे आत्माकी क्या स्थिति बनती है, उसका वर्णन है। अब वे प्रभु शरीरके बन्धनसे भी दूर हैं, कर्मोंसे भी निराले हैं और रागादिकके लवलेशसे भी दूर कुछ पहिलेसे हो हो गये हैं। जो मात्र कुछ है ज्ञानपुञ्ज वही उनके प्रकट है। ऐसी परम शुद्धिको प्राप्त हुए वे भगवान समस्त गुणोंकी सिद्धिसे विराजे हैं, जिनका दर्शन और ज्ञान अनंत है, परम शुद्ध है, वे योगरहित हैं और केवल जो कुछ आत्मामें स्वरूप है उस स्वरूपकी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही वहाँ रचनायें हैं। यह संसार तो एक मोहियोंका घर है। यहाँ रहनेके अधिकारी मोहीजन हैं। मोह न रहा तो अधिकार छिन गया, अब तुम जावो, तुम अब इस संसारमें रहनेके काबिल नहीं रहे। जब तक तुम मोह करते थे तब तक ही तुम इस संसारमें रहनेके काबिल थे। तो वे प्रभु अब सब प्रकारके मोहोंसे दूर हो गए, अत्यन्त शुद्ध हो गए, केवल रह गए, जो थे सो ही रह गए। यही स्थिति अत्यंत शुद्ध और अनंत आनंदमय है। अतः ये सिद्ध प्रभु संसारके संकटोंसे छूटनेकी इच्छा करने वाले योगीश्वरोंके ध्येय हैं और आदर्श हैं।

लघुपञ्चाक्षरोच्चारकालं स्थित्वा ततः परम्।
स स्वभावाद्व्रजत्यूर्ध्वं शुद्धात्मा वीतबन्धनः ॥२१८०॥

अयोगकेवलीका अतिशीघ्र लोकाग्रगमन—अब ये अयोगकेवली भगवान एक छोटे अन्तर्मुहूर्तमें अयोगकेवली गुणस्थानमें रहकर मुक्त हो रहे हैं—लघु जो ५ अक्षर हैं अ इ उ ऋ ऌ इन अक्षरोंके शीघ्र बोलनेमें जितना समय लगता है उतने ही समय इस अयोगकेवली गुणस्थानमें रहकर ये स्वभावसे ऊर्ध्वगमन करते हैं क्योंकि इनके सब प्रकारका बन्धन दूर हो गया। जैसे किसी तुम्बीमें राख भर दी जाय और उसे नदीमें डाल दिया जाय तो तुम्बी नीचे बैठती है। जैसे उसकी राख गल जाय, बिल्कुल अलग हो जाय तो वह तुम्बी स्वभावसे ही ऊपर आ जाती है, इसी प्रकार जब तक इस जीवमें शरीरविकारोंका मैल भरा है, भार लदा है, बन्धन पड़ा है तब तक यह जीव इस संसारमें रहता है, और जब ये सब दूर हों, ये भार ये धूल ये राख गल जायें तो निर्भार होकर यह जीव ऊर्ध्वगमन करता है। कुछ लोगोंका ऐसा ख्याल है कि यह जीव मरता है तो एक बार तो वह ऊपर जाता ही है, बादमें जहां जाता हो, चाहे नीचे जाय अथवा किसी भी दिशा विदिशामें जाय। तो भाई ऐसा नियम नहीं है, ऐसी बात नहीं है। यदि जीवको मरकर ऊपर जन्म लेना है स्वर्गादिकमें किसी भी जगह तो यह ऊपर जायगा और उदि नीचे ही जन्म लेना है तो सीधा नीचे चला जायगा। कर्मभारसे सहित है, ऊर्ध्वगमनस्वभावकी बात उसमें प्रकट नहीं हुई है। कदाचित् यह ऊपर भी जाता है संसार अवस्थामें तो वह स्वभावकी बात नहीं है। वह भी एक कर्मोंकी प्रेरणा है सो जाता है ऊपर। किन्तु, जब जीव सर्वबन्धनोंसे रहित हो जाता है तब इसका ऊर्ध्व गमन स्वभाव विकसित होता है, कोई बाधा नहीं आती है और यह ऊपर लोकमें चला जाता है और जहाँ तक लोक है वहाँ तक यह एक समयमें पहुंच जाता है।

अवरोधविनिर्मुक्तं लोकाग्रं समये प्रभुः।
धर्माभावे ततोऽप्यूर्ध्वगमनं नानुमीयते ॥२१८१॥

अयोगकेवलित्वके अनन्तर प्रथम समयमें ही निर्वाणभूमिसे निर्वाणक्षेत्रमें गमन—जब सर्व प्रकारके बन्धन जीवके कट जाते हैं तो इसका कोई विरोध करने वाला नहीं रहा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

फिर यह अपने ऊर्ध्वगमन स्वभावसे एकदम लोकके अग्रभाग तक पहुंचता है, आगे नहीं पहुंचता। लोकसे बाहर न पहुंचनेका एक हेतु है कि जहाँ तक लोक है, जहाँ तक गतिका हेतुभूत धर्मास्तिकाय है वहाँ तक गमन हुआ है। ये प्रभु लोकके अग्रभागमें ठहर गए, जितने भी सिद्ध हुए जहाँसे हुए वहीसे सीधे लोकमें विराजमान हैं, उनके मोड़े वाली गति नहीं होती। मोड़ेकी जरूरत भी नहीं। ४५ लाख योजन प्रमाण यह मनुष्य लोक है। यहाँसे जिस जगहसे मुक्त होंगे उसके सीधमें लोकके अग्रभागमें वे अवस्थित हो जायेंगे। सिद्ध लोक भी ४५ लाख योजन प्रमाण है। इस मनुष्य लोकमें कोई भी स्थान ऐसा नहीं मिलेगा जहाँसे अनेक सिद्ध न हुए हों। जिस स्थानपर हम आप अभी बैठे हुए हैं वहाँसे भी अनेक सिद्ध हुए। तब फिर यह निर्वाण क्षेत्र हुआ। इसकी लालसा कौन करे? यहाँ हम आप रहते हैं कहाँ ठहरें, कहाँ सोयें, कहाँ शौच जायें, आखिर सब यहीं तो करेंगे। इसकी महत्ता कौन जानता है? वे देव और देवेन्द्र चाहते हैं कि मैं इस मनुष्य लोकमें जन्म लूँ जहाँ निर्वाण क्षेत्र है। यहाँका एक-एक प्रदेश एक-एक जर्रा-जर्रा समझिये यह निर्वाणभूमि है जहाँ हम आप विराज रहे हैं। तो ये प्रभु लोकके अग्रभागमें पहुंचे हैं ऊर्ध्वगमन करके।

धर्मोगतिस्वभावोऽयमधर्मः स्थितिलक्षणः।
तयोर्योगात्पदार्थानां गतिस्थिती उदाहृते ॥२१८२॥

धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्यका निमित्तत्व—ये धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य क्या हैं? हैं ये सूक्ष्म अमूर्त तथा रूप, रस, गंध, स्पर्शसे रहित, किन्तु ये ऐसी एक असाधारणताको लिए हुए हैं कि जीव और पुद्गल गमन करें तो उनके गमनमें निमित्त होते हैं। जैसे कोई मुसाफिर गर्मीके दिनोंमें चला जा रहा है, रास्तेमें कोई वृक्ष मिला तो कुछ देर वह उस वृक्षके नीचे बैठकर विश्राम करता है। वृक्षने उसे बुलाया नहीं, किन्तु वह मुसाफिर स्वयं वहाँ जाकर ठहरता है, तो वह वृक्ष उसके ठहरानेमें उदासीन कारण है, ठहरने वाला ठहरना चाहे तो ठहर जाये, इसी प्रकार ये जीव जब चलें, उनका गमन हो तो उसमें यह धर्मद्रव्य सहायक निमित्त है और अधर्मद्रव्य चलते हुए जीव पुद्गल जब ठहरें तो उनके ठहरानेमें उदासीन निमित्त हैं। यह धर्मद्रव्य लोकाकाशमें ही रह रहा है, इससे बाहर नहीं, अधर्मद्रव्य भी बाहर नहीं। ऊर्ध्वगमनस्वभावी जब ये परमात्मा ऊपर गमन कर रहे हैं, तो जहाँ तक धर्मास्तिकाय है वहाँ तक इसका गमन बिना अविरोधके हो रहा है। जहाँ ये सर्वथा निष्कलङ्क आत्मा ठहरे हैं वह सिद्ध लोक है।

सिद्धत्वव्यवस्था—सिद्धके सम्बंधमें हिन्दी स्तवनमें कहते हैं कि—जो एक माँहि एक राजे एक माहि अनेकनो। एक अनेकनकी नहिं संख्या, नमो सिद्ध निरञ्जनो॥ इसका अर्थ यह है कि सिद्ध भगवान जो कि निरञ्जन हैं, द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मसे रहित हैं वे प्रभु सिद्ध

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लोकमें विराजे हैं । सो एकमें एक ही है वह, एकमें दूसरा सिद्ध नहीं है । वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है कि एक वस्तु दूसरी वस्तुमें नहीं समाती । यहाँ प्रदेशकी बात नहीं कह रहे, गुण पर्याय अनुभवन परिणमनकी बात चल रही है । जैसे एक घरमें रहते हुए उन गृहवासी चार आदमियोंमें परस्परमें प्रेम न हो, रहते हैं वे एक घरमें, पर हैं वे एक दूसरेसे निराले, विपरीत, उल्टे । किसीमें कोई लगा ही नहीं है । यह तो एक मोटी बात कह रहे हैं । वस्तुतः तो कोई भी जीव किसी अन्यमें लगा ही नहीं, तो ऐसे ही वे प्रभु सिद्ध लोकमें विराजे हैं, वहाँ अनंत सिद्ध हैं तिसपर भी उन सब सिद्धोंका परिणमन ज्ञान उनके प्रदेश एकका एकमें ही है । एकमें दूसरा समाया नहीं है । यों प्रभुका परिणमन एकका एकमें है, और एक माहि अनेकनो, सो बिल्कुल प्रकट बात है । इस ही जगहसे अनंत जीव मुक्त हुए हैं तो उन्हें और क्या कहा जाय ? एकमें अनेक विराज रहे यही कहा जायगा । तत्त्ववेदी पुरुष जब स्वरूपकी उपासना करता है तो कहता है कि एक अनेकनकी नहीं संख्या । उसके लिए न तो अनेक सिद्ध हैं और न एक सिद्ध है । उसकी दृष्टिमें तो एक शुद्ध चित्स्वरूप है । ऐसे निरञ्जन सिद्ध प्रभुको नमस्कार हो ।

तौ लोकगमनान्तस्थौ ततो लोके गतिस्थिती ।
अर्थानां न तु लोकान्तमतिक्रम्य प्रवर्त्तते ॥२१८३॥

पदार्थोंकी लोकानतिक्रमणता—कर्मके बन्धनमें फंसा हुआ यह जीव जब कर्मोंसे रहित होता है तो यह ऊर्ध्वगमन स्वभावके कारण ऊपर ही चला जाता है । कुछ लोग तो ऐसा मानते हैं कि वे ऊपर चले ही जा रहे हैं अब तक और अनंत काल तक चलते जायेंगे, किन्तु जैन शासनके अनुसार यह उपदेश है कि वे प्रभु एक ही समयमें एकदम लोकके अन्त तक पहुंच जाते हैं, उसके आगे क्यों नहीं गमन होता कि लोक इतना ही है । लोकसे बाहर केवल आकाश ही आकाश है, जीव पुद्गल आदिक अन्य द्रव्य नहीं हैं । धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय ये लोक पर्यन्त ही हैं, इस कारण पदार्थोंकी गति और स्थिति लोकमें ही होती है, लोकका उल्लंघन करके नहीं होती ।

स्थितिमासाद्य सिद्धात्मा तत्र लोकाग्रमन्दिरे ।
आस्ते स्वभावाजानंतगुणैश्वर्योपलक्षितः ॥२१८४॥

सिद्धात्माकी स्थितिका दिग्दर्शन—कहाँ पहुंच गए सिद्ध प्रभु ? वहाँ स्थित हो गए लोकके अग्रभागपर, वही है वास्तविक मंदिर, जहां साक्षात् निष्कलंक सिद्ध प्रभु विराजे हों । वहाँ कोई वेदना नहीं है, कोई लाग लपेट नहीं है । केवल आकाश ही आकाश है । जिस लोकके अग्रभागपर जाकर वे प्रभु विराजे हैं वह स्थान तो साक्षात् मन्दिर है । वहाँ वे प्रभु स्वभावसे उत्पन्न हुए अनंत गुणोंके ऐश्वर्यसे युक्त हैं । जैसे जब कोई काम बन जाय तो लोग

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कहते हैं ना कि हमारा काम तो सिद्ध हो गया। तो सिद्ध होना अच्छी बात है, पर सदाके लिए सिद्ध हो जाय काम, जिसके बाद फिर कुछ काम करना न रहे ऐसा सिद्ध होना वास्तव में सिद्ध होना है। एक प्रजातन्त्र राज्यमें ऐसा नियम बना था कि एक वर्षके लिए प्रजामें से किसीको राजा चुन लिया जाय और एक वर्षके बादमें उस राजाको जंगलमें छोड़ दिया जाय, मरे, जिये कुछ हो। क्योंकि वह फिर यहाँ रहेगा तो उसका अपमान होगा कि देखो यह अभी तक तो राजा था और अब इस हालतमें है। यों बहुतसे लोग राजा बने एक वर्षके लिए और बुरी मौत मरे। एक बार कोई बुद्धिमान पुरुष एक वर्षके लिए राजा बना दिया गया। अब क्या था, वह एक वर्ष तक जो चाहे सो करे। उसने उस जंगलमें मकान बनवा दिया, बहुतसा वैभव वहाँ भेज दिया, खूब खेतीबाड़ीका साधन बना लिया। एक वर्ष बादमें जब वह राजपदसे हटा दिया गया तो उसी जंगलमें जाकर वह आरामसे रहने लगा। तो ऐसी ही बात यहाँ भी है। हम आपने मनुष्यभव पाया है। इस थोड़े दिनोंके जीवनमें इन सभी जीवोंमें राजा बना दिए गए हैं। जो चाहे सो कर सकते हैं, नहीं तो यहाँका तो यह नियम ही है कि कुछ ही दिनों बादमें नरक निगोदमें ढकेल दिए जायेंगे। बुद्धिमानी तो इसीमें है कि इस मनुष्यभवमें आकर तत्त्वज्ञान उत्पन्न करें, आत्मदृष्टिका अभ्यास बनायें जिससे परलोक सुधरे, और ऐसा परलोक कि जहाँ किसी भी प्रकारका क्लेश नहीं है। परम ऐश्वर्य है ऐसा सिद्ध लोक, वह परलोक उत्कृष्ट लोक है। वहाँ ये प्रभु अनंत ऐश्वर्यसहित विराजमान हैं।

आत्यंतिकं निराबाधमत्यक्षं स्वस्वभावजम्।
यत्सुखं देवदेवस्य यद्वक्तुं केन पार्यते ॥२१८५॥

भगवानके सुखके वर्णनकी अशक्यता—भगवानका सुख आत्यंतिक है, उससे अधिक सुख कहीं नहीं है, सुख क्या, आनंद, जो निर्बाध है। जहाँ कोई बाधा नहीं है, यहाँके सुखोंमें तो बड़ी बाधा है। बच्चोंमें देखो तो, जवानोंमें देखो तो और बूढ़ोंमें देखो तो—सभी क्लेश का अनुभव करते हैं। बच्चे लोग बड़ोंका अधिकार निरखकर—ये पैसा भी देते हैं, इनकी हुकूमत चलती है, ये जहां कहें वहां बैठना पड़ता है, तो बच्चे लोग सोचते होंगे कि अगर मैं भी बड़ा हो जाऊँ तो ऐसा ही करूँ। इन बड़े लोगोंको तो बड़ा सुख है, इस प्रकार बच्चे लोग अनुभव करते हैं, और बड़े लोग क्या सोचते हैं कि ये बच्चे लोग तो बहुत ही मजेमें हैं, इनको कुछ कमाना धमाना नहीं, कोई चिन्ता नहीं, कोई फिकर नहीं। तो यहां कोई सुखी नहीं, और फिर अन्य भवोंकी बात तो सुनते ही कष्ट पहुंचता है। नारक तिर्यञ्च पशु पक्षी कीड़े मकोड़े आदि तो संसारमें सुखी कहां हैं? इन सब आवरणोंसे कर्मकलंकोंसे छुटकारा मिले तो सुख है, आनंद है। आनंद सिद्धप्रभुमें है। उनमें स्वभावसे आनंद उत्पन्न

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होता है, ऐसे सिद्ध प्रभुके आनन्दका वर्णन करनेके लिए कौन समर्थ है ?

तथाप्युद्दं शतः किञ्चित् ब्रवीमि सुखलक्षणम् ।
निष्ठितार्थस्य सिद्धस्य सर्वद्वन्द्वातिवर्त्तिनः ॥२१८६॥

प्रभुके आनन्दका दिग्दर्शनमात्र वर्णनका संकल्प—यद्यपि सिद्ध भगवानके आनन्दका कोई वर्णन नहीं कर सकता है, उसे बताया नहीं जा सकता, तो भी नाममात्र सही, किसी भी ढंगसे कुछ तो सुखका लक्षण कहना चाहिए। तो आचार्य कहते हैं कि जिस सिद्ध प्रभुके समस्त प्रयोजन सिद्ध हो गए हैं, जो समस्त दंद फंदोसे दूर हो गए हैं, उसके सुखका हम थोड़ा बहुत नाममात्रका वर्णन करते हैं। सुख और आनंदमें अन्तर देखिये—सुखमें दो शब्द हैं सु और ख। सु मायने सुहावना और ख मायने इन्द्रिय। जो इन्द्रियोंको सुहावना लगे वह सुख कहलाता है। और आनन्द उसे कहते हैं जहाँ किसी भी प्रकारका इन्द्रियजन्य व्यापार न हो, निराकुलता प्राप्त हो। अर्थात् आत्मामें चारों ओरसे समृद्धि बढ़े उसका नाम है आनंद तो यह आनंद इस सुखसे अधिक उत्कृष्ट है। लोग तो इस सुखको ही आनन्द शब्दसे कह देते हैं। जैसे कोई दरवाजेके बाहर शामके समय दालानमें अपने थोड़ा पैर पसारे पैरोंपर हाथ धरे विश्रामसे बैठा हो। कोई वहांसे गुजरे और कहे कि क्यों भाई क्या हालत है ? तो वह कहेगा--खूब आनंद है। प्रकृतिके शब्दोंको देखिये--वह सुख शब्द न बोलेगा, क्योंकि उस समय न स्पर्शनइन्द्रियका, न रसनाइन्द्रियका, न किसी अन्य इन्द्रियका विषय पल रहा, ऐसी स्थितिमें उसके स्वभावतः आनन्द शब्द निकलता है। तो उस पुरुषको न तो वहाँ कुछ खानेको दिया जा रहा है, न अन्य कोई चीज दी जा रही है, फिर उसे किस बातका आनन्द है ? अरे वह आनन्द है निराकुलताका। इस आनन्दका सम्बंध ज्ञानसे है और सुखका सम्बंध रागसे है।

अनन्तज्ञानसे सम्बन्धित आनन्दका नाममात्र वर्णनका संकल्प---किसी बालकसे पूछा जाय कि १९ × ८ = कितने होते हैं ? तो जब तक वह कुछ सोच विचार रहा है तब तक आकुलित है, और जब सोच विचारकर बता दिया कि १९ × ८ = १५२। तो इस सही उत्तरके दे लेनेपर वह बड़ा खुश होता है। तो उस समय उसे जो एक खुशीका अनुभव हुआ, प्रसन्नताका अनुभव हुआ वह हुआ ज्ञानके कारण, एक सही जानकारीके कारण। किसीके हिसाबमें १ आनेकी गल्ती हो जाय तो उस गल्तीको दूर करनेके लिए सारी रात बिजली जलाकर चार आनेकी बिजली जला देगा, बड़ा परिश्रम कर डालेगा, पर जब वह सही जानकारी कर लेता है कि अरे मैं इस जगह यह हासिल लगाना भूल गया था, बस उस सही जानकारीके कारण प्रसन्नताका अनुभव करता है। तो आनंद होता है ज्ञानसे सम्बंधित होकर और सुख होता है रागसे सम्बंधित होकर। भगवान सर्वज्ञ पूर्ण जानकार हैं अतः उन्हें अनंत आनन्द प्राप्त है, जिसका वर्णन हम इस रूपमें कह सकते हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यदेव मनुजाः सर्वे सौख्यमक्षार्थसम्भवम् ।
निर्विशन्ति निराबाधं सर्वाक्षप्रीणनक्षमम् ।।२१८७।।
सर्वेणातीतकालेन यच्च भुक्तं महर्द्धिकम् ।
भाविनो यच्च भोक्ष्यन्ति स्वादिष्टं स्वान्तरञ्जकम् ।।२१८८।।
अनन्तगुणितं तस्मादत्यक्षं स्वस्वभावजम् ।
एकस्मिन् समये भुङ्क्ते तत्सुखं परमेश्वरः ।।२१८९।।

प्रभुके आनन्दका एक अन्दाजा—दुनियाके समस्त प्राणी देव देवेन्द्र सुर असुर आदि इस समयमें जितने सुख भोग रहे हैं ये सारे सुख अर्थात् जो सुख-बड़े वैभवसहित हैं, जो सुख समस्त इन्द्रियोंको अत्यन्त सुखी करनेमें समर्थ हैं ऐसे बड़े-बड़े महापुरुषोंके सुख और अबसे पहिले अतीतकालमें जितने भी पुण्यवान सुखिया लोग हुए हैं उनका सुख और भविष्यकालमें जितने भी सुख होंगे, उन सभी सुखोंको इकट्ठा करके, उससे भी अनन्तगुना सुख सिद्ध भगवान के स्वभावतः हुआ करता है । उनके कोई आकुलता नहीं है, विकल्प रंच नहीं है । कहीं-कहीं तो कोई लोग ऐसा प्रश्न कर बैठते हैं कि भगवानका वहाँ जी कैसे लगता होगा ? घर नहीं, बच्चे नहीं, भाई नहीं, कोई लोग नहीं, कुछ बात नहीं, अकेले ही अकेले रह रहे हैं तो उनका समय कैसे गुजरता होगा ? तो वे लोग अपने इस लौकिक सुखकी ही तुलना करके दूसरेकी बात समझना चाहते हैं । अरे वे प्रभु तो इन समस्त इन्द्रियोंसे रहित हैं, इस शरीरसे रहित हैं । यहाँ तो सभी संसारी जीवोंके साथ यह शरीर बन्डल अथवा शरीर बिस्तर बँधा है । बिस्तर उनको ही तो रखना पड़ता है जिनके साथ अनेक खटपट, चिंता, शोक, परिग्रह, घर द्वार आदि लगे हैं । तो वह बिस्तर तो विषतर है अर्थात् विषसे भी अधिक बुरा है । ये संसारी जीव अनेक खटपटोंके बीचमें हैं, अतः इन्हें इस शरीरका बोरियाबन्डल साथ रखना पड़ रहा है । उन प्रभुके तो यह बोरिया बंडल, यह शरीर अब नहीं रहा, जब उनके पास कोई खटपट ही न रही तो यह बोरियाबन्डल साथ बाँधनेकी उनको क्या जरूरत ? तो हम अपने सुखसे प्रभुके सुखकी क्या तुलना करें ?

आत्मसामर्थ्यका स्मरण—जिन प्रभुके सुखकी चर्चा चल रही है, समझिये उन जैसा ही स्वरूप हम आपका है । एक ८--८। वर्षका बालक सम्यक्त्व उत्पन्न कर सकता है, चौथा गुणस्थान पा सकता है, और मुनि बन जाय तो छठा गुणस्थान पा ले, और अन्तर्मुहूर्तमें श्रेणी मार दे तो वह बच्चा अरहंत भगवान बन जाय । और फिर रह गई हो उसकी करोड़ों वर्षकी उम्र तो अरहंत अवस्थामें विहार करे, उपदेश दे । क्या नहीं है अपनेमें सामर्थ्य, पर लगन नहीं है, आत्महितकी तीव्र धुन नहीं है, कर्मोंका ऐसा ही विपाक है और अपना प्रमाद है, संग भी उत्तम नहीं, आशय भी निर्मल नहीं, तब फिर कहो उस सिद्धके मार्गमें हम आप

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अपना कदम कैसे बढ़ा सकते हैं ? यह तो संसार है, मोही जन हैं, अज्ञानी जन हैं, यहाँ तो जिन्होंने कुछ वैभव पाया है उनकी ही दाल गलती है, उनका ही सब जगह आदर्श माना जाता है। लोग धनिकोंको देखकर, नेताओंको देखकर वैसा ही अपनेको बनानेका भाव बनाते हैं। समीचीन दृष्टिकी उपासना तो यहाँ विरले ही व्यक्ति कर पाते हैं।

मूढ़ताभरी चतुराईसे सिद्धिका अभाव—कोई दो भाई थे, उनमें से छोटा भाई बनारसमें पढ़ता था। बारह वर्ष तक खूब अध्ययन करनेके बाद जब उसे घर लौटना हुआ तो अपना सारा सामान एक घोड़ेपर लादकर चल पड़ा। रास्तेमें एक गाँवमें एक मुखिया रहता था, वह मिल गया उस पंडितको। उसने पूछा कि आप कौन हैं, कहांसे आ रहे हैं ? तो उसने बताया कि मैं पंडित हूं, बनारससे पढ़कर आ रहा हूं। तो मुखिया बोला—यहाँका रिवाज है कि जो विद्वान् निकले वह शास्त्रार्थ करे, अच्छा हम आपसे प्रश्न करेंगे, यदि आप उत्तर दे देंगे तो हमारे घर जो कुछ है सो तुम्हें दे देंगे, और यदि उत्तर न दे सके तो तुम्हारे पास जो कुछ है सो छीन लेंगे।····अच्छा मुखिया जी करो प्रश्न।···सरपटसों ? दो उत्तर। वह कुछ न समझ सका। उत्तर न दे सका। मुखियाने घोड़ा सहित सारा सामान अपने घर रख लिया। वह पंडित खाली हाथ अपने घर गया। भाईने खाली हाथ आनेका कारण पूछा तो उसने सारा हाल कह सुनाया। तो वह बड़ा भाई कहता है कि भाई तुम पढ़े लिखे जरूर हो, पर कुछ कढ़े नहीं हो। देखो मैं अभी जाता हूं और मुखियासे सारा सामान छीनकर लाता हूं। उसने कुछ काजज बर्तन आदि एक घोड़ेपर लादे, उसी पंडितका जैसा रूपक बनाया और उसी गाँवमें पहुंचा जहाँपर वह मुखिया रहता था। मुखिया झट पहुंचा उस पंडितके पास और उसी तरहसे प्रश्न किए जिस तरहसे पहिले पंडितसे किए थे। अच्छा–पंडित, सरपटसों ? दो उत्तर। तो उसने क्या किया कि जैसे धान मूसलसे कूटे जाते हैं उस तरहसे मुखियाको पकड़कर नीचे ऊंचे पटककर कूटा और कहा—पहिले मुखिया धम्मक धैंया (धान जब कूटे जाते हैं तो धम्मक धम्मक होते हैं ना) फिर मुखियाको इधर-उधर पटका और कहा—बादमें मुखिर फट्टक्फों, (धान जब सूपसे पछोरे जाते हैं तो फट्टरफट्टर होते हैं न) फिर मुखियाको खूब चारों ओर नचाया और कहा—बादमें मुखिया खदरबदर (खिचड़ी जब पकाई जाती है तो उसकी आवाज खदरबदर होती है न) फिर मुखियासे कहा–तब तो मुखिया सरपटसों। समझे मुखिया, क्या मतलब है सरपटसोंका—धम्मक धैंया फट्टक्फों, खदरबदर तब सरपटसों। इतना पूरा छंद है, तू तो अधूरा ही बोल रहा था। अरे भाई जब खिचड़ी खायी जाती है तब सरपटसों होता है, पर खिचड़ी यों ही तो नहीं खानेको मिल जाती। पहिले धान कूटे जाते, फिर सूपसे पछोरे जाते, फिर पकाये जाते, तब तो खिचड़ी खायी जाती। यों मुखियाकी मरम्मत कर दी। हार गया मुखिया और वह पहिले पंडितका भाई

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अपने भाईका व जो कुछ उसका था, सारा सामान लेकर चला आया। देखो भैया ! संसार में तो ऐसोंका बोलबाला है, किन्तु इससे भलाई कुछ नहीं। यह तो मूढ़ता है, तो भाई पहिले अपना विवेक बने, अपने आत्मतत्त्वकी दृष्टि बने, अपना मोह हटे, अपना प्रकाश मिले, निराकुलता हो तो उससे ही अपना जीवन सफल है। अन्य कार्योंको करके जो चतुराई मानी जा रही है वे तो सब थोथी बातें हैं। उनसे अपने किसी भी कार्यकी सिद्धि नहीं है।

त्रिकालविषयाशेषद्रव्यपर्यायसङ्कुलम् ।
जगत्स्फुरति बोधार्के युगपद्योगिना पतेः ॥२१९०॥

प्रभुताकी शक्तिके विश्वासमें प्रभुताका लाभ––कर्म कलंकसे मुक्त, केवल अपने आपके सत्त्वके कारण अपने इस स्वरूपमें अवस्थित प्रभुके ज्ञानमें तीन काल सम्बंधी समस्त द्रव्य गुण पर्यायोंसे व्याप्त सारा जगत एक साथ स्फुरायमान होता है। चर्चा किसकी की जा रही है ? भगवानकी, और साथ ही अपनी। जो भगवानमें बात प्रकट हैं वे सब बातें अपने स्वरूपमें नहीं हैं तो भगवानकी भक्तिसे लाभ क्या मिल पायगा ? भगवान एक ज्ञानानन्दस्वरूप हैं, वे प्रकट हो गए और यहाँ शक्ति है उस शक्तिका विश्वास हो तब तो यह साहस बने कि विषयकषायके भावोंको परित्याग करके इस विशुद्ध ज्ञानज्योतिमें समा जाय। जब अपने स्वभावका परिचय ही नहीं, प्रभुताका चमत्कार प्रत्येक आत्मामें है, यह विश्वास ही नहीं तो कहाँसे साहस जगे ? कोई समझ ले कि हम तो ऐसे ही हैं कायर ही हैं तो उसका क्या इलाज ? एक बार कोई महान् युद्ध छिड़ा था तो उस समय एक स्त्रीने अपने पतिसे कहा कि देखो––इस समय देशपर संकट है। युद्धमें सभी भाग ले रहे हैं। तुम तो बड़ी वीरताकी बातें करते हो, अब कृपा करके उस रणमें पहुंचिये और देशकी रक्षा कीजिये। तो वह पुरुष बोला कि हम वहाँ जायेंगे, लड़ेंगे और मर गये तो क्या होगा ? तो स्त्रीने एक दरेतीसे कुछ चने दर दिए। उसमें कुछ चने तो बिल्कुल पिस गए, कुछ टूट फूट गए और कुछ बिल्कुल समूचे निकल आये। तो स्त्री कहती है––देखो जैसे ये चने दरे जानेपर भी कुछ चने बिल्कुल समूचे निकल आये हैं ऐसे ही युद्ध में भी सभी नहीं मरा करते। कुछ लोग बराबर युद्ध करके अच्छी तरह बचकर आते हैं। तो वह पति कहता है कि भाई हम तो उन चनोंमें से हैं जो पिसकर भूसी बन गए हैं, जो चने समूचे निकल आये हैं उनमेंसे हम नहीं हैं। अब बताओ इस कायरताकी दृष्टिका क्या इलाज ? तो भाई जब तक अपनेमें यह साहस न जगे कि मेरेमें तो वह अनन्त ज्ञान स्वरूपमें ही समाया हुआ है, तब तक आत्माका उद्धार नहीं हो सकता। इन सारहीन विषयसाधनोंकी ओर उपयोग लगाकर इस अमूल्य जीवनको यों ही क्यों खोया जा रहा है। कितने वर्षका जीवन है, क्या होगा आखिर ? मरण तो होगा ही। अब थोड़ेसे समय के लिए नाना विकल्पजालोंमें फंस करके क्या किया जा रहा है ?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञानानन्दसागरमें अवगाहनके साहसकी लाभकारिता—प्रभुके गुणोंकी चर्चा की जा रही है यहाँ। बतावो सोचकर यह चर्चा किसकी है ? भगवानकी है, आपकी है, हमारी है। यदि भिन्न पदार्थोंसे, विषयोंसे, साररहीन विकारोंसे यह मुख मोड़ लिया जाय एक साहसपूर्वक, तो स्वतः ही आनन्दमय हमारा पद विकसित हो जायगा। जैसे जाड़ेके दिनोंमें बहुतसे बच्चे तालाबके किनारे बैठे ठिठुरा करते हैं, जाड़ेके मारे पानी छुवा नहीं जाता है। यदि उनमें से कोई बालक थोड़ा साहस बनाकर उस तालाबमें कूद पड़े तो उसका सारा जाड़ा एकदम ही खतम हो जाता है। ऐसे ही यह स्वयंका ज्ञानसमुद्र जिसके किनारे बैठे हुए दूरसे ही उसे निरख रहे हैं, उसमें कूदनेका साहस नहीं बनता, संकटोंका अनुभव कर रहे हैं, पर कोई ज्ञानी पुरुष ऐसा साहस बनाकर एक बार तो उस निर्विकल्प ज्ञानज्योतिका अनुभव करके तो देखे—बस सारे संकट समाप्त हो जायेंगे। जो जीव आपके घरमें आज रह रहे हैं उन्हें आप अपना समझ रहे हैं और अगर ये ही जीव किसी दूसरेके घरमें आये होते तो इन्हींको आप गैर मानते। आप इनसे कुछ भी प्रेम न रखते। और जो जीव दूसरेके घरमें बस रहे हैं, जिन्हें आप गैर मान रहे हैं यदि वे ही आपके यहाँ पैदा हो गए होते तो आप उनको ही अपना मानते और उनमें मोह करते। तो देखो—यह मोह अटपट है या सिलसिलेवार। कुछ दम भी रखता है यह व्यवहार या कोरी एक शेखचिल्ली जैसी कल्पना है ? भैया ! सब मायाजाल है यह। अपने आत्माकी सुध बने, साहस बने, अपने आपमें उतारने का बल प्राप्त हो तो संसारके संकट दूर हो सकते हैं। बाहरी बातोंमें तो संकट दूर नहीं हो सकते। तो जिसके संकट समाप्त हो चुके हैं। शरीरसे, कर्मसे, विकारसे, सबसे जो दूर हो गए ऐसे उस विशुद्ध आत्माके ज्ञानमें सारा लोकालोक एक साथ स्फुरित होता है, ठहरने लगता है।

सर्वतोऽनन्तमाकाशं लोकेतरविकल्पितम् ।
तस्मिन्नपि घनीभूय यस्य ज्ञानं व्यवस्थितम् ॥२१९१॥

ज्ञानघन प्रभुके स्मरणकी शरण्यता—जिसका ज्ञान समस्त लोकालोकमें घनीभूत होकर रह रहा है ऐसे प्रभुका स्मरण हम आपके लिए शरण होवो। जब कोई दुःखी होता है तो गद्गद् होकर, एक शरण मानकर किसी न किसीकी गोदके निकट जाकर यह शान्ति चाहता है। ऐसा कौन मिलेगा कि जिसके निकट रहकर हम शान्तिलाभ पा सकें ? एक केवल ज्ञानपुञ्ज प्रभुका ही स्मरण शरण है। हे नाथ ! आप हमें ऐसा बल दें अर्थात् आपके स्मरणसे मुझमें ऐसा बल प्रकट हो कि केवल मेरे लिए आप ही आप दृष्टगत हों। मुझे और कुछ न चाहिए। बहुत ही आज्ञाकारी, विनयशील सुन्दर रूपवान कोई संतान भी हो, परिजन के लोग भी हों तो वे क्या हैं ? ये सब तो आगमें मुझे जलानेके साधन हैं और संसारमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जन्ममरण करके बरबाद होनेके साधन हैं। हे प्रभो ! कहाँ जायें, कहाँ ध्यान लगायें ? यह सारा जहान मायामयी है। एक प्रभुका स्मरण ही हम आपके लिए सहाय है।

ज्ञानस्वरूपके मननकी आवश्यकता—थोड़ा दिन रातमें सब कुछ कार्य करके और शामके समय हम आप एकत्रित बैठते हैं और प्रभुकी चर्चा सुनते हैं तो यह बड़े सन्तोषकी बात है। लोग कहते भी हैं कि सुबहका भूला शामको घर आ जाय तो वह भूला नहीं कहलाता। हम दिन भर कहां भूलते हैं ? वैभवमें, परिजनमें, रागमें, न जाने कहाँ-कहां विचरते हैं, चलो शामको घंटाभरके लिए हमें मिलता है बोलकर अपने आपको सम्हालनेका मौका और आप सबको मिलता होगा सुनकर अपने आपको सुधारनेका मौका। यही बहुत है चलो, लेकिन इतनेसे सन्तोषकी बात नहीं कही जा सकती। जैसे व्यापारके या अन्य किसी सम्बन्ध के कार्य करते हैं तो कितनी विधिपूर्वक सिस्टेमेटिक ढंगसे करते हैं तो यदि वास्तविक शान्ति चाहिए तो धर्मका ज्ञान, धर्मका पालन, धर्ममें मग्न होनेका पुरुषार्थ ढंगसे विधिसे करें तो इनकी भी सिद्धि हो सकती है, लेकिन धर्मका कार्य तो समझ लिया फुरसतके समयकी बात और मुख्य काम समझ लिया विषयसाधनोंके जोड़नेकी बात, तो अब समझ लीजिए कि फुरसत की जो बात समझी हो उसका महत्त्व आ सकता है क्या ? समय निकालें विशेष तत्त्वज्ञान बढ़ानेके लिए। सत्संगति और स्वाध्यायमें अपना समय अधिक व्यतीत हो तो वह स्फूरणा मिल सकती है कि जिससे हम ज्ञानानुभवके पात्र बन सकें। जब विशुद्ध विकास होता है तो जो कुछ भी सत् यह अनन्त आकाश और जिसमें समस्त द्रव्य जितने भी हैं वे सबके सब भगवानके ज्ञानमें घनीभूत होकर अवस्थित हैं, लटोरे खचोरे जैसा ज्ञान नहीं कि जैसे हम बहुत दूर तककी भी बात जानते हैं, तो वहाँ भी कुछ यह जाना, कुछ वह जाना, पर भगवानके ज्ञानमें सर्व कुछ घनभूत रूपसे पड़ा हुआ है।

निद्रातन्द्राभयभ्रान्ति रागद्वेषार्त्तिसंशयैः।
शोकमोहजराजन्ममरणाद्यैश्च विच्युतः ॥२१९२॥

प्रभुकी निर्दोष परिणति—यह प्रभु सिद्ध भगवान निद्रा, तन्द्रा, भय, भ्रान्ति, रागद्वेष, वेदना, संशय, शोक, मोह, जन्म, जरा, मरण आदिक दोषोंसे अतीत हैं। क्या है वहाँ ? एक अमूर्त ज्ञानपुञ्ज। उन्हें नींद कहाँसे आये ? केवलज्ञान है निरन्तर, जागृत स्वरूप है, थकानका क्या काम ? शरीररहित है, तो वहाँ तंद्रा क्या होगी, रोग कहाँ ठहरेंगे ? जहाँ ज्ञानका विशुद्ध विकास है वहाँ ये रागद्वेषादिक समस्त दोष कहाँ ठहर सकते हैं। वे प्रभु जन्म-जरा मरण आदिक समस्त दोषोंसे मुक्त हो गए। जन्मके समयमें बालक कुछ दुःखी होकर ही आता है ना, और तुरन्त गर्भसे निकलकर इन्हीं आवाजोंमें तो रोता है—कहाँ-कहाँ। इसका यही तो अर्थ लगा लीजिये कि मैं कहाँ आ गया ? अभी देवताओंका वर्णन करते हुए बताया गया था कि जब वे देव उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होकर जवान हो जाते हैं तो वे यह सोचते हैं कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मैं यहाँ कहाँ आ गया, ऐसे ही यहां मनुष्योंका जन्मजात बच्चा अपने मुखसे स्पष्ट तो नहीं बोल सकता, पर निकलते इसी तरहके शब्द हैं—कहां-कहां, उसका अर्थ यही है कि वह सोचता है कि मैं कहां आ गया ? वह बच्चा तो रो रहा है, दुःखी हो रहा है और घरके लोग ढोलक बजा रहे हैं, खुशियां मना रहे हैं। अरे जन्मके समयमें भी मरणका जैसा दुःख होता है। इन दुःखोंसे छुटकारा पानेके लिए यह मरण तो मदद कर सकता है, पर जन्म मदद नहीं कर सकता। अरहंत भगवानके निर्वाणका नाम है पंडितपंडितमरण और साधु पुरुषोंके मरणका नाम है पंडितमरण और श्रावक ब्रह्मचारीके मरणका नाम है बालपंडित मरण और अविरत सम्यग्दृष्टिके मरणका नाम है बालमरण, किन्तु मिथ्यादृष्टि लटोरे खचोरों के मरणका नाम है बालबालमरण। तो जो विवेकपूर्वक, सम्यक्त्वपूर्वक, समाधिपूर्वक मरण होता है वह मरण संसारके संकटोंसे छुटकारा करा देगा, पर कोई भी जन्म ऐसा नहीं है जो कि इन संकटोंसे छुटकारा करा सके।

अज्ञानमें मरणभय—इन जीवोंकी एक आदत बन गयी है, मरणसे डर लग रहा है, जन्ममें लोग खुशी मनाते हैं, लेकिन उस मरणसे क्या डरना जो हमारे हितमें साधक है। मरणसे तो वे डरें जिन्हें अपने स्वरूपकी सम्हाल नहीं है। जिनके इस वैभवमें, परिजनोंमें बाह्यमें प्रीति बसी है, मोह है, अंधेरा छाया है, डर तो उनको है। एक बहुत पुरानी बुढ़िया थी, वह अपने कमरेमें पड़ी रहा करती थी, नाती पोते बहुवें जो कुछ खाने पीनेको दे दें उसे वह खा पी लेती थी, न दें तो यों ही पड़ी रहे। वह रोज-रोज हाथ जोड़कर भगवानसे प्रार्थना करती थी कि हे भगवन, तू अब मुझे उठा ले। अर्थात् मैं मर जाऊँ तो अच्छा है। एक दिन उसके पाससे एक सांप निकला, वह चिल्लाई---अरे बच्चो बचावो बचावो, सांप आया। तो वे पोते कहते हैं—अरी बुढ़िया दादी तू क्यों चिल्लाती है ? तू रोज-रोज भगवान से प्रार्थना किया करती थी कि मुझे उठा ले, तो भगवानने तेरी प्रार्थना सुन ली है, तुझे उठानेके लिए दूत भेजा। तो भाई मरना कोई नहीं चाहता। सभी मरनेसे डरते हैं। लेकिन जो मरना नहीं चाहते तो वे तो कहो मर जायें और जो मरण चाहते वे कहो न मरें। नारकी जीव बहुत चाहते हैं कि हम मर जायें, पर शरीरके तिल-तिल बराबर खण्ड हो जाने पर भी वे खण्ड पारेकी तरह मिल जाते हैं, वे नारकी जीव असमयमें नहीं मरते। तो वे प्रभु इन समस्त प्रकारके दोषोंसे रहित हैं।

क्षुत्तृट्श्रममदोन्मादमूर्च्छामात्सर्यवर्जितः।
वृद्धिह्रासव्यतीतात्मा कल्पनातीतवैभवः ॥२१९३॥

प्रभुकी कल्पनातीतवैभवता---यह सिद्ध भगवान क्षुधा तृषा मद मूर्छा मात्सर्य आदिक समस्त दोषोंसे रहित हैं, अब उनमें वृद्धि और ह्रास नहीं होता। जैसे प्रकट हुए हैं, जिस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

आकारमें हैं, जैसे गुण विकसित हुए हैं बस सदा काल उस रूप ही रहेंगे । इस भगवानका वैभव कल्पनासे परे है । हम क्या कल्पना करें ? भैया ! कुछ ऐसी आदत बन गई कि ये सब बातें हैं माननेकी, बोलनेकी, पर इसके लायक हम अपनी योग्यता तो बनाते नहीं । चाहे घरमें हों, चाहे दूकानमें हों या अन्यत्र कहीं हों, सर्वत्र यही बात सीखें कि इन कषायोंको न उत्पन्न होने दें । एक सेठ सेठानी थे, तो सेठ था शान्त प्रकृतिका और सेठानी थी कुछ गरम मिजाजकी । जिस समय सेठजी भोजन करने बैठते थे उस समय सेठानी उन्हें दसों बातें सुनाती थी—अभी तुमने अमुक गहना नहीं बनवाया, अभी तुमने अमुक चीज नहीं ले दी, आदि । सेठजी बेचारे कुछ न बोलें । रोज-रोजकी उन बातोंसे सेठ जी परेशान थे । आखिर एक दिन क्या हुआ कि सेठ जी जब ऊपरसे सीढ़ियोंसे उतर रहे थे तो उस सेठानीने क्रोधमें आकर दालका धोवन सेठजीके ऊपर डाल दिया । सेठ जी बोले—सेठानी जी गरजी तो तुम बहुत थी, पर बरसी आज हो । सेठ जीके उन शान्तिभरे शब्दोंको सुनकर सेठानी पानी-पानी हो गई अर्थात् वह भी बड़ी शान्त हो गई और सेठ जीके पैरोंमें गिरकर बोली—अभी तक मैंने आपको बहुत सताया, पर मैं आजसे यह नियम करती हूं कि कभी भी आपसे तेज वचन भी न बोलूंगी । तो सदुपयोग करें अपने इन वचनोंका । किसीको कटुक वचन न कहें हम और उस समय अपने आपमें न कषाय करें तो क्या बिगड़ गया ? अरे, मान किसपर बगराना, यहाँके मानसे फायदा भी क्या निकलेगा ? मान तो वह हो कि फिर संसारमें जन्म ही न लेना पड़े और सदाके लिए उत्कृष्ट विकास रहे । अभी तो कोई राजा है और मरण करके कीड़ा मकोड़ा बन गया, तो काहेका मान करना, किस बातपर मायाचार करना, कौनसी चीज यहाँ हितकारी है ? किसका लोभ करना ? तो कुछ अपने जीवनको इस जीवनमें ढालें कि मंद कषाय वाले बनें और श्रद्धा यथार्थ बनी रहे तो हम इस योग्य हो सकते हैं कि यह जान सकें कि वास्तवमें भगवानका कैसा ज्ञान और कैसा आनन्द है ?

निष्कलः करणातीतो निर्विकल्पो निरञ्जनः ।
अनन्तवीर्यतापन्नो नित्यानन्दाभिनन्दितः ॥२१९४॥

निरञ्जन प्रभुकी नित्यानन्दाभिनन्दितता—ये प्रभु समस्त कलंकोंसे दूर हुए, सिद्ध भगवान सर्वोच्च विकास चिदानन्द स्वरूप हैं । ये प्रभु शरीररहित हैं, इन्द्रियोंसे अतीत हैं, कायरहित हैं, इन्द्रियरहित हैं और विकल्परहित हैं । वे प्रभु निरञ्जन हैं । किसी भी प्रकार का उनमें अञ्जन नहीं रहा । जैसे अंजन नेत्रोंमें लगाया जाय तो उसके पोंछनेपर भी वह नेत्रों से नीचे, अगल-बगलमें भी चिपटता जाता है ऐसे ही ये रागादिक दोष चिपटकर आत्मामें लग जाते हैं । तो इस प्रकारके दोषोंसे भी रहित वे प्रभु हैं । उनमें किसी भी प्रकारका अंजन नहीं रहा अर्थात् किसी भी प्रकारका दोष नहीं रहा । जो अनन्त वीर्यसे सम्पन्न हैं, अनन्त

http://sahjanandvarnishastra.org/

शक्तिसे सम्पन्न हैं और विशुद्ध आनन्दसे आनन्दित हैं ऐसे ये सिद्ध भगवान हमारे दृष्टिपथमें सदाकाल रहें। जब यह ज्ञानपुञ्ज प्रभु हमारी दृष्टिमें नहीं रहता तो यहाँके अत्यन्त मोही कलंकित जीवोंपर दृष्टि पहुंचती है, और राग अथवा द्वेष होता है, जिस संतापमें जलकर हम अपनेको बरबाद करते हैं। हममें तो इन समस्त आवरणोंको नष्ट करनेकी सामर्थ्य है। तो अपनी सावधानी बनायें जिससे प्रभुका स्मरण रहे और अपने स्वरूपका ध्यान रहे।

परमेष्ठी परं ज्योतिः परिपूर्णः सनातनः।
संसारसागरोत्तीर्णः कृतकृत्योऽचलस्थितिः ॥२१६५॥

प्रभुकी स्वपरपरमोपकारिता—जिसके लिए लोग मैं मैं कहा करते हैं—मैं आया, मैं करता, मैं पढ़ता, मैं हूं, वह मैं जब केवल मैं रह जाय, अन्य कुछ भी चीज उस मैं के साथ न रहे तब इसका ऐसा ज्ञानप्रसार होता है, समस्त कलंकोंका ऐसा ध्वंस होता है कि वहाँ अपने आपमें भी अचिन्त्य चमत्कार प्रकट होता है और समस्त लोकके जीव भी उनके निमित्त से अपना भला कर लेते हैं। ऐसे सिद्ध भगवानके स्मरणमें यह प्रकरण चल रहा है। ये प्रभु परमपदमें स्थित हैं। प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि मैं ऊँचीसे ऊँची स्थितिमें पहुंचूं। जब दुनियाकी ओर दृष्टि जाती है तो यह गम नहीं खाता, सन्तुष्ट नहीं हो पाता। उसकी यही भावना बनी रहती है कि मैं विश्वमें सबसे अधिक धनिक बनूं। लोग तो सोचते हैं कि मुझे इतना धन मिल जाय तो मैं सन्तुष्ट हो जाऊँगा, पर होता क्या है कि उतना मिल जानेपर फिर असंतोषकी लहर दौड़ जाती है। लोग तो इस विश्वमें ऊँचेसे ऊँचे पदमें स्थित होना चाहते हैं। जरा सोचो तो सही कि इस दुनियामें कोई स्थान है क्या कि जो ऊँचासे ऊँचा कहा जा सके। यहाँके सभी पद क्लेशोंसे भरे हुए हैं। क्लेशरहित सर्वोच्चपदमें स्थित हैं तो यह सिद्ध भगवान। ये सिद्ध भगवान परमपदमें स्थित हैं। ये परमज्योतिर्मय उत्कृष्ट ज्ञान-स्वरूप हैं। क्या है उनके? केवल सत्यप्रकाश। जिनके पास कुछ है उनसे ऐसी आशा नहीं की जा सकती है कि उनकी उपासनासे कुछ मिल जाय, पर जिनके पास कुछ नहीं है उनकी उपासना करके यह आशा की जा सकती है कि कुछ मिल जाय। जैसे समुद्र लबालब पानी से भरा हुआ है, पर उससे कोई अपनी प्यास नहीं बुझा सकता है और न उसमेंसे कोई नदी भी निकलती है, लेकिन ये पहाड़, जहाँ कुछ भी नजर नहीं आता, पानीका जहाँ नाम नहीं वहाँसे कितनी ही नदियां निकलती हैं, कितने ही झरने झरते हैं। तो हे नाथ! आपके पास ये धन वैभव परिजन आदि कुछ भी नहीं रहे, आप अकिञ्चन हो गए, कुछ भी नहीं रहा आपके पास, लेकिन आपकी उपासनासे हमें आशा है कि मैं सर्वस्वहित प्राप्त कर सकता हूं।

प्रभुभक्तिका उदाहरण—एक बार राजसभामें गुरुवोंकी चर्चा चल रही थी। लोग

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कहते थे कि मेरे गुरु ऐसे हैं, मेरे गुरु ऐसे हैं। तो एक जैन श्रावक बोल उठा कि मेरे गुरु शान्त हैं, विशुद्ध आचरण रखने वाले हैं, जगतके जीवोंपर सच्चा प्यार रखने वाले हैं। तो कोई एक व्यक्ति बोल उठा कि ऐसी बात नहीं है। तुम्हारे गुरु तो कोढ़ी होते हैं। उसने किसी निर्ग्रन्थ मुनिको कोढ़ी देखा था। पर यह नियम तो नहीं हो सकता कि जो कोढ़ी हो वह पवित्र न हो सके। लेकिन उसने ऐसी निन्दा की। उस समय उस श्रावकने और कुछ तो न कहा, पर यही कहा कि मेरे गुरु कोढ़ी नहीं होते। तो राजाने उस व्यक्तिसे कहा कि तुम इनके गुरुवोंको कोढ़ी बताते हो। हम देखेंगे, अगर कोढ़ी न होते होंगे तो तुम्हें दण्ड मिलेगा। वह आलोचना करने वाला व्यक्ति जब घर गया और स्त्रीसे उस विषयमें चर्चा की, तो स्त्री कहती है कि अरे क्या हर्ज था—कोई गुरु अगर कोढ़ी हो, रोगी हो, उपद्रवोंसे ग्रस्त हो तो क्या उससे उस गुरुकी गुरुता मिट जाती है ? तो वह व्यक्ति बोल उठा कि अब तो मैंने बोल दिया है, अब क्या किया जा सकता है ? तो स्त्री बोली कि इसका और तो कोई इलाज नहीं है, केवल एक उपाय है। तुम उन्हीं गुरुके पास जावो जिन्हें उसने कोढ़ी देखा था, उनसे इस घटनाको बताकर निवेदन करो। गया वह शामके समय। संध्यासे पहिले गुरुको नमस्कार करके बोला वह श्रावक—महाराज मैंने बहुत अपराध किया। सारी घटना सुनायी—मैं यों बोल उठा, अब क्या होगा ? मेरी हँसी होगी, मुझे दण्ड मिलेगा, इसकी तो मुझे परवाह नहीं, पर इससे धर्मकी अप्रभावना होगी। खैर, गुरुने कहा—तुम जावो, विश्राम करो। वह घर चला आया। तो शामके समय रात्रिमें ध्यान करते हुए उस साधुने प्रभुभक्ति की, और उस भक्तिमें एक स्तवन रच डाला जिसका नाम है एकीभावस्तोत्र। भक्तिमें बोल उठा—ओह ! भगवानकी भक्तिसे तो भवभवमें संचित किये हुए दुर्निवार पापों का समूह भी नष्ट हो जाता है तो इसमें क्या आश्चर्य है कि जो संसारके दुःख दूर हो सकें।

नमस्करणीय प्रभुस्वरूप—भैया ! श्रद्धा कीजिए—प्रभुभक्तिमें अद्भुत सामर्थ्य है। एक णमोकार मंत्र जिसका वाच्य केवल आत्मविकास है, जिसमें पक्षपातकी गंध नहीं, लेकिन आत्माकी साधनाके लिए एक लोगोंकी दृष्टिमें दीवाना बनकर निकले, वही तो हमारा गुरु है, और ऐसे गुरुराज आत्मसाधनाके बलसे जब घातक कर्मोंका ध्वंस कर देते हैं तो वही तो हुआ सर्वज्ञ अरहंतदेव। और जब शरीरसे भी रहित केवल ज्ञानमात्र आत्मतत्त्व रह जाता है उसे कहते हैं सिद्धदेव। अहो ! कितना निष्पक्ष यह नमस्कार मंत्र है, केवल आत्माके विकासकी पूजा है, किसी देवका नाम नहीं, किसी गुरुका नाम नहीं, केवल आत्मविकासका स्मरण है, प्रभुभक्तिका अद्भुत प्रताप है, पर हो तो निष्कपट। जिस बालकका अपने पिताके प्रति निष्कपट प्यार होता है उस बालकको यह अधिकार है कि पितासे कभी हठ भी कर सकता है। यदि हम आपके हृदयमें प्रभुके प्रति ऐसा निष्कपट प्यार हो, उनके गुणोंका ऐसा अनुराग

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हो तो हम आप कभी स्तवनमें प्रभुसे कुछ हठ भी कर सकते हैं।

प्रभुभक्तिका प्रसाद—वे मुनिराज जिनका नाम था वादिराज—स्तवन करते करते एक बार बोल उठे कि हे नाथ ! जब आप स्वर्गसे भी यहाँ न आये थे, उससे ६ महीना पहिले से नगरमें रत्नोंकी वर्षा हो रही थी तो कुछ हमने आपको ध्यानके द्वारसे बुलाकर अपने हृदय के मंदिरमें विराजमान कर लिया। अब तो यह शरीर स्वर्णमय हो जाय तो इसमें आश्चर्य क्या ? ओह ! उस परमभक्तिका माहात्म्य देखो कि उनका सारा कोढ़ दूर हो गया। देदीप्यमान स्वर्णवत उनका शरीर होने लगा, इतनेमें ही उन्हें ख्याल आया कि उस व्यक्तिने जिसने मुझे देखकर कोढ़ी बोल दिया है, राजा यदि इस बातको झूठ साबित कर देगा तो बड़ा दण्ड देगा। उससे तो एक बहुत बड़ी अप्रभावना होगी। सो उन्होंने उस व्यक्तिके प्राण बचाने व अप्रभावना न होने हेतु अपनी छिगुली (छोटी) अंगुलीको बड़े जोरसे दाब लिया ताकि उसका कोढ़ न खतम होने पाये। सो उस छिगुलीमें कोढ़ रह ही गया। जब राजाने उन मुनि राजको देखा तो वहाँ तो कोढ़का नाम न दिखा। उस निन्दा करने वाले व्यक्तिपर राजाको बड़ा क्रोध आया। तो मुनिराज बोले—राजन् ! क्षमा करो, उसका कोई दोष नहीं है। देखो यह कोढ़ जो हमारी इस छिगुलीमें स्थित है वह सारे देहमें स्थित था। लो राजाके ज्ञान जगा और उस निन्दा करने वाले व्यक्तिको क्षमा कर दिया।

स्वसुखमें अन्यका असहयोग—भाई भगवानका प्रताप हृदयंगम कीजिए, केवल एक परिजनोंके मोहसे ही निस्तारा न होगा, ये कोई भी लोग तुम्हारा कल्याण न कर देंगे। एक सेठ था, उसके चार लड़के थे। ५ लाखकी जायदाद लड़कोंको बाँट दी और १ लाखकी जायदाद अपने पास रख ली। तो सेठने जिस कमरेमें वह रहता था उसमें भींतके अन्दर गड्ढोंमें सोना, चाँदी, रत्न जवाहरात जो कुछ भी उसके पास था रखकर उन गड्ढोंको बन्द करवा दिया था। लड़कोंको सब पता था। जब वह मरने लगा, बोल बंद हो गया, कान जरूर सही काम कर रहे थे, उस समय पंच लोग आये। कहने लगे—सेठ जी, अब तो आपका अंतिम समय है, जो कुछ दान पुण्य करना हो कर जावो, वह सब धन धर्मकार्यमें लगा दिया जायगा। सेठको वह बात अच्छी जंची, वह बोल तो न सकता था, पर इशारा करके बताने लगा कि वहाँ जो धन रखा है वह सब धर्मकार्योंमें लगा देना। उस इशारेको वे पंच लोग न समझ सके। पंचोंने लड़कोंको बुलवाकर पूछा कि भाई सेठ जी क्या कहते हैं ? तो वे लड़के कहते हैं कि सेठ जी इस बातका इशारा कर रहे हैं कि हमारे पास जो कुछ था वह सब इन भींतों के चिनवानेमें लगा दिया, अब हमारे पास कुछ नहीं बचा, वह बेचारा सेठ यह चाहकर भी कि मेरा धन धर्मकार्यमें लग जाय, पर बोल न सकनेके कारण उसे धर्मकार्योंमें न लगा सका। लड़कोंकी बातें सुनकर वह मन ही मन कुढ़ रहा था। तो भाई यहाँ किसका विश्वास बनाया

Report any errors at rajkasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाय कि कोई हमें कल्याण करनेमें मदद दे देगा ? कोई नहीं है ऐसा ।

आत्मोद्धारकके वास्तविक पितृत्व—एक ब्राह्मणकी लड़कीने किसी नग्न दिगम्बर गुरुराजका उपदेश सुना और ५ पापोंके त्यागका नियम उन गुरुराजसे लिया । जब घर आयी, अपने पितासे बताया तो उसका पिता उसपर बहुत नाराज हुआ । बोला—तुमने क्यों बिना मेरी आज्ञाके ऐसे नियम लिये, और क्यों उस गुरुने तुझे ऐसा नियम दिया । चलो चलें ऐसे मुनिके पास देखें तो सही कि कौनसा वह मुनि है ? चलते-चलते रास्तेमें देखा कि एक व्यक्ति फांसीपर लटकाया जा रहा था । लड़कीने पूछा—पिता जी यह व्यक्ति क्यों फांसीपर लटकाया जा रहा है ? तो बताया कि इसने किसी व्यक्तिकी हत्या की है इससे फांसीपर लटकाया जा रहा है । तो वह लड़की बोली—पिताजी तब फिर मैंने उस हिंसाका (हत्याका) त्याग कर दिया तो कौनसा बुरा किया ?···अच्छा बेटी चल इस एक नियमको रख ले, पर और चार नियम तो छोड़ दे । आगे चले तो देखा कि एक व्यक्तिकी जिह्वाका पुलिसके द्वारा छेदन किया जा रहा था, लड़कीने पूछा—यह व्यक्ति क्यों दण्डित किया जा रहा है ? तो बताया कि इसने झूठ बोला है ।····तो पिताजी मैंने झूठ बोलनेका त्याग कर दिया तो कौनसा बुरा किया ?····अच्छा बेटी तू इन दो नियमोंको रख ले, पर अन्य तीन नियमोंको तो त्याग दे । आगे चले तो देखा कि पुलिसके लोग एक व्यक्तिको हथकड़ी डाले हुए लिए जा रहे थे ।··· पिताजी इसका क्या मामला है ?····इसने चोरी किया है ।····तो फिर मैंने चोरीका त्याग किया तो क्या बुरा किया ?····अच्छा बेटी तू इन तीन नियमोंको रख ले, पर दो तो छोड़ दे । कुछ और आगे बढ़े तो देखा कि एक व्यक्ति बहुतसे लोगों द्वारा एक जगह खूब पीटा जा रहा था । लड़कीने पूछा—पिताजी इसका क्या मामला है ?····बेटी इसने कुशील सेवन किया है ।···तो पिताजी मैंने कुशीलको त्याग दिया तो क्या बुरा किया ?···अच्छा बेटी तू इन चार नियमोंको रख ले, पर एक नियम तो त्याग दे । कुछ और आगे बढ़े तो देखा कि पुलिस के लोग एक व्यक्तिको बाँधकर लिए जा रहे थे ।····पूछा, इसका क्या मामला है ? तो बताया—बेटी इसने तृष्णा करके दूसरोंपर अन्याय किया है ।····तो पिताजी मैंने इस तृष्णा को त्याग दिया तो क्या बुरा किया ?····अच्छा बेटी तू सभी नियम रख ले, पर चल देखें तो सही कि वह कौनसा मुनि है जिसने तुझे ये नियम दिए हैं । पहुंच गए मुनिराजके पास तो वह पुरुष बोला—मुनिराज तुमने मेरी बेटीको क्यों ५ नियम दिये ? तो वह मुनि कहता है—यह बेटी तुम्हारी नहीं, यह तो मेरी है ।···यह कैसे ? उस समय दर्शकोंका बड़ा ठट्ट जुड़ गया । तो उस मुनिने उस लड़कीके सिरके ऊपर हाथकी छाया कर दी आशीर्वाद रूप में । उस लड़कीको अपने पूर्वभवका स्मरण हुआ और जो कुछ भी उस लड़कीने पूर्वभवमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञानार्जन किया था वह सब धाराप्रवाहसे बोल उठी । तो वास्तवमें हम आप संतान तो उनके हैं जो हम आपको हितमार्गमें लगायें । लोग कहा करते हैं कि हम वीरकी संतान हैं । अरे वीरके तो संतान ही नहीं हुए, शादी वगैरह तो हुई नहीं, फिर वीरके संतान क्यों कहते ?....अरे उन्होंने हम आप सबको हितमार्गमें लगाया इससे अपनेको महावीरकी संतान कहते हैं । यहाँ निष्कपट प्यार तो वह है जो हितमार्गमें लगाये । तो वे प्रभु परमज्योतिस्वरूप हैं, परिपूर्ण सनातन हैं, कृतकृत्य हैं, ये भगवान सिद्ध इस चतुर्थ शुक्लध्यानके प्रतापसे बने हैं । अयोगकेवली गुणस्थानके प्रतापसे शेष कर्मोंका विनाश हुआ कि सिद्ध पद प्राप्त हो जाता है ।

संतृप्तः सर्वदैवास्ते देवस्त्रैलोक्यमूर्द्धनि ।
नोपमेयं सुखादीनां विद्यते परमेष्ठिन: ।।२१९६।।

संतोषमें वैभवशालिता—ये सिद्ध भगवान् संतृप्त हैं, अपने आपमें संतुष्ट हैं । असन्तोष ही दरिद्रता है, संतोष ही अमीरी है । नहीं तो आप लोग कमेटी करके निर्णय करके ही बतावो कि कितना धन प्राप्त हो जाय तो अमीर कहलायगा । आप लोग इसका कोई निर्णय नहीं दे सकते । तो वास्तवमें जो सन्तुष्ट हैं वे ही अमीर हैं । बुन्देलखण्डके एक राज्यमें राजाके मर जाने पर राजमाता राज्य करती थी । उसके एक पुत्र था । उस पुत्रका चित्त बड़ा उदार था । बहुत-बहुत धनका दान करता था जो उसे मिल जाय । वह राजमाता उस लड़के की इस उदारता व अच्छी भावनाओं के कारण बहुत प्रसन्न थी । एक बार उस राजमाताने कहा—बेटे यह जो सामने पहाड़ खड़ा है इतना धन यदि तुम्हारे सामने रख दिया जाय तो तुम कितने दिनोंमें दान कर दोगे ? तो वह बालक बोला—माँ, मैं तो एक मिनटमें ही दान कर दूँगा, पर उठाने वाले चाहे कितने ही दिनोंमें उठायें । तो यास्तवमें जो सन्तुष्ट है वह परमधनी है और जो असन्तुष्ट है वह अति निर्धन है ।

आत्मरक्षार्थ विपदाओंके स्वागतका अनुरोध—भैया ! यहाँ किसकी बात सुनते हो, किसके बहकावेमें आते हो ? यहाँ किसके लिए इतनी अधिक धनके पीछे होड़ लगाई जा रही है ? अरे उदयके अनुसार अगर आता है धन तो आये, उसमें व्यवस्था बना लेंगे । धनी होनेके लिए, अमीरीका सुख भोगनेके लिए यह मानवजीवन नहीं पाया, किन्तु तत्त्वज्ञान पाकर अपने आत्मामें बसे हुए परमात्मप्रभुका दर्शन कर करके पवित्र बननेके लिए हमने यह मनुष्यजीवन पाया है । कैसी भी स्थितियां आयें, विचार करें कि हे विपदावों, तुम तो हमारा हित करने वाली हो, जितनी आ सको आवो । अरे इन रागकी नींदमें सोये हुए पुरुषोंको जगाने वाली आप ही तो हो । जिस क्षेत्रमें विपदायें नहीं होतीं उस क्षेत्रसे मुक्ति नहीं होती । देवलोकमें जहाँ कोई विपदा नहीं, खाने पीनेका संकट नहीं, रोजिगार करना पड़ता नहीं, बस खेल खेलमें ही सारा समय व्यतीत होता है, तो क्या वहांसे किसीको मुक्त

Report any errors at vikasnd@gmail.com

होते सुना है ? आगममें देखा है भोगभूमिके क्षेत्रमें कोई विपदा नहीं। जुगलिया पैदा हुए, वे ही पुरुषस्त्री बन गए, जिन्दगीभर सुखमें रमें, अन्त समयमें गर्भ रहता, बच्चा बच्ची दोनों साथ ही पैदा हुए और मां बाप तुरन्त मर गए। तो वहां काहेका दुःख ? दुःख तो उन्हें तब हो जब वे उन बच्चा बच्चीका मुख देख लें। तो विपदायें आती हैं तो आयें। जो निर्वाण हजारों वर्ष तक तप करने पर प्राप्त हो सकता है वह निर्वाण किसी उपसर्गके आने पर अन्तर्मुहूर्तमें ही प्राप्त हो सकता है। गजकुमारसे बहुतसे लोगोंको हे विपदा ! तूने मुक्तिमें पहुंचाया। तेरी आशा करूँ तो मुझे कुछ हाथ आ सकता है, पर सम्पत्तिकी आशा करूँ तो केवल जीवन खोना है, हाथ कुछ नहीं आता है। विपदावोंसे डर मान लिया तो जीवन कायर बन गया, कुछ कर ही नहीं सकते। विपदावोंसे क्या घबड़ाना। राम लक्ष्मण सीता घर छोड़कर बनमें रहे तो उन्होंने क्या विपदा मानी ? यहां तो थोड़ी सी हानि हो जाय या लाभमें कमी आ जाय तो लोग हैरानी मानते हैं। इतना साहस बनावो कि हम तो जो भी स्थिति आयगी उसीमें खुश रहेंगे। धर्मके लिए जीवें। दरिद्रता आये तो आये, अपने बच्चोंको, स्त्रीको सबको धर्मकी बातें सुनाकर, जीवनका मूल लक्ष्य बताकर, उनके दुःखमें सहानुभूति दिखाकर उन्हें तृप्त करलें। वे तो धर्मके रंगमें रंग जायेंगे। क्या यहां कष्ट है ? जो अपने आपमें संतृप्त हो वही धनी है।

सहज ज्ञानकी प्रियतमता—प्रभु सर्व प्रकार अपने आपमें तृप्त रहा करते हैं। वे तृष्णारहित हैं, लोकके शिखरपर सदा विराजमान हैं। अब वे वहाँसे कभी चिगेंगे नहीं। इस संसारमें कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं है जिसकी उपमा भगवानके गुणोंके लिए दी जाय, भगवानके आनन्दके लिए दी जाय। जीवकी आदत रहती है कि जो वस्तु अधिक प्रिय हो उसको ही हृदयमें बसायें। तो बतावो सबसे अधिक प्रिय क्या है ? कोई एक बात बैठती ही नहीं है। जब बच्चा है तब मां की गोद प्यारी है। जब बढ़कर कुछ बड़ा हुआ तो खेल खिलौने प्रिय हो गए, कुछ और बड़े हुए तो शिक्षा प्रिय हो गई, फिर डिग्री प्रिय हो गई, फिर स्त्री पुत्रादि प्रिय हो गए, धन प्रिय हो गया। अब एक घटना घटती है—वह किसी दफ्तरमें है, खबर पहुंची कि घरमें आग लग गई। वह झट घर पहुंचकर सारा सामान, सारे बच्चे आदिको निकलवाता है। अन्तमें कोई बच्चा घरके भीतर रह गया, आग बहुत अधिक बढ़ गई तो वह कहता है अरे उस बच्चेको निकालो—१० हजार रुपये इनाम देंगे। अब उसे धन भी प्रिय न रहा, अपनी जान प्यारी हो गयी। कदाचित् हो जाय वैराग्य, साधु हो जाय तो अब वह अन्तस्तत्त्वके ध्यानमें इतना मस्त है कि अनेक उपसर्ग भी आ रहे हैं, जान भी जा रही है, और बल इतना है कि वह उन उपद्रवियोंको भगा सकता है, लेकिन इन विकल्पों को भी वह नहीं चाहता है। अब क्या प्यारा रहा उसे, सो तो बतावो ? उसे प्यारा रहा अब

http://sahjanandvarnishastra.org/

अपना ज्ञान। तो जो सबसे अन्तमें प्यारा रहा वही प्यारा कहलायेगा। तो अपने लिए प्यारा है अपने आत्माका ज्ञान, जिसके होनेपर फिर जगतमें कोई कोई चीज प्रिय नहीं लगती। वह पूर्ण ज्ञान प्रभुके प्रकट हुआ है इसलिए प्रभुका ध्यान किया जाता है।

चरस्थिरार्थसम्पूर्णे मृगमाणं जगत्रये।
उपमानोपमेयत्वं मन्ये स्वस्यैव स स्वयम् ॥२१९७॥

प्रभुकी निरुपमता---भगवानका ज्ञान किसकी तरह है, वह प्रभु किसके समान आनंदमय हैं, उन प्रभुकी उपमाके लिए यहाँ कुछ है क्या? ढूंढ़ लो। चर और स्थिर पदार्थोंसे भरे हुए इस लोकमें खूब ढुंढ़ाई कर लो, पर कोई उनकी उपमाके लायक पदार्थ न मिलेगा। अजी भगवानका ज्ञान सूर्यके समान तो होगा? अरे सूर्य तो अस्त भी हो जाता, पर प्रभुका ज्ञान-साम्राज्य कभी नष्ट नहीं होता। सूर्यको तो केतु आकर ग्रस लेता है, पर भगवानको कोई नहीं ग्रसता। सूर्यके नीचे बादल आ जानेपर उसका प्रकाश रुक जाता है, पर प्रभुके ज्ञानमें आड़े कुछ नहीं आ सकते। अच्छा---तो प्रभुका ज्ञान चन्द्रमाकी तरह तो होगा? अरे चन्द्रमा तो कभी उदयमें आता है कभी नहीं आता, प्रभु तो नित्य उदित प्रतिभासमान हैं। चंद्रबिम्ब में तो कोई कलंक लगा हुआ है---जैसे कोई बच्चे लोग कहते हैं कि चन्द्रमामें कोई बुढ़िया बैठी हुई सूत कात रही है, कोई लोग कहते हैं कि हिरण उछल रहा है, कोई लोग कहते हैं कि चन्द्रमामें बरगदका पेड़ है। यों चन्द्रमामें तो अनेक कलंक लगे हैं पर प्रभुके ज्ञानमें कहाँ कलंक है? तो यहाँ प्रभुके ज्ञानकी किससे उपमा दें? उपमा देने लायक यहां कोई नहीं है। यह कह सकते हैं कि भगवानकी उपमा लायक तो भगवान ही हैं। अनेक विधियोंसे तत्त्वज्ञान करके अपने आत्माकी साधना करके जो महान आत्मा सिद्ध प्रभु बने हैं उनके वैभवकी कुछ चर्चा चल रही है।

यतोऽनन्तगुणानां स्यादनन्तांशोपि कस्यचित्।
ततो न शक्यते कर्तुं तेन साम्यं जगत्रये ॥२१९८॥

प्रभुके अनन्त वैभवकी तुलना बतानेके लिये तीन लोकमें पदार्थोंका अभाव—कहते हैं कि अनन्त गुणयुक्त भगवानकी समता हम किससे करें, जिसका अनन्तवां अंश भी ज्ञान और आनन्द किसीके पाया जाय तो क्या उससे तुलना कर देना युक्त बात होगी? प्रभु अनंत विकासमय हैं, और यहाँ प्रभुके विकासका अनंतवां भाग विकास वाला है, तो किसका उदाहरण लेकर प्रभुका वैभव बताया जाय? जो एक विशुद्ध ज्ञानमें मग्न है, जिससे ज्ञानमें रंच मात्र भी रागद्वेषकी तरंग नहीं है, निरन्तर एक समान ही जिसका ज्ञान चल रहा है, ऐसे परमपुराण पुरुष सिद्ध महाराजकी परमनिराकुलता निरन्तर बर्त रही है। इससे उत्कृष्ट पद और क्या हो सकता है? जो यहाँका मोह छोड़ सकता है, जो असार संसारके विषय-

Report any errors at rjkasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

साधनोंका परित्याग कर सकता है वह ही तो इस पथपर चल सकेगा, कायर तो नहीं चल सकते। एक बार बुन्देलखण्डमें टीकमगढ़ स्थानमें एक पहलवान आया, वह कुश्तीमें विश्व-विजयी था। वहाँ पहुंचकर उसने कह दिया कि हम अपनी कुश्तीकी कला दिखायेंगे। जो चाहे सो हमसे लड़ सकता है। किसीको साहस न हुआ। तब एक अत्यन्त दुबला पतला आदमी उठा, जिसने कभी कुश्ती भी न लड़ी थी, वह बोला कि हम इससे लड़ेंगे, मगर अभी नहीं। यह थक करके आया है, इसको पन्द्रह दिनका समय दो, अपनी थकान मेट ले, और खा पीकर खूब तैयार हो जाय तब लड़े। यों पहिले ही उसने धमकी देकर उसको घबड़वा दिया। जब १५ दिनके बादमें कुश्ती लड़नेका समय आया तो दोनों आ गए लड़नेके लिए। वह दुबला पतला पुरुष साहस भरे शब्दोंमें कहता है कि तुम कौनसी कुश्ती लड़ोगे ? सिर मसकनेकी कुस्ती लड़ोगे या दाँव पेंचकी ? तो वह पहलवान बोला कि सिर मसकनेकी कुश्ती लड़ेंगे। वह पहलवान—कौनसी कुश्ती लड़ोगे, ऐसा सुनकर और भी घबड़ा गया। वह दुबला पतला आदमी कहता है अच्छा पहिले तू हमारा सिर मसक। उसने सिर मसका तो उसे अभ्यास था, सहन कर लिया। अब सिर मसकनेकी कुश्तीमें तो एक कलाकी बात है। हर एकमें तो सब जानकारी नहीं होती, कहां नस है, कहाँ मसकना, क्या करना, वह तो एक ज्ञान सम्बंधी बात है। तो जब उस दुबले पतले आदमीने उसके सिरको मसल दिया तो वह पहलवान बोल उठा—बस छोड़ दो, अब तुम जीत गए। तो साहसकी बात बतलाते हैं कि साहस हो तो क्या नहीं किया जा सकता। और आत्मकल्याणके लिए साहस कहीं खरीदना नहीं है, उसमें किसी परकी अपेक्षा नहीं है। दृढ़तासे चित्तमें एक चिन्तन ही तो करना है कि मुझे शान्ति मिल सकती है तो मेरेको केवल मेरे दर्शनसे अनुभवसे ही मिल सकती है। तो ऐसे शुद्ध चैतन्यतत्त्वकी जिसने उपासना की हो, वह होता है कर्मोंसे मुक्त। उस मुक्त पुरुषके वैभवकी यह बात चल रही है।

शक्यते न यथा ज्ञातुं पर्यन्तं व्योमकालयोः।
तथा स्वभावजातानां गुणानां परमेष्ठिनः ॥२१६६॥

परमेष्ठी प्रभुके गुणोंका ज्ञान किये जानेकी अशक्यता—जैसे कोई आकाश और काल को मापे तो क्या उसके अन्तको पा सकता है ? नहीं पा सकता। इसी तरह स्वभावसे उत्पन्न हुए परमेष्ठियोंके गुणोंका कोई अन्त भी पा सकता है क्या ? नहीं पा सकता। कोई आकाश का आखिरी ढूंढ़ना चाहे तो वह पा सकेगा क्या ? अगर आखिरी आया तो उसके बाद क्या है सो बतावो ? या तो कहोगे कि पोल है या कहोगे कि पर्वत आदिक हैं। पर इस पोलका ही तो नाम आकाश है, और जो पर्वत आदिक हैं वहाँ भी आकाश है और उसके बाद भी कहीं भी जावो, सर्वत्र आकाश है। और फिर लोक इतना महान है कि जिसका अन्त ही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं है। जैसे कोई आकाशका अन्त समझना चाहे तो वह समझसे बाहर है इसी प्रकार भगवानके गुणोंका कोई अन्त समझना चाहे तो वह भी समझसे बाहर है। यह सब वैभव कैसे मिलेगा? कषायोंका अभाव होनेसे। अपने आत्मस्वरूपका परिज्ञान हो, उसमें मग्नता हो तो यह वैभव प्राप्त होगा, पर इतनी कायरता है कि कषाय नहीं छोड़ सकते। क्रोधके कारण उपस्थित हों तो क्रुद्ध हो जाते हैं। जरा-जरासे प्रसंगोंमें लोग अपनी नामवरीका, अपने सम्मानका, घमंडका बर्ताव करते हैं, जरा-जरासी चीजोंके लोभमें मायाचार बर्तते हैं, तृष्णा इतनी बेहद लगा रखी है कि जिसका कोई आरोपार नहीं। तो ऐसे बर्ताव वाले व्यक्ति कैसे हितमार्गपर चल सकेंगे? नकलसे काम न बनेगा। काम तो असलियतसे ही बनेगा।

तत्त्वप्रतीति बिना उत्कर्षकी अशक्यता—एक कोई लकड़हारा था, उसको जंगलमें एक मुनिराजके दर्शन हुए। बैठ गया मुनिराजके पास और कहा—महाराज! मुझे भी कुछ नियम दीजिए। तो मुनिराजने कहा—णमो अरिहंताणं, इस मंत्रका हर जगह, हर स्थितियों में, हर समय जाप करो। लो वह घर चला आया, अब तो उसको उसी मंत्रकी धुनि बन गई। कोई भी उससे कुछ कहे—वह उत्तरमें णमो अरिहंताणं बोलता। स्त्री कहती—क्या कुछ कमाने न जावोगे? वह बोला—णमो अरिहंताणं।....अरे ऐसे ही काम चल जायगा?.... णमो अरिहंताणं। एक बार स्त्रीने कहा—चलो खीर बनी है खा लो, वह बोला णमो अरिहंताणं, रोषमें आकर स्त्रीने हाथ पकड़कर खींचकर चौकेमें बैठा दिया और कहा अब तो खावो—वह बोला—णमो अरिहंताणं। तो उस स्त्रीको गुस्सा आया और चूल्हेसे एक अधजली लकड़ी उठाकर उसके सिरपर मारी। लकड़ी फट गई और उसके अन्दर कुछ भरे हुए मोती बिखर गए। लो, वह तो अब मालोमाल हो गया। एक दिन पड़ौसकी किसी सेठानीने पूछा कि भाई तुम इतनी जल्दी कैसे धनिक बन गए? तो उसने सारा हाल कह सुनाया। उस सेठानीने सोचा—वाह यह तो धनिक बननेका बड़ा ही अच्छा उपाय है। सेठ जी से कहा कि तुम हर जगह हर समय हर स्थितियोंमें णमो अरिहंताणं कहना, फिर हम काम बना लेंगी। सेठानीने खीर बनायी। कहा चलो खीर खा लो, सेठ बोला—णमो अरिहंताणं, सेठानीने हाथ पकड़कर जबरदस्ती चौकेमें बैठा दिया और कहा अब तो खावो। तो वह सेठ बोला—णमो अरिहंताणं। सेठानीने गुस्सेका जैसा रूपक बनाकर एक अधजली लकड़ी उठाकर सेठके सिरपर मारा, अब इधर उधर देखती है कि रत्न बिखरे या नहीं। अरे वह तो नकल थी, असलियत थोड़े ही थोड़े ही थी। सेठको कोई उस णमोकार मंत्रसे श्रद्धा थी क्या? श्रद्धा तो न थी। तो श्रद्धा सहित अगर इतने ही पदका कोई जाप करे, पूर्ण णमोकार मंत्रकी तो बात है ही, इस एक ही पदका कोई श्रद्धासहित जाप करे—मुझे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कुछ न चाहिए, प्रभुकी छत्रछाया चाहिए. प्रभुका गुणस्मरण चाहिए, यों उस प्रभुकी यदि कोई हार्दिक उपासना करे तो उसपर संकट नहीं ठहर सकते। हम पहिले श्रद्धा तो लायें। मनको पवित्र बनाना सर्वप्रथम काम है। सो जो काम प्रभुने किया, जिस भीतरी भावकी बात जो उन योगीश्वरोंने किया उस पथपर चलें तो हमारा भी जीवन सफल हो सकता है।

गगनघनपतङ्गाहीन्द्रचन्द्राचलेन्द्र,
क्षितिदहनसमीराम्भोधिकल्पद्रुमाणाम् ।
निचयमपि समस्तं चिन्त्यमानं गुणानां,
परमगुरुगुणौघैर्नोपमानत्वमेति ॥२२००॥

प्रभुगुणोंके उपमानका अभाव—भगवानका ज्ञान, भगवानका आनन्द, भगवानका साम्राज्य कितना महान है? आकाश सबसे महान है, पर आकाशसे भी महान है प्रभुका ज्ञान। प्रभुके ज्ञानमें समस्त लोकाकाश एक बिन्दुकी तरह प्रतिभात होता है। यहाँ किसकी उपमा दी जाय? मेघको बताते तो हैं गम्भीर, पर क्या गुण है मेघमें? अरे ये सब एक क्षणिक पदार्थ हैं। उस ज्ञानानन्दस्वरूपकी इनसे क्या उपमा दी जा सकती है। सूर्य, चन्द्र, मेरु, पृथ्वी, अग्नि, वायु, कल्पवृक्ष इनसे प्रभुका गुणसमूह चिन्तन किया जाय तो संतुलन नहीं हो सकता। इनकी तरह प्रभुका ज्ञान और आनन्द है ऐसा कहा नहीं जा सकता कोई पदार्थ है ही नहीं। सारे दुःख मिट जायें और आनन्द ही आनन्दमें मग्न रहा करें ऐसी स्थितिकी और किससे तुलना की जा सकती है? उससे उच्च और कुछ नहीं है। देखो जिसमें आनन्द भरा है, जिससे आनन्द मिलता है वे सब चीजें आपकी आपमें बसी हुई हैं। कहीं बाहरसे नहीं लाना है। जब जरा बाह्यपदार्थोंकी दृष्टि, बाह्यका विकल्प छोड़ें तो खुद ही यह प्रभु है, खुद ही यह अपने आपकी परख कर लेगा।

कल्याणके लिये उम्रका हिसाब लगानेकी अनावश्यकता—जिस स्त्री, पुरुष, गृहस्थ, साधु, जवान अथवा बच्चा, जिसको भी अपने आपके आत्मस्वरूपका अनुराग जग गया धन्य तो उसका जीवन है। इसमें उम्रकी बात क्या? ८ वर्षका भी बालक सम्यग्दर्शन उत्पन्न कर सकता है और साधु होकर चारित्र पालकर भगवान बन सकता है। कृष्णकी सभामें जब नेमिनाथ स्वामीके समवशरणमें व्याख्यान सुनकर आये श्रीकृष्ण जी! दरबार लगा था, वहाँ कहा कि देखो यह द्वारिकापुरी बारह वर्षमें समाप्त होगी। जिसे उत्थान करना हो, जिसे जो कुछ करना हो सो करे। तो भरी सभामें प्रद्युम्न बच्चा खड़ा हो गया, कोई अधिक उम्र न थी, शादी हुए थोड़े दिन हुए थे, वह प्रद्युम्न खड़ा होकर बोला—मुझे तो विरक्ति हुई है और सब घर परिवार छोड़कर दीक्षाके लिए जाऊँगा। लोग समझाते हैं—श्रीकृष्ण जी बोले—बेटा क्या कहते हो? और लोग भी बोले—अरे छोटी उम्र है तुम्हारी, अभी दीक्षा लेने क्यों जा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रहे हो ? तो वह प्रद्युम्न कहता है कि अब तो मुझे किसीसे भी अनुराग नहीं रहा, मैं अब इस संसारके खम्भ बनकर रहना नही चाहता। चल दिया वहाँसे। पहुंचा घर और स्त्रीसे कहा कि हमें तो अब विरक्ति हुई है, हम तो जा रहे हैं दीक्षा लेने। तो स्त्री कहती है कि तुमको अभी अच्छी तरह विरक्ति नही हुई। क्योंकि यदि अच्छी तरहसे विरक्ति हुई होती तो हमारे पास खबर भी देने न आते। और तुम तो जब विरक्त होओ तब होओ, लो मैं तो यह चली। तो कल्याणके लिए क्या उम्र पूछना ? जब जिसमें ज्योति जगे तब उसे अपना लाभ उठा लेना चाहिए।

धर्मविद्याका महत्त्व आंकनेका अनुरोध--देखिये यह धर्मविद्या आपकी लौकिक विद्यावों से कितने ही गुणा महत्त्व रखती हैं, पर समयका प्रभाव है लोग लौकिक विद्यावोंका, आजीविकाकी विद्यावोंका बहुत महत्त्व बताते हैं, पर धर्मविद्याको बेकार समझते हैं। समय मिला तो धर्म पढ़ लिया। वह तो एक दिल बहलावाकी बात है, पर यह तो बतावो कि अन्तमें इन लौकिक विद्यावोंसे लाभ क्या मिल जायगा ? महत्त्व दें धार्मिक ज्ञानको। ये तो संसारकी परिस्थितियां हैं। जो भी परिस्थिति मिलेगी उस ही में गुजारा कर सकते हैं, और फिर परिस्थितिके उत्पन्न करनेके हम अधिकारी नहीं हैं, ये परिस्थितियां तो उदयानुसार होंगी, पर अपने आपके ज्ञानप्रकाशकी बात तो हमारे ही आधीन है, और उसमें इतना अद्भुत आनंद है कि सदाके लिए संसारके सब संकट टल जायें। यह बात इस धर्मविद्याके प्रतापसे ही प्राप्त हो सकती है। तो हम अब अपमा पैंतरा बदलें अर्थात् अपने उपयोगको बदलें, अन्यथा वह समय निकट ही है कि जब यहाँका सब कुछ छोड़कर जाना होगा।

प्राप्त समयका लाभ उठानेकी शीघ्रताका अनुरोध—एकका मित्र बीमार था, वह शामके समय उस मित्रके घर उस मित्रसे मिलनेके लिए गया। मित्रसे पूछा कि भाई क्या हाल है ? तो मित्रने बताया कि आज तो मित्र ! बिस्तरसे उठा जाता नहीं। दूसरे दिन वह फिर दोपहरको गया, और वह मर गया था सुबह ही। जब वहाँ पूछा तो उसे वह मित्र न दिखा। तो घरके लोगोंसे पूछा कि आज उन्हें किसी दूसरी जगह लिटा दिया क्या ? कहाँ है हमारा वह मित्र ? तो घरके लोग बोले—आज तो वह दुनियासे चला गया। तो वह झुंझलाकर कहता है—अरे, दुनियासे चला गया। "कल तक तो यूं कहते थे कि बिस्तरसे उठा जाता नहीं और आज दुनियासे भी चल देनेकी ताकत आ गई। तो क्या विश्वास है इस जीवनका ? वह तो खैर बीमार था, पर जो बीमार नहीं हैं, वे भी तो चले जा रहे हैं। जो अभी खुश हैं उनके भी मरणका पता नहीं कि किस समय मरण हो जाय ? तो भाई यहाँके समागमोंको तरसकर हम क्या लाभ उठायेंगे ? इस धर्मविद्याका अभ्यास करना चाहिए और उसमें ही अपनी रुचि बढ़ाना चाहिए।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नासत्पूर्वाश्च पूर्वा नो निर्विशेषविकारजाः ।
स्वाभाविक विशेषा ह्यभूतपूर्वाश्च तद्गुणाः ।।२२०१।।

प्रभुगुणोंकी भूतपूर्वता और अभूतपूर्वता—सिद्ध भगवानमें जो गुण प्रकट हुए हैं वे गुण ऐसे नहीं हैं कि पहिले न थे और ऐसा भी नहीं है जो पहिले थे । इसका तात्पर्य यह है कि आत्मामें यदि ज्ञान आनन्द आदिक गुण न हों तो किसी भी प्रकार वे प्रकट नहीं हो सकते । धूलमें तेल नहीं है तो धूलको कितने ही बार पेला जाय तो भी उससे तेल नहीं निकल सकता, ऐसे ही जिसमें जो शक्ति नहीं है कितने ही उपाय किए जायें, उससे वह वस्तु प्रकट नहीं हो सकती । सिद्ध भगवानके आत्मामें एक विकास है तो आत्मामें वह स्वयं है गुण तब सिद्ध भगवानके प्रकट हुआ हैं । कारीगर लोग मूर्ति बनाते हैं पत्थरमें से तो कारीगर क्या वह चीज बना लेता है जो पत्थरमें न थी ? नहीं बना सकता । जो निकला है पत्थरमें से, जो प्रतिमा बनी है, जो मूर्तिरूप हुआ, वह अंग वह अवयव वह स्कंध पत्थरमें था । छेनी हथौड़ेसे क्या किया कारीगरने ? कोई चीज नई लगायी क्या ? जो उसके आवरक पत्थरके टुकड़े थे उन्हें दूर किया, चीज वही प्रकट हुई जो पत्थरमें पहिलेसे थी । इसी प्रकार जब आत्मा परमात्मा होता है तो परमात्मामें नई चीज नहीं आती है । जो आत्मामें था और वह विषयकषाय कर्म आदिक आवरणोसे ढका हुआ था, एक समाधिके उपायसे, ध्यान अग्निसे उन आवरणोंको जलाया, हटाया तो जो था, सो ही सिद्ध रूपमें प्रकट हुआ । इस कारण कहते हैं कि सिद्धभगवंतमें जो गुण प्रकट हुए हैं वे ऐसे नहीं हैं कि पहिले न थे अब हुए हैं । दूसरी बात सुनो— सिद्ध भगवानमें जो गुण प्रकट हुए हैं वे पहिले नहीं थे, केवलज्ञान केवल दर्शन आदिक गुण सिद्ध भगवानमें जो हैं क्या वे सिद्ध होनेसे, अरहंत होनेसे पहिले थे ? तो एक दृष्टिसे यह बात जंचती है कि भगवानमें जो गुण प्रकट हुए हैं वे पहिले न थे अब हुए और एक दृष्टिसे यह बात जंच रही है कि सिद्ध भगवंतमें जो गुण हुए हैं वे पहिले न थे और एकदम नये ही कहींसे आ गए, ऐसी बात नहीं है । इसका कारण यह है कि जो बिल्कुल ही कुछ नहीं है उसकी उत्पत्ति नहीं है, उसका आविर्भाव नहीं, प्रकाश नहीं । वह गुण स्वाभाविक विशेष विकारभूत नहीं है, इस कारणसे भगवानके जो गुण हैं वे अभूतपूर्व भी हैं और पहिले थे वे ही उत्पन्न हुए हैं । ये दोनों बातें यथार्थ जान लेना चाहिए ।

वाक्पथातीतमाहात्म्यमनन्तज्ञानवैभवम् ।
सिद्धात्मनां गुणग्रामं सर्वज्ञज्ञानगोचरम् ।।२२०२।।

सिद्धात्माके गुणोंकी सर्वज्ञज्ञानगोचरता—जिसको माहात्म्य वचनोंसे नहीं कहा जा सकता, जिसके अनन्त ज्ञानका विभव है ऐसे सिद्ध परमेष्ठियोंका गुणसमूह सर्वज्ञके ज्ञानके गोचर है । जैसे धनिकोंकी बात धनिक ही जानें, क्या खर्च होता है, क्या खर्च दिखाते हैं,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्या आय दिखाते हैं—ये सब बातें धनिकोंको ही विदित होती हैं। गरीब क्या जानें ? जो जिसके समक्ष हो वह उसके दुःख, सुख, चिन्ता, उलझन आराम आदि सारी बातोंको परख सकता है। ज्ञानी पुरुष ज्ञानीके मर्मको परख सकता है। जो जिस गुणका प्रेमी है वह उस गुणकी बातको जान सकता है। एक सभामें संगीत हो रहा था, तो बहुतसे लोग एक लाइनमें संगीत वाले बैठे हुए थे और संगीत बजा रहे थे। उस समय एक कोई अंधा पुरुष भी उस संगीतसभामें बैठा हुआ था। वह भी संगीतकलाका विशेष जानकार था। तो उसने उस संगीत के सम्बंधमें बताया कि इनमें जो इतने नम्बरपर बैठा हुआ तबल्ची है उसका अंगूठा निजी नहीं है, बनावटी है, वह तबलेकी आवाज सुनकर परख गया था। जब लोगोंने देखा तो उन्हें यह बात सही दीखी। उसकी उस कलाको देखकर जो उसमें नृत्यकारिणी वेश्या थी वह बहुत प्रसन्न हुई। अब दूसरी बात देखो—उस संगीतके साथ-साथ वह नृत्यकारिणी गाती भी जाती थी और नाच भी रही थी। तो उस समय उसके शरीरपर कोई भ्रमर आकर बैठ गया। अब वह नृत्यके समय, संगीतके समय यदि वह अपने हाथसे उस भ्रमरको उड़ाये तो उसकी उस नृत्यकलायें कुछ अन्तर आ सकता है। तो उस नृत्यकारिणीने उस संगीतकी ही कलामें उस गानेके भीतर ही ऐसी श्वास भरी आवाज छोड़ी कि वह भ्रमर अपने आप शरीरपरसे उड़ गया। इस कलाको भी वह अंधा पहिचान गया याने जो जिस कलाके विशेष जानकार होते हैं वे उस कलासम्बंधी अत्यन्त सूक्ष्म बातको भी पकड़ लेते हैं तो उस अंधेने नृत्यकारिणीकी कलापर प्रसन्न होकर जो एक दुशाला ओढ़े हुए था नृत्यकारिणीको न्यौछावर कर दे दिया। राजाने पूछा कि तुमने इसमें ऐसा क्या काम देखा जो अपना नया दुशाला इसको भेंट कर दिया ? तब अंधेने उस नृत्यकारिणीको नया दुशाला भेंट करनेका कारण बताया। तब लोगों को विदित हुआ। तो जो ऐसी सूक्ष्म कलावोंके जानकार होंगे वे ही तो इस तरहकी सूक्ष्म बात बता सकेंगे। सर्वज्ञके वैभवको सर्वज्ञ ही बता सकेंगे।

स स्वयं यदि सर्वज्ञः सम्यग्ब्रूते समाहितः।
तथाप्येति न पर्यन्तं गुणानां परमेष्ठिनः ॥२२०३॥

सर्वज्ञके गुणोंका सर्वज्ञ द्वारा भी अवक्तव्यता—सर्वज्ञ भगवान प्रभु प्रभुके गुणोंको जानते हैं, किन्तु वे प्रभु भी यदि प्रभुके गुणोंको कहने बैठ जायें तो वे भी कहकर उसका अंत न कर सकेंगे। किसी नदीमें जहाँ पानी नहीं रहा, वहाँ जितनी धूल पड़ी है, जितने छोटे-छोटे कण पड़े हैं उन सबको आप वहाँ खड़े हुए जानते हैं कि नहीं ? और अगर पूछें कि बतावो वे कण कितने हैं ? तो क्या आप उनकी संख्या बता सकेंगे ? नहीं बता सकते, किन्तु जानते सब हैं। तो सर्वज्ञमें प्रभुमें कितने गुण हैं, क्या वैभव है यह सर्वज्ञके ज्ञान द्वारा गोचर है। वे जानते हैं, किन्तु वे भी यदि कहने लग जायें तो कह नहीं सकते। प्रयोजन यह है कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

संसारकी किसी मायामें, वैभवमें, विषयसाधनोंमें, किन्हींमें भी मोह मत बढ़ावो, व्यामुग्ध मत हो। कुछ बनता है मोह, पर जानते तो रहो कि ये सब भिन्न चीज हैं, भिन्न समागम हैं। यहाँ राग करनेसे पूरा न पड़ेगा। जो किया जा रहा है राग वह हमारी गल्ती है। किसी दिन तो वियोग होगा, और वियोगके समयमें बहुत क्लेश भोगना पड़ेगा। तो इन प्राप्त समागमोंके प्रति ऐसा ध्यान बनाये रहो और अपने आपमें अपनी परख करके अपने आपके स्वरूप को निहार करके तृप्त रहो, सुखी रहो। बस वही वास्तविक अमीरी है। इस उपायसे प्रभुता प्राप्त कर लोगे और स्वयं जान जावोगे कि प्रभुका वैभव क्या है?

वास्तविक अमीरी—बाह्य चीजोंमें यदि अपना लगाव है तो चाहे राजा ही क्यों न हो फिर भी वह गरीब है। एक फकीरको कोई पुरुष एक पैसा चढ़ा गया, विचार किया कि यह पैसा मैं उसे दूंगा जो मुझे अत्यन्त गरीब दिखेगा। बहुत ढूँढ़ा, पर कोई भी अत्यन्त गरीब न मिला। एक बार बादशाह हाथीपर बैठा हुआ अपनी सेना सहित उसके पाससे निकला, वह किसी दूसरे राजापर चढ़ाई करने जा रहा था। साधुने और लोगोंसे जानकारी कर ली कि यह बादशाह दूसरे किसी छोटे राजापर चढ़ाई करने जा रहा है, तो सोच लिया कि इससे गरीब और कौन हो सकेगा जो दूसरे निरपराध छोटे राजाका धन हड़पने जा रहा है। सोचा कि यह पैसा मैं इस बादशाहको दूंगा। जब पासमें आया तो साधुने उसकी झोलीमें वह पैसा फेंक दिया। बादशाहने पैसा फेंकनेका कारण उस साधुसे पूछा। तो उसने बताया कि यह पैसा हमें किसीने चढ़ाया था, सो विचार किया था कि हमें जो सबसे अधिक गरीब दीखेगा उसीको यह पैसा दूँगा। तुमसे गरीब मुझे कोई दिखा नहीं सो यह पैसा मैंने तुम्हें दिया।···· वाह मैं गरीब कैसे? मेरे पास तो इतनी सेना, इतना वैभव, इतना सब कुछ।····अरे यदि आप गरीब न होते तो बेचारे निरपराध छोटे राजाका धन हड़पने तुम क्यों जाते?····बादशाहके ज्ञान जगा, और कहा—महाराज, आपके इस पैसेने मुझे धनिक बना दिया। वहींसे वह बादशाह वापिस लौट आया। तो इस बातकी चिन्ता छोड़ देनी चाहिए कि मेरे पास तो कुछ भी वैभव नहीं है। जो वैभव है वह भी जरूरतसे अधिक है, ऐसा भाव बनायें।

आत्महितनिर्णय—अरे इस वैभवकी प्राप्ति करनेके लिए यह जीवन नहीं पाया है। यह जीवन पाया है—सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन व सम्यक्चारित्रके पालनके लिए। दुनियामें हजारों लोग आये और अपनी-अपनी करतूत दिखाकर चले गए, केवल ग्रन्थोंमें व इतिहासमें उनका नाम शेष है। क्या है यहाँ? तो इस चिंताको दूर करें और जो मिलता है वह भाग्य से मिलता है। उसमें घरके सभी जीवोंका भाग्योदय काम करता है। तो फिर जो कुछ आय हो उसीमें व्यवस्था बनाकर गुजारा चलायें और तृप्त रहें। भगवानकी भक्ति करके और अपने आपके वैभवको निहारकर। क्या दुःख है? विपदा तो यह है कि कहीं कुसंग न हो जाय,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कहीं बुद्धि न फिर जाय । विपदा तो इसका नाम है । धन कम हुआ यह कोई विपदा नहीं है । रही पोजीशनकी बात । तो आत्माका महत्त्व बड़प्पन तो आत्माके विकासमें है और बात में नहीं है, तो अपने वैभवको, अपनी ज्ञानशक्तिको, अपने ज्ञानपुञ्जको निरखिये और उसका निर्णय रखिये तो उससे आपकी सच्ची शोभा बढ़ेगी । बाहरी कपड़ोंसे, शृंगारोंसे इस अपवित्र देहकी शोभा बढ़ायी तो क्या बढ़ाया ? अपने आपमें बसा हुआ जो ज्ञान है, गुण है, निधि है, परम शान्ति है उस स्वभाव निधिको निरखकर तृप्त होवो तो अपनी वास्तविक शोभा बढ़ेगी । तो एक इस अपने कारणपरमात्मतत्त्वके आलम्बनसे वे गुण विकसित होते हैं जिन गुणोंको सर्वज्ञ प्रभु ही जान सकते हैं । वे सर्वज्ञ भी यदि उन गुणोंको बताना चाहें तो उनका अन्त न बता पायेंगे ।

त्रैलोक्यतिलकीभूतं निःशेषविषयच्युतम् ।
निर्द्वन्द्वं नित्यमत्यक्षं स्वादिष्टं स्वस्वभावजम् ।।२२०४।।
नरैश्वर्यमविच्छिन्नं स देवः परमेश्वरः ।
तत्रैवास्ते स्थिरीभूतः पिबन् ज्ञानसुखामृतम् ।।२२०५।।

प्रभुकी ज्ञानामृतसे तृप्तता—वे प्रभु योगीश्वर उपमारहित, नामरहित निरन्तर अनुभव में आ रहे हुए उस स्वाभाविक ज्ञानानन्दामृतको पीते हुए स्थिर होकर वहीं ही ठहर जाते हैं ऐसा है वह अमृत जो तीनों लोकमें अदृष्ट हैं, समस्त विषयोंसे परे है, अतीत है, जिसमें कि दंदफंद कलह नहीं है, निरुपम है ऐसे स्वाभाविक ज्ञानानन्दामृतको पीते हुए वे प्रभु अपने स्वभावमें ही ठहर जाते हैं । यहाँ भी तो जब कोई कभी बहुत ही रुचिकर स्वादिष्ट चीज खा रहा होगा तो उस समयमें यहाँ वहाँकी बातें भूलकर अपने आपमें हो सिकुड़े हुए होकर, एकतान होकर उसके रसको अनुभवते हैं । तो जब कोई उच्च आनन्द प्राप्त होता है तो फिर उसे छोड़कर बाहर कहाँ जाय ? प्रभुको स्वाभाविक केवलज्ञान और अनंत आनंदका जो अनुभवन है उस अनुभवको भोगकर अब वह बाहर कहाँ जाय ? वह निर्विकार है, अपने ही आनन्दमें निरन्तर तृप्त रहता है ।

मोहियोंकी क्लेशसाधनोंमें रुचि—मोही जन ही यहाँके लौकिक वैभवको कुछ घटनाओंको निरखकर मौज मानते हैं । मोहियोंकी ही ऐसी अवस्था है कि अपने स्वभावसे च्युत होकर बाहरमें अपना उपयोग रमायें । एक जगह एक महफिल लगी हुई थी । उस महफिल में मिरदंग भी बज रहा था, मंजीरा भी बज रहे थे, और एक वेश्या गीत गा गाकर नाच रही थी । तो उस समयके दृश्यको कविने अपनी कवितामें खींचा है । वह कविता क्या है कि मिरदंग कहे धिक है, धिक है, मंजीरा कहे किनको, किनको । तब वेश्या हाथ पसारि कहे, इनको इनको इनको इनको । मिरदंगकी आवाज ऐसी ही तो होती है ना—धिक् धिक्, अर्थात्

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

धिक्कार है धिक्कार है। मंजीरेकी आवाज किनको किनको की होती है, अर्थात् मंजीरा मानो पूछ रहे हैं मिरदंगसे कि किनको धिक्कार है। तब वेश्याने हाथ पसारकर चारों दिशावोंमें बैठे हुए लोगोंकी ओर संकेत करते हुए कहा—इनको, इनको, इनको, इनको। अर्थात् इन चारों दिशावोंमें बैठे हुए लोगोको धिक्कार है। तो देखो—जो घटना इस प्रकारकी बात बता रही है उसी घटनामें लोग रति करते हैं। उसीमें वे मौज मानते हैं।

शान्तिके अनुभवकी पात्रता—एक कहावत है कि वे पुरुष खीरको क्या जानें जो पंजीरीमें ही रम रहे हैं। पंजीरी होती होगी कोई बासी बफूड़ी चीज। जो इन बासी बफूड़ी चीजोंमें ही रम रहे हैं वे क्या जानें खीरका स्वाद ? ऐसे ही जिनको विषयोंमें प्रीति लगी है, बाहरी पदार्थोंमें राग लगा हुआ है वे पुरुष किसी भी समय अपने आत्मामें बसे हुए उस सहज कारणपरमात्मतत्त्वके दर्शन नहीं कर सकते हैं। शरण तो केवल अपनेको अपने आपमें ही मिलेगा, अन्यत्र न मिलेगा। यह बात बिल्कुल सत्य है, ऋषि संतों द्वारा कही हुई है। इस बात को लिखकर रख लो कि जगतमें शरण अपनेको अपने आपमें ही मिलेगा अन्यत्र नहीं। शान्ति तो अपने आपमें ही आकर प्राप्त हो सकती है, बाहरमें शान्ति कभी भी नहीं पा सकते। तो वह उपाय करना होगा, अपने स्वभावका आलम्बन लेना होगा जिसके प्रसादसे संसारके संकट सदाके लिए छूट सकते हैं।

देवः सोऽनन्तवीर्योद्गमवगमसुखानर्घ्यरत्नावकीर्णः,
श्रीमान्त्रैलोक्यमूर्ध्निप्रतिवसति भवध्वान्तविध्वंसभानुः।
स्वात्मोत्थानन्तनित्यप्रवरशिवसुधाम्भोधिमग्नः स देवः,
सिद्धात्मा निर्विकल्पोऽप्रतिहतमहिमा शाश्वदानन्दधामा ॥२२०६॥

प्रभुकी अनन्त चतुष्टयात्मकता—इस ज्ञानार्णव ग्रन्थमें कर्ममुक्त अनन्त आनन्दमय ज्ञानस्वरूप देवको आदर्श मानकर उस पदमें पहुंचनेके उपायोंका वर्णन किया गया है। तो ध्यानका वर्णन करके उसके फलमें जो स्थिति प्राप्त होती है उस स्थितिका यह एक अंतिम मनन है। देव वह है जो अनन्त शक्तिमान है। अपने आपके गुणोंके विकासको बनाये रहना, उससे न हटना, इस प्रकारके असीम कायरूपको बनानेके लिए अनन्त बल काम दे रहा है। प्रभुका अनन्त बल ऐसा बल नहीं है कि हम आपको भी कुछ सुख दुःख दे अथवा कुछ बनाये रहे। यहाँ उनके वशकी बात नहीं चल रही है। यह तो वस्तुस्वरूपके विरुद्ध ही बात है, किन्तु उनका बल उनके अपने आपके गुणोंके विकासमें जुटता रहता है, उससे हटने नहीं देता है, यह है प्रभुका अनन्त बल। ये प्रभु अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तआनन्दरूप अमूल्य रत्नोंके पिटारे हैं।

स्वके उद्धारके लिये उत्सहन—आत्माको क्या चाहिए ? शान्ति। वास्तविक शांति

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

धिक्कार है धिक्कार है। मंजीरेकी आवाज किनको किनको की होती है, अर्थात् मंजीरा मानो पूछ रहे हैं मिरदंगसे कि किनको धिक्कार है। तब वेश्याने हाथ पसारकर चारों दिशावोंमें बैठे हुए लोगोंकी ओर संकेत करते हुए कहा—इनको, इनको, इनको, इनको। अर्थात् इन चारों दिशावोंमें बैठे हुए लोगोंको धिक्कार है। तो देखो—जो घटना इस प्रकारकी बात बता रही है उसी घटनामें लोग रति करते हैं। उसीमें वे मौज मानते हैं।

शान्तिके अनुभवकी पात्रता—एक कहावत है कि वे पुरुष खीरको क्या जानें जो पंजीरीमें ही रम रहे हैं। पंजीरी होती होगी कोई बासी बफूड़ी चीज। जो इन बासी बफूड़ी चीजोंमें ही रम रहे हैं वे क्या जानें खीरका स्वाद ? ऐसे ही जिनको विषयोंमें प्रीति लगी है, बाहरी पदार्थोंमें राग लगा हुआ है वे पुरुष किसी भी समय अपने आत्मामें बसे हुए उस सहज कारणपरमात्मतत्त्वके दर्शन नहीं कर सकते हैं। शरण तो केवल अपनेको अपने आपमें ही मिलेगा, अन्यत्र न मिलेगा। यह बात बिल्कुल सत्य है, ऋषि संतों द्वारा कही हुई है। इस बात को लिखकर रख लो कि जगतमें शरण अपनेको अपने आपमें ही मिलेगा अन्यत्र नहीं। शान्ति तो अपने आपमें ही आकर प्राप्त हो सकती है, बाहरमें शान्ति कभी भी नहीं पा सकते। तो वह उपाय करना होगा, अपने स्वभावका आलम्बन लेना होगा जिसके प्रसादसे संसारके संकट सदाके लिए छूट सकते हैं।

देवः सोऽनन्तवीर्योद्गवगमसुखानर्घ्यरत्नावकीर्णः,
श्रीमान्त्रैलोक्यमूर्ध्निप्रतिवसति भवध्वान्तविध्वंसभानुः।
स्वात्मोत्थानन्तनित्यप्रवरशिवसुधाम्भोधिमग्नः स देवः,
सिद्धात्मा निर्विकल्पोऽप्रतिहतमहिमा शाश्वदानन्दधामा ॥२२०६॥

प्रभुकी अनन्त चतुष्टयात्मकता—इस ज्ञानार्णव ग्रन्थमें कर्ममुक्त अनन्त आनन्दमय ज्ञानस्वरूप देवको आदर्श मानकर उस पदमें पहुंचनेके उपायोंका वर्णन किया गया है। तो ध्यानका वर्णन करके उसके फलमें जो स्थिति प्राप्त होती है उस स्थितिका यह एक अंतिम मनन है। देव वह है जो अनन्त शक्तिमान है। अपने आपके गुणोंके विकासको बनाये रहना, उससे न हटना, इस प्रकारके असीम कायरूपको बनानेके लिए अनन्त बल काम दे रहा है। प्रभुका अनन्त बल ऐसा बल नहीं है कि हम आपको भी कुछ सुख दुःख दे अथवा कुछ बनाये रहे। यहाँ उनके वशकी बात नहीं चल रही है। यह तो वस्तुस्वरूपके विरुद्ध ही बात है, किन्तु उनका बल उनके अपने आपके गुणोंके विकासमें जुटता रहता है, उससे हटने नहीं देता है, यह है प्रभुका अनन्त बल। ये प्रभु अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तआनन्दरूप अमूल्य रत्नोंके पिटारे हैं।

स्वके उद्धारके लिये उत्सहन—आत्माको क्या चाहिए ? शान्ति। वास्तविक शांति

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गए, मगर एक श्रीमान शब्द ऐसा है कि जो बड़ा ऊँचा शब्द है। जो आत्माका आश्रय करे उसे कहते हैं श्री। तो श्री है विशुद्ध ज्ञान, केवलज्ञानविकास। किसीको यदि श्रीमान कह दिया जाय तो वह गाली नहीं समझता है। तो यह श्रीमान शब्द इतना विलक्षण शब्द है कि इसको किसी छोटे व्यक्तिने भी बुरा नहीं माना। किसी कंजूससे कह दिया जाय कि आइये कुबेर साहब तो वह तो शरमा जायगा और समझ जायगा कि यह तो हमारी मजाक कर रहा है, यों वह उस शब्दको गालीरूपमें मान लेगा। जो जो भी इकहरे शब्द हैं वे स्तुतिके शब्द हैं, पर किसी छोटे पुरुषको कहा गया तो उसने गाली समझ ली। जैसे पुंगा, लुच्चा, लफंगा, नंगा आदि। ये सब शब्द तो प्रशंसाके हैं पर छोटे लोगोंको जब ये शब्द कहे जाने लगें तो गालीरूपमें वे माने जाने लगे। लफंगा अर्थात् जिसके अंग नम्र हो गए हैं, जो बड़ा विनयशील है उसका नाम है लफंगा, कितना ऊँचा शब्द है, पर लोग इस शब्दको सुनकर गाली समझ लेते हैं। लुच्चा, जो केशोंका लोच करे अर्थात् मुनिराज। पुंगा अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष। स्वस्ति त्रिलोकगुरवे जिनपुङ्गवाय। जिनेन्द्र भगवान हैं पुंगा, मायने सबसे श्रेष्ठ। बुद्धू जिसकी बुद्धि खूब ठस-ठसकर भरी है उसका नाम है बुद्धू, यों ही पचासों शब्द हैं जो बड़ा उच्च अर्थ रखते हैं, पर छोटे लोगोंको वे शब्द बोले गए इसलिए गालीरूपमें वे माने गए। गाली शब्द भी खुद बड़ा अच्छा शब्द है। गा ली, तुमने हमारी कीर्ति गा ली, स्तुति गा ली, प्रशंसा गा ली, गानेकी बात जब कही जायगी तो प्रशंसाके लिए कही जायगी, पर एक यह श्रीमान शब्द ऐसा है कि जिसे सुनकर लोगोंने बुरा नहीं माना। शायद यह सोचकर बुरा न माना होगा कि आखिर यह श्री यह ज्ञान प्रभुकी महत्ता बताता है। वे प्रभु श्रीमान हैं जो कि तीन लोकके मूर्धापर निवास करते हैं।

ज्ञानप्रकाशका सातिशय महत्त्व—प्रभु भवरूप अंधकारको नष्ट करनेके लिए सूर्यकी तरह हैं। यहाँ ही मोह ममता रागद्वेष आदि करके रचे पचे जा रहे हैं, यही है संसारका अंधकार। इस अंधकारको प्रभुने पूर्णरूपेण नष्ट कर दिया। ये प्रभु अपने आत्मामें उत्पन्न अनंत और सदाकाल रहने वाले उत्तम मोक्षामृत रूप समुद्रमें मग्न हैं, जिनको कोई विकल्प नहीं, जिनकी महिमा अप्रतिहत हैं। जो लोग नहीं जानते वे प्रभुकी महिमा नहीं कह सकते। तो इससे प्रभुकी महिमा, महत्त्व, बड़प्पन, श्रेष्ठता तो न मिट जायगी। गधे मिश्री खा लेते हैं तो उससे झट जुकाम हो जाता है, उन्हें वह पचता नहीं है, पर बड़े लोग तो उसका सेवन करते ही हैं। तो जो कलाकी बात है, आत्मतत्त्वकी बात है उसे असार समझकर यदि ये संसारके व्यामोही जन इससे अलग रहते हैं तो रहें, लेकिन इस अनुभव कलाका अवधारण करके अनेक पुरुषोंने निर्वाण प्राप्त किया जो कि अनंत आनंदमय है और अब भी उस कला का आश्रय लेकर महापुरुष अपना उद्धार कर रहे हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ज्ञानसमुद्रमें अवगाहनका सन्देश—देखिये-अपने आपमें भी यह आत्मा ज्ञानसमुद्र है। यहाँ कोई स्वरूपकी दृष्टिसे छोटा बड़ा नहीं है। जिसे आज हम बालक समझते हैं—कहो वह हमसे भी शीघ्र निष्कलंक बन सकता है। यह आत्मा ज्ञानसमुद्र है और इसमें आनंदका जल परिपूर्णरूपसे भरा है, इसमें समस्त गुण रत्न बस रहे हैं। पदार्थसमूह, यथार्थज्ञान, अनेक अनन्त गुण आदिक इसमें रत्न बस रहे हैं, मगर कुछ मगरमच्छोंने जैसे समुद्रको गंदा कर दिया इसी तरह रागद्वेष मोहरूपी इन जंतुवोंने इस ज्ञानसमुद्रको मलिन कर दिया। सो इन जंतुवोंका निवारण करें, रागद्वेष मोह छोड़ें, ये न अपनेमें पनपने पायें तो ज्ञानस्वरूप मुझमें ही है। ऐसे निर्मल ज्ञानसमुद्रमें अपनी शक्ति सम्हाल करके अवगाहन कीजिए, मग्न होइये नहाइये। भीतर प्रवेश करके कुछ खोज करके जो तत्त्व है उसको उत्कृष्टरूपसे उभार लीजिए और इस प्रकार फिर अपने आपके गुणोंमें उपयोग लगाकर, तृप्त होकर, बलिष्ट बनकर मोक्षमें पधारिये तथा समस्त संकटोंसे दूर होइये।

निजशक्तिकी सम्हालकी अनिवार्यता—देखिये—साहस जगाये बिना किसी भी उत्कृष्ट काममें सफलता नहीं मिल सकती। व्यापारमें तो लोग लाखों रुपये लगा देते हैं, उसमें तो ऐसा नहीं सोचते कि अरे टोटा हो जायगा तो फिर क्या होगा, काम चलेगा कि न चलेगा आदि। लोग लाखों रुपये उस व्यापारमें खर्च करते हैं और एक साहस बनाकर उस कार्यको करते हैं, ऐसे ही इस आत्मशान्ति महान कार्यके लिए यदि कुछ लौकिक हानियां होती हैं, तो उनकी भी परवाह न करके अपनेमें एक साहस बनाना है, अपनी इस ज्ञानभूमिमें एक ऐसा साफ स्वच्छ एक रस बनाना होता है कि उसमें किसी परका मोह न बसे। ऐसा करनेमें साहस रखना होगा तब शान्तिकी प्राप्ति हो सकेगी। क्यों जी, कोई एक दो भव तो लगा ही इस निर्मोह निराकुल दशाको बनानेके लिए, या एक भी भव नहीं लगाना चाहते और मोक्ष मिल जाय क्या ऐसी मनमें इच्छा है? अरे, जब मोक्ष हो जायगा तो फिर एक भी भव न रहेगा, फिर अपना प्यारा भव कहांसे लाओगे? तो चिन्तन मनन करके अपनी जिम्मेदारी समझ करके, किसी अन्य भवमें करेंगे ऐसी अपेक्षा न करके इस ही भवमें अपने इस करने योग्य कामको कर जाइये। आज जो भव मिला है, यदि आज महाप्रमाद किया जा रहा है तो आज जो दशा मिली है, आज जो स्थितियाँ मिली हैं वे कभी न मिल पायेंगी। इन समस्त अच्छे साधनोंके बीच रहकर एक धर्म कर्म करनेकी हो बात अपने मनमें ठान ले तो उससे सफलता मिलती है। आत्मसाधनाके लिए धनकी अपेक्षा नहीं है कि इतना धन मिल जाय तो हम धर्मसाधना कर सकेंगे। धर्म तो ज्ञानसे सम्बंधित है, आत्मदृष्टिसे सम्बंधित है, यह हर एक कोई कर सकता है। तो अपनी-अपनी शक्ति सम्हालकर अपने आपमें अपना अवगाहन करके, तत्त्वको धारण करके इन समस्त संकटोंसे दूर होनेका प्रयत्न कीजिये।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वयंके निर्भारताकी स्वयंसे ही सम्भवता—अपने आवरणके भारका परिहार अपने को ही करना पड़ेगा। घरमें किसी कमरेकी छत गिर गई, मलवा गिर गया तो अब उसे उठाने कौन आयगा ? अरे उठाना तो खुदको ही पड़ेगा। किसी दूसरेके सहारे बैठे रहें तो यों बैठनेसे तो काम न चलेगा। अरे उठाकर फेंकना होगा, अथवा उठवाना होगा। ऐसे ही समझिये कि अपने आपमें जो यह रागद्वेष विषय कषाय आदिकका मलवा इकट्ठा हो गया है, इसे भी कोई दूसरा दूर करने न आयगा, इसे खुदको ही दूर करना होगा। एक कथानक है कि कोई एक धनिककी लड़की थी, उसका नाम था द्रोपदी। शादी होनेके बाद थोड़े ही दिनोंमें वह विधवा हो गयी थी। तो समय बड़ा नाजुक है, स्वार्थियोंसे भरा हुआ है तो उसे घर वालोंने आश्रय न दिया। वह अपने पिताके घर रहने लगी। वहाँ रहते रहते उसका थोड़ा चलन खराब हो गया। बहुत समय गुजरा, अचानक ही उसे अपने कृत्यपर पछतावा हुआ और एकदम उसके ऐसी ज्ञप्ति जगी, बस इस नगरको ही अब छोड़ दें और चलें किसी तीर्थमें और वहां चलकर अपने परिणाम सुधारें। यों जब तीर्थ चलनेके के लिए उसने अपना प्रोग्राम रखा तो बहुतसे लोग उसे कुछ दूर तक पहुंचनेके लिए चले। किन्तु उसके चरित्रकी बात गांवमें काफी फैल चुकी थी, सो हंसने वाले लोग यही कहें कि देखो बिल्ली सौ चूहे खाकर अब यह हज करने जा रही है। हुआ क्या था कि उसके दुश्चारित्रके कारण उसके बागके फल कड़ुवे हो गए थे, बावड़ियोंके जलमें कीड़े पड़ गए थे। तो जब लोग बाग उसकी मजाक कर रहे थे तो उस समय उसने बड़ा साहस करके लोगोंको ललकारा और कहा कि तुम सब लोग मूढ़ हो, परिणामोंकी गति नहीं जानते हो, तुम मजाक करते हो। जावो उन बगीचोंके बड़े मीठे फल हैं, जावो, खावो और उन बावड़ियोंका बड़ा मीठा जल पियो, मैं तो उस तीर्थधामपर जाती हूं, वहाँ जलधारा देते हुएमें मेरे प्राण विसर्जन होंगे। वह तो तीर्थधाम गयी, लोगोंने उन बगीचोंके फलों व बावड़ियोंकी जलकी परीक्षा की तो वास्तवमें वे बड़े मीठे हो गए थे। आखिर उसकी परीक्षाके लिए बहुतसे लोग उस तीर्थस्थानपर भी गए, वहाँ उस लड़कीने उस देवीका पूजन अर्चन किया, जलधारा की और उसके पश्चात् ही उसके प्राण विसर्जन उसी जगह हुए। तो देखो जीवन पतित हो भी जाता है तो उसका उद्धार भी किस तरह होता है ? ज्ञान किरणें फैलें, अपना प्रकाश फैले तो इस प्रकार उद्धार होता है। मांसभक्षी राजा भी अहिंसा धारण करके उसी भवसे मोक्ष गए। हम इस बातसे कायर न बनें कि हमारा तो जीवन बड़ा खराब है। हमारा कैसे उद्धार हो सकता है। हम तो अभी यों ही रहेंगे, अगले भवमें उद्धारकी बात देखी जायगी। तो ठीक है अभी न साहस बनाओगे फिरका क्या पता ? अरे केवल एक भाव ही तो बनानेका काम है। तो इस ज्ञानसमुद्रमें अवगाहन करके यहाँ उस तत्त्वका उद्धरण कीजिए और उन तत्त्वों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

के मननसे अपने आपको कर्मोंसे मुक्त करिये।

इति कतिपयवरवर्णैर्ध्यानफलं कीर्तितं समासेन।
निःशेषं यदि वक्तुं प्रभवति देवः स्वयं वीरः ॥२२०७॥

ग्रन्थसमाप्तिपर अन्तिम कथन—ग्रन्थकार कहते हैं कि यहाँ कुछ वर्णनके द्वारा संक्षेप में ध्यानका फल बताया है, पर पूर्णरूपसे यदि कहनेके लिए कोई समर्थ है तो वह स्वयं वीर प्रभु ही समर्थ है। ध्यानके फलको हम किन शब्दोंमें कह सकते हैं, संकेत ही है। तो यह संकेत उनको रास्ता दिखाता है जिनको कुछ कुछ परिचय है। शब्दमें यह सामर्थ्य नहीं कि अपरिचितको भी स्पष्ट चित्रण करा दे, तो कुछ शब्दोंसे वर्णन किया गया है। यह आचार्य की भाषा है, किन्तु आपने समझा ही है कि कितनी उत्तम रीतिसे ध्यानका उपाय और ध्यान के फल आदिक सब वर्णन आचार्य महाराजने किये। इस प्रकार यह ज्ञानार्णव ग्रंथकी समाप्ति हो रही है। अब उपसंहार रूपमें आचार्यदेव कह रहे हैं।

इति जिनपतिसूत्रात् सारमुद्धृत्य किञ्चित्,
स्वमति विभव योग्यं ध्यानशास्त्रं प्रणीतम।
विबुधमुनिमनीषाम्भोधिचन्द्रायमाणं,
चरतु भुवि विभूत्यै यावदद्रीन्द्रचन्द्रः ॥२२०८॥

ध्यानशास्त्रका जयवाद—यह ग्रन्थ ध्यानशास्त्र है। जिनेन्द्रदेवसे प्रणीत जो शास्त्र सूत्र हैं, द्वादशाङ्गमय वचन हैं उन सूत्रराजोंसे सारको कुछ ग्रहण करके अपनी बुद्धि वैभवकी योग्यताके अनुसार प्रणीत हुआ है। सो यह तब तक प्रवर्तमान रहे जब तक पर्वतराज मेरु और चन्द्र हैं। मेरु चंद्र आदिक अकृत्रिम पदार्थ अनादिसे हैं और अनंतकाल तक रहेंगे। तो यह ध्यानशास्त्र भी सदा प्रवर्ते, जिस सारतत्त्वकी उपासनासे जीव शान्तिमार्ग पाते रहें। यह ध्यानशास्त्र विद्वान मुनि जनोंकी बुद्धि रूप समुद्रको बढ़ानेके लिये चन्द्रमाके समान है। जिस प्रकार पूर्णचन्दके उदयका निमित्त पाकर समुद्र जल वृद्धिगत हो जाता है, इसी प्रकार इस ध्यानशास्त्रमें वर्णित उपायोंका मनन प्रयोग करके विवेकी मुनि जनोंका ज्ञान वृद्धिगत होता है, विकसित होता है। ऐसा यह ध्यानशास्त्र चिरकाल तक जयवंत प्रवर्तो।

ज्ञानार्णवस्य माहात्म्यं चित्ते को वेत्ति तत्त्वतः।
यज्ज्ञानात्तीर्यते भव्यैर्दुस्तरोऽपि भवार्णवः ॥२२०९॥

ज्ञानार्णवका वचनागोचर माहात्म्य—यह ज्ञानार्णव शास्त्र ज्ञानसमुद्रका वाचक होने से ज्ञानसमुद्र है। जिसमें सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र आदि अनेक गुण रत्न भरे पड़े हैं। इसके माहात्म्यको यथार्थरूपसे कौन जान सकता है? इसके ज्ञानसे भव्य जीव दुस्तर भवसमुद्रको पार करके अनंत पवित्र आनंदका अनुभव करते हैं। यह भवसमुद्र अपार है, इसमें रागद्वेष

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मोहविकारोंके मगरमच्छ रहते हैं। इसका पार कर लेना अति कठिन है, किन्तु सम्यक् ज्ञानकिरणका ऐसा प्रताप है कि इसके बलसे यह भयानक भवसमुद्र अन्तर्मुहूर्तमें भी पार किया जा सकता है। जिसके प्रसादसे अनंतकाल तकके लिये संकट छूट जायेंगे, उसकी महिमा तो अचिन्त्य है, वचनोंका गोचर वह हो ही नहीं सकता। यह ग्रन्थ मुनिजनोंको विशेषतया संबोधनेके लिये कहा गया है, किन्तु इसके अध्ययनसे गृहस्थ जनोंका भी कल्याण होता है। भावना व ध्यान सत्यके विवेकी पुरुषोंको लाभकारी है। अतः सभी मुमुक्षु जन इस शास्त्रके अध्ययनसे निज परमात्मतत्त्वकी उपलब्धिका लाभ लें।

॥ ज्ञानार्णव प्रवचन एकविंश भाग समाप्त ॥

इति ज्ञानार्णव प्रवचन एकविंशतम भागके
समाप्त होनेके साथ ज्ञानार्णवके
समस्त प्रवचन पूर्ण हुए।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी
'सहजानन्द' महाराज विरचितम्

सहजपरमात्मतत्त्वाष्टकम्

॥ शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥

यस्मिन् सुधाम्नि निरता गतभेदभावाः प्राप्स्यन्ति चापुरचलं सहजं सुशर्म ।
एकस्वरूपममलं परिणाममूलं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥१॥

शुद्धं चिदस्मि जपतो निजमूलमंत्रं, ॐ मूर्ति मूर्तिरहितं स्पृशतः स्वतंत्रम् ।
यत्र प्रयान्ति विलयं विपदो विकल्पाः, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥२॥

भिन्नं समस्तपरतः परभावतश्च, पूर्णं सनातनमनन्तमखण्डमेकम् ।
निक्षेपमाननयसर्वविकल्पदूरं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥३॥

ज्योतिः परं स्वरमकर्तृ न भोक्तृ गुप्तं, ज्ञानिस्ववेद्यमकलं स्वरसाप्तसत्त्वम् ।
चिन्मात्रधाम नियतं सततप्रकाशं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥४॥

अद्वैतब्रह्मसमयेश्वरविष्णुवाच्यं, चित्पारिणामिकपरात्परजल्पमेयम् ।
यद्दृष्टिसंश्रयणजामलवृत्तितानं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥५॥

आभात्यखण्डमपि खण्डमनेकमंशं भूतार्थबोधविमुखव्यवहारदृष्ट्याम् ।
आनंदशक्तिदृशिबोधचरित्रपिण्डं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥६॥

शुद्धान्तरङ्गसुविशासविकासभूमि, नित्यं निरावरणमञ्जनमुक्तमीरम् ।
निष्पीतविश्वनिजपर्ययशक्ति तेजः, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥७॥

ध्यायन्ति योगकुशला निगदन्ति यद्धि, यद्ध्यानमुत्तमतया गदितः समाधिः ।
यद्दर्शनात्प्रभवति प्रभुमोक्षमार्गः, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥८॥

सहजपरमात्मतत्त्वं स्वस्मिन्ननुभवति निर्विकल्पं यः ।
सहजानन्दसुवन्द्यं स्वभावमनुपर्ययं याति ॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com